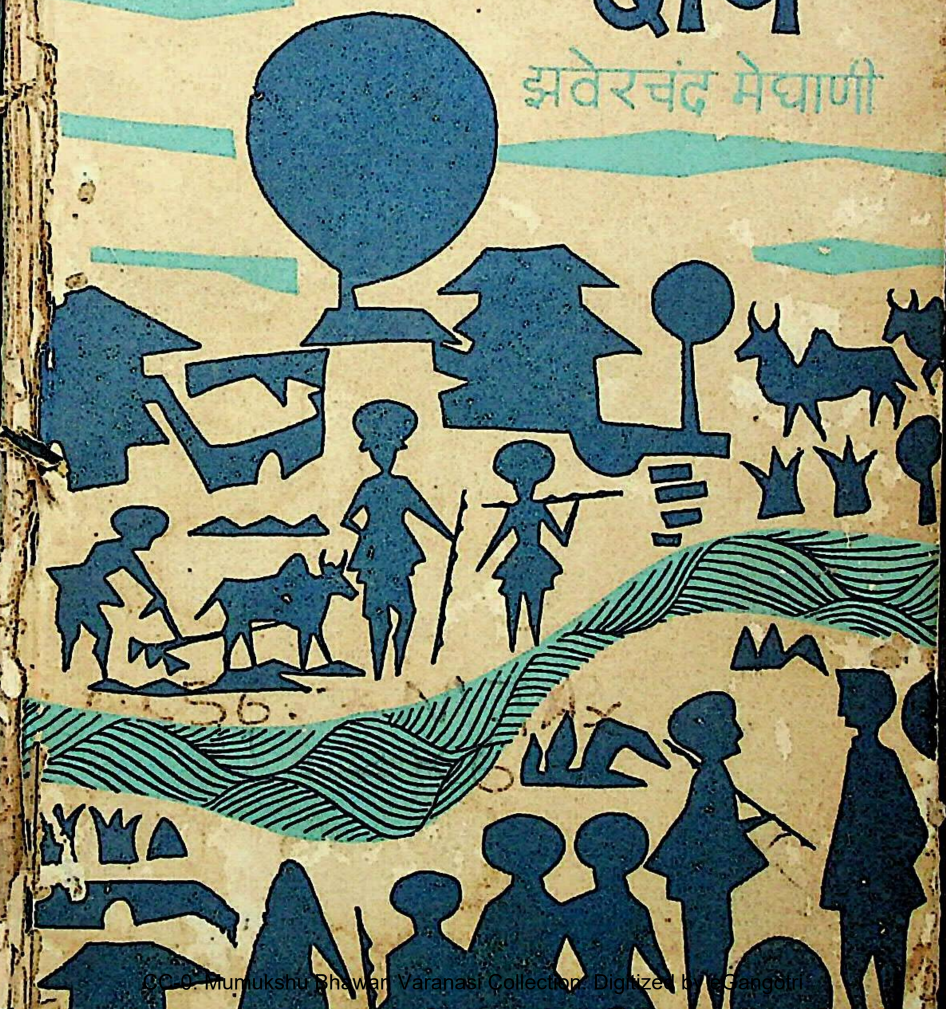
मानवता के दीये

झवेरचंद मेघाणी



कृपया यह ग्रन्थ नीचे निर्देशित तिथि के पूर्व अथवा उक्त तिथि तक वापस कर दें। विलम्ब से लौटाने पर प्रतिदिन दस पैसे विलम्ब शुल्क देना होगा।

~~8/7/82~~
~~8/8/82~~
4/9/82
3c/2-26-3-83

मानवता के बुझते हुए दीयों को सतेज करने वाले
सरदार श्री वल्लभ भाई पटेल
को सविनय समर्पण।

—झवेरचंद मेघाणी

प्रकाशकीय

गुजराती के यशस्वी लेखक स्व० झवेरचन्द मेघाणी से हिन्दी के पाठक भलीभांति परिचित हैं। उनका मर्मस्पर्शी उपन्यास 'प्रभु पधारे' हमने कुछ समय पूर्व 'मण्डल' से प्रकाशित किया था। इस रचना की सभी क्षेत्रों और वर्गों में बड़ी सराहना हुई।

प्रस्तुत पुस्तक में उन्हीं की सिद्धहस्त लेखनी ने हमारे समाज के उस उपेक्षित तथा तिरस्कृत वर्ग के कुछ पात्रों के हृदय-स्पर्शी चित्र खींचे हैं, जो ऊपर से भले ही कठोर दिखाई दें, पर जिनकी आत्मा मानवता से ओत-प्रोत है।

ये सामान्य जीवन के चित्र हैं, पर इनमें असामान्य शिक्षा है—"पाप से घृणा करो, पापी से नहीं," यह इस पुस्तक का निष्कर्ष है।

हमें आशा है कि पाठक इस पुस्तक को ध्यानपूर्वक पढ़ेंगे और इससे लाभ उठावेंगे।

—मन्त्री

निवेदन

: १ :

रविशंकर महाराज गुजरात के अनन्य लोक-सेवक हैं। मैं लोक-जीवन तथा लोक-हृदय का नम्र निरीक्षक हूं। सिर्फ एक साल पहले हमारा समागम हुआ। पिछले साल वह साबरमती जेल में कैदी थे और अस्वस्थ होने के कारण उन्हें अहमदाबाद के सिविल अस्पताल में रखा गया था। उस समय एक महीने के लिए मैं अहमदाबाद में था। 'भारतीय साहित्य संघ' के संचालक मेरे युवा मित्र भाई ईश्वरलाल मुझे उनके पास ले चलने का सतत आग्रह कर रहे थे। वह कहते थे कि आप महाराज की बातें तो सुनें, आपको बड़ा आनन्द आयेगा।

मैं भी यह जानता था। भाई रतिलाल अदाणी ने हरिपुरा कांग्रेस के समय 'फूलछाब' में महाराज के संस्मरणों को लिखा था। उससे मैं भी उत्कंठित हुआ था। एक से अधिक कारावास में बार-बार महाराज के साथ रहकर उनकी बातें सुनकर जो मित्र बाहर आते, वे भी कहते रहते थे कि महाराज की बातें मेरे सुनने लायक हैं।

मैं एक ओर से उनके प्रति आकर्षित हो रहा था, तो दूसरी ओर से हिचकता भी था। मेरे विक्षोभ, संकोच का कारण था। मैं तो केवल साहित्य के क्षेत्र का मनुष्य था। इसलिए मुझे लग रहा था कि लोक-सेवा के लिए आजीवन दीक्षित एक सत्पुरुष के पास जाकर उनके अन्तर की पवित्र मानी गई बातों को प्रकाशन के विचार से लिखने बैठूं, इसका मुझे कोई अधिकार नहीं। सम्भव है, इसे कोई मेरी हीन-भावना समझे। जो हो, मेरा संकोच एक वास्तविक बात थी।

आखिर भाई ईश्वरलाल का आग्रह सफल हुआ। अहमदाबाद के अस्पताल में महाराज से मेरी मुलाकात हुई। मैं यह जानता था कि

मुझपर उनकी कृपा-दृष्टि है। दो-एक बार मैं उनसे मिला भी था। एक बार तो तब, जब अहमदाबाद के आखिरी कौमी दंगे के बाद 'फूलछाब कार्टून केस' के नाम से जग-प्रसिद्ध मुकदमा हमारे ऊपर चल रहा था। अदालत के ठीक सामने कांग्रेस का दफ्तर है, उसके पास पटरी पर वह खड़े थे। पतली काठी—सीधी और तनी हुई, परिभ्रमण तथा गरमी-सरदी सहने के कारण ताम्रवर्णी बनी हुई काया, मानो किसी शिल्पी ने घड़कर तैयार की हो! उनकी यह मानव-मूर्ति स्वच्छ धोती, स्वच्छ बंडी, पीली टोपी तथा खुले पैरों में ऐसी शोभा दे रही थी कि वह मेरे हृदय में सदा के लिए बस गई। वह ऐसे दिखाई दे रहे थे, मानो दंगे में अपनी आहुति देनेवाले निर्दोष मृत जनों के शवों को जलाकर अभी स्नान करके लौटे हों।

एकाध क्षण के लिए, मुस्कान-भरे मुख से, उन्होंने पटरी पर से जो करुणार्द्र दृष्टि मुझ पर डाली, उसकी सुधा-वर्षा में मैं आज भी नहा रहा हूं।

ऐसी ही उनकी वात्सल्यपूर्ण पीठिका पर उनकी बीमारी में सरकारी अस्पताल में हमारा मिलना हुआ। कितने ही लोग उनसे मिलने आते थे, पर पहरेदार अपना फर्ज अदा करने के लिए अनिच्छा से ही सही, इन मुलाकातियों को जल्दी-जल्दी बाहर भेजता जा रहा था। मैं उसमें अपवाद बनना नहीं चाहता था। लेकिन किसे मालूम था कि एक साहित्यकार आया है और वह महाराज की बातें सुनकर सार्वजनिक उपयोग की कोई प्रसादी देनेवाला है! अत: ऐसी कोई आंतरिक गूढ़ मान्यता के कारण मैं थोड़ा अधिक बैठता था, तो वह उसे सहन कर लेता था।

महाराज ने अपने अनुभव स्वयं ही कहने आरंभ नहीं किये। उन्हें भी मेरी तरह संकोच हुआ होगा कि इस 'साक्षर' को मेरी गंवारू बातों में क्या दिलचस्पी हो सकती है! लेकिन मेरी प्रकृति में एक लाभदायी तत्त्व है। मैं रस पीनेवाला श्रोता हूं। दूसरों की बातें सुनने का स्वाद लेनेवाला हूं। कोई प्रश्न पूछकर मैंने ही महाराज से आरंभ करवाया। फिर तो उनकी वाग्धारा चलना शुरू हुई तो चलती ही गई।

इतनी बातें यदि किसी दूसरे ने कही होतीं तो शायद ऊब आने लगती, मन फिर जाता और कुछ नहीं तो वक्ता में 'अहं' उभर रहा है, ऐसी अनुभूति होने लगती। इसके विपरीत जब महाराज बोलते तो ऐसा लगता

था कि वह बोलते ही रहें, रुके नहीं तो अच्छा हो। मेरे मन में यह भाव रहता था कि वह रुक जायं, उससे पहले ही एकाध प्रश्न करके उनकी वाग्धारा को चालू रखने का आनन्द लूं।

किसलिए ?

इसलिए कि वह घटनाओं के मुख्य तथा केन्द्रस्थ पात्र होनेपर भी, अपने को गौण स्थान देकर अन्य मनुष्यों की भावना, यातना तथा प्रकृत तत्त्वों का ही विवरण प्रस्तुत करते रहते थे। उनका दृष्टि-कोण नीचे के स्तर के मानवों का यथार्थ दर्शन कराने का ही रहा है। उनकी बातें असंगत नहीं थीं। गुण-दोष के पलड़े बराबर रखकर, मानव-पात्रों की रेखाओं का एकनिष्ठा के साथ अंकन करनेवाला उनका वर्णन होता था। उसमें प्रचार की दृष्टि नहीं थी, परन्तु वास्तविकता के प्रति वफादारी दिखाई देती थी। वह कहते हैं कि मैं राजनीति के क्षेत्र का मनुष्य नहीं, मैं किसी भी चुनाव में दिलचस्पी नहीं रखता। गांधीजी के कारण ही मैं कांग्रेस में आया हूं। जो पुरुष सारे देश का कल्याण कर रहा है, उसके कल्याण-कार्यों में नम्र सहायता करने से जीवन सार्थक होगा, इसी दृष्टि से मैं सार्वजनिक कार्यों को कर रहा हूं। इसके अति-रिक्त महाराज एक सिद्धहस्त वार्ताकार भी हैं। उनके वाक्य नपे-तुले होते हैं, उनकी वर्णन-शैली में कला के सब गुण विद्यमान हैं। मैंने उनके कथन में, लड़खड़ाता हुआ या अशक्त एक भी वाक्य नहीं पाया।

उनकी बातें सुनकर जब मैं उनके आधार पर लिखने लगा तब मैंने उन्हें कुछ भयभीत पाया। इन बातों के प्रकाशित होने का उन्हें जितना डर था, उससे अधिक डर उन्हें इन बातों के द्वारा अपनी प्रशस्ति होने का था। एक-दो बार उन्होंने मुझे टोका भी कि "मेरी ये बातें एक-दो भाइयों ने लिखी हैं और वे उनको प्रकाशित करवाना चाहते हैं, परन्तु मैंने उनसे कहा है कि जबतक मेरी मृत्यु न हो जाय, वे उन्हें प्रकाशित न करें।"

अपनी ओर से मैंने स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया, "किसी व्यक्ति की कीर्तिकथा न कहना, यह मेरा हमेशा से प्रधान लक्ष्य रहा है। मैं तो लोक-जीवन का निरीक्षक तथा गायक हूं। आप जो कथाएं कह रहे हैं, उनमें भी तो उन कथाओं के पात्र मानव की विलक्षणता और प्रकृत-

तत्त्वों पर ही दृष्टि केन्द्रित किये हुए हैं। यदि मैं इन कथाओं को लिखूंगा तो भी उसमें मेरा प्रयोजन इन लोगों के जीवन को प्रस्तुत करना ही रहेगा। एक मुख्य पात्र के रूप में आपका चरित्र-चित्रण जितना अनिवार्य और आवश्यक है, उतना ही उसमें रहेगा। मैं सदा से इसी तरह लिखता आया हूं। व्यक्ति-पूजा में मुझे कोई रस नहीं।"

मेरे संकल्प की प्रामाणिकता पर महाराज के दिल में विश्वास जगा। मुझे आशा है कि इस समग्र आलेखन से मेरा आशय स्पष्ट होगा। महाराज के कथन के प्रति जहां तक हो सका, मैं सच्चा रहा हूं। स्थानीय भाषा-प्रयोगों को भी ग्रहण करने का मैंने प्रयत्न किया है। संवाद तथा वार्तालाप महाराज के ही हैं, पात्र-चयन भी उन्हीं का है। उनके द्वारा अंकित चित्रों पर मेरी शिल्पकला लादी न जाय, इसकी सावधानी मैंने बरती है।

कुछ लोगों का कहना है कि जो जमावट मेरी दूसरी रचनाओं में है, वह इनमें नहीं है। यह सही बात है। ऐसी जमावट से दूर रहना ही मेरा प्रयोजन था। मैंने यदि चाहा होता तो इन प्रसंगों को चमकाना मेरे लिए कोई कठिन काम नहीं था। लेकिन फिर उसका दस्तावेजी मूल्य नहीं रह सकता था। वह मेरी अपनी कृति मानी जाती और मेरे लिए कुछ अधिक प्रशंसा ला देती, पर मेरा मुख्य ध्येय ही नष्ट हो जाता।

मेरा मुख्य ध्येय इस पुस्तक को एक दस्तावेज का महत्त्व देना है। यह एक दस्तावेज है—बनी हुई घटनाओं का, लोकमानस का, जनता के मनोविश्लेषण का और जनता की भाषा का। लेखक ने तो केवल एक माध्यम बनकर अपनी मर्यादा का पालन किया है। गुजरात की जो प्राणवान संतानें चोर, लुटेरे तथा खूनियों के खाने में पड़कर सरकारी जेल अथवा पुलिस-कचहरी के रजिस्टरों में दर्ज पड़ी हैं, उनमें पाई जानेवाली मानवता का यह दस्तावेजी परिचय है। जीवित मानवों में से मानवता के दीये कब और किस प्रकार बुझने लगते हैं, मानव की आत्मा कब और किस प्रकार अधोगति को प्राप्त होती है और अकस्मात इन बुझते हुए दीपकों में यदि कोई तेल भरनेवाला सच्चा पुरुष—एक भी सच्चा पुरुष—मिल जाता है तो ये दीये कैसा प्रकाश देने लगते हैं,

उसीकी कथा इन अलग-अलग प्रसंगों में बुनी गई है।

मेरे लेखक-जीवन के लिए तो यह बहुत बड़ी बधाई का प्रसंग है। आजतक तो मैं सौराष्ट्र के ही लोगों की अनघड़ आकार की वीरता, खानदानी, नादानी तथा कोमलता को प्रदेशों में खोजता रहा हूं। गुजरात तक पहुंचने की मुझे आशा नहीं थी। जनता के बीच जन्म लिये बिना और उससे पोषण पाये बिना, उसीकी हवा का प्राण-वायु ग्रहण किये बिना अथवा उसीकी मिट्टी में लेटे बिना उस जनता की पहचान सम्भव नहीं। सौराष्ट्र के कार्य-क्षेत्र से बाहर जाकर किसी अन्य जन-समूह की धरती में जड़ें जमाना मेरे लिए सम्भव नहीं था। परन्तु महाराज से मेरी भेंट हुई। महीकांठा की जनता के सकल प्राण-तत्त्वों से गढ़े गए महाराज यदि मुझे न मिले होते, उनके बदले किसी अन्य ने ये बातें कही होतीं तो आज मैं जैसा अनुभव कर रहा हूं वैसा गुजराती पाटणवाडियों के जीवन को आत्मसात करने की भावना कभी भी अनुभव न करता और परिणामतः उनके सम्बन्ध में कुछ भी न लिख सका होता। और तो ठीक, उनकी भाषा की शक्ति भी मुझे कौन दे सकता था?

इस पुस्तक को श्री वल्लभभाई पटेल को अर्पण करने की प्रेरणा मुझे एकाएक हो आई थी। परन्तु उनके निकट का आत्मजन होने का दावा मैं नहीं कर सकता, इसलिए उनकी आज्ञा प्राप्त करना मेरा कर्तव्य हो गया। यह अनुमति उन्होंने दी, इसलिए मैं उनका ऋणी हूं। १९३० के संग्राम में मानो मैं भूलकर पड़ा और कारागृह में मुंह दिखाने पहुंच गया। उस समय वह भी दो-एक महीने हमारे साथ थे। उस समय से अपने प्रति उनका जो वात्सल्य देखा, वह मेरे हृदय में आज भी स्थान किये हुए है, इसलिए उस वात्सल्य को एकाध पुस्तक में अंकित करने का लोभ मैं दूर नहीं कर सका हूं।

(१९४५)

: २ :

इस पुस्तक के सम्बन्ध में यदि मैं अपनी ओर से थोड़ा कुछ कह दूं, तो उसे क्षमा करेंगे। मैं यह स्वीकार करता हूं कि साहित्य के गणमान्य

ग्रन्थों का मेरा पठन-पाठन विशाल नहीं है, परन्तु सौभाग्य से मुझे मानव-जीवन का महाग्रन्थ पढ़ने को मिला है और उसीकी प्रेरणा से मैंने लिखना शुरू किया है। संसार के अनुभव-पृष्ठ खुलते गये। उनमें से मुझे अपने पात्र भी मिले, और वस्तु-सामग्री भी प्राप्त हुई। मानव-वाणी पर मैंने अपने कानों को केन्द्रित किया और मुझे उसका रसास्वादन करने का चस्का भी लगा। मेरी धरती सौराष्ट्र की है। उसके सुख-दुःख, शौर्य-पराक्रम और उसके सती-यतियों के शील-सौन्दर्य की लोक-संग्रहीत बातें मुझे सुनने को मिलीं और उनके द्वारा जगाई हुई संवेदना ने मुझे वाणी दी। जनता मेरी जननी बनी।

समस्त गुजरात को मेरी कृतियां पसन्द आई हैं। पर उसके साथ ही एक प्रश्न उठ खड़ा हुआ कि क्या अकेली सौराष्ट्र भूमि में ही ऐसे शौर्य, सतीत्व तथा प्रेम का इतिहास भरा है ? गुजरात की मिट्टी क्या वंध्या है ? इसके उत्तर में किसी ने यह कहा कि काठियावाड़ में जो एक व्यक्ति द्वारा प्रदर्शित वीरता के अंश प्रकट हुए, उसका कारण यह था कि वह प्रदेश कभी किसी महासत्ता के अधिकार में नहीं आया था। इसलिए वहां ऐसी वीरता-प्रदर्शन के लिए खुला मैदान मिला। पर गुजरात पर तो सुलतानी शहंशाही तथा मराठी सत्ता का वर्चस्व एक के बाद एक स्थापित होता गया। इसलिए यहां एक ऐसी राज्य-व्यवस्था प्रवर्तित रही जिसमें व्यक्तिगत प्रेम, शौर्य तथा खानदानी लीला प्रमाण में कम दिखाई दी।

मैं यह नहीं मानता था। मेरा विश्वास है कि धरती का कोई भी भाग मानव-सुलभ और मानव-सहज संस्कार-लीला से वंचित नहीं रह सकता। तब मेरे सामने यह प्रश्न आया कि मैं गुजरात के लोक-इतिहास में उसकी खोज क्यों नहीं करता ? इस प्रश्न में एक यह भी आक्षेप गर्भित था कि मैं प्रान्तीयता की व्याधि से पीड़ित हूं। दरअसल यह बात नहीं थी। काठियावाड़ मेरा घर है, पुराने सौराष्ट्र के अवशेष कहे जाने-वाले व्यक्तियों की गोद में मैं पला हूं, उस भूमि की गोद में लोटा हूं, इन सब कारणों ने मुझे वहां बांध रखा था। दूसरी ओर मैंने यह पुकार तो चालू रखी ही थी कि "गुजरात के पृथ्वी-पुत्रो, उठो, अपने यहां सागर-किनारे, कन्दराओं, कोटरों, पहाड़ों-खाइयों तथा सपाट मैदानों की

जांच करो। गुजरात की सन्तानो, रवारी, पाटणवाडिया, ठाकरडा तथा मल्लाहों आदि की मानवता को धैर्य के साथ खोज निकालो। उनमें अखट साहित्य-संपत्ति भरी पड़ी होगी, क्योंकि वहां इस बहुरंगे देश का इतिहास छिपा पड़ा है।"

अहमदावाद जैसे नगरों का मैंने ध्यानपूर्वक निरीक्षण किया है। साइकिल पर दूध के टीन लटकाकर उसे दौड़ाते हुए जानेवाले ये अहीर-रवारी, महाकाय और मूंछोंवाले, अपनी असली पोशाकों में फवनेवाले, मानव-वंश-विद्या के कई रहस्यों को अपने चेहरे की मुख-मुद्राओं में संग्रहीत करके रखनेवाले, अपनी संकेत-बोली में अनेक कालों और स्थलों के इतिहास को छिपाये हुए हैं। उनकी स्त्रियों को भी देखा है? ये गृह-हीन, धन-हीन भले ही हों, फिर भी गौरवर्णी, नील कमल-जैसे गोदनों से भरी हुई पिंडलियों तक ऊँचे घाघरे पर ओढना ओढ़नेवाली इन बहनों को रोककर उनसे पूछने का दिल होता है कि "वेन, अपनी जग-बीती कुछ वात तो कहो? इस सर्दी-गरमी में, मेघ की मूसलाधार वर्षा में अपने ढोरों के साथ खुले आकाश के नीचे रहकर भी तुमने अपने असली तेज-सौन्दर्य की किस तरह से रक्षा की है?" मैंने महीकांठे के कछावर ठाकरडे देखे हैं, रेलगाड़ी में लंबी लाठियां लेकर चढ़नेवाले पाटणवाडिया देखे हैं और इन सब गुर्जर-वासियों को देखकर दिल यह गाता रहता है:

कोना ए साद सुणी, क्यांथी आ भोम भणी
मानव-क्षरणाना महास्रोत वळी आव्यां!
आर्यो-चीना-द्रविड, हुणो-शक अडाभीड,
आवी आवीने सर्व एकसां समायां,
जुदी जुदी जमात भांगी घडियो विराट,
विरम्या घोंघाट, एक हाक पडी रे
जागो जागो रे प्राण जागो धीरे
भारतभूमि ने लोक-सागर तीरे।

क्या ये हूणों, शकों और सीथियनों से पैदा होनेवाली जातियां हो सकती हैं? यह भारतीय प्रजा क्या विदेशियों के रक्त से मिलकर बनी है? नृवंश-शास्त्र के अध्येताओं के लिए कितना बड़ा रहस्य-भंडार भरा

पड़ा है। अमुक जाति सूर्यवंशी अथवा चन्द्रवंशी है, किसी देव-देवी के पेट से पैदा हुई है, इन सब बातों में हमें कोई दिलचस्पी नहीं। हमारे कुतूहल और आश्चर्य की बात तो यह है कि किस प्रकार भिन्न-भिन्न जातियों के मेल से इस विश्व की रचना हुई है और इसीमें हमारा गौरव है कि हम भिन्नता में एकत्व के दर्शन करें।

ऐसे महा-रसायन की संतानो, गुर्जर-जनो की बलिहारी है और उससे भी बड़ी बलिहारी है रविशंकर महाराज जैसे लोक-प्रेमी संत पुरुष की, जिन्होंने इन चोर-डाकुओं में गिने गये, मानव-सभ्यता की सीमा से बाहर फेंके गये मानव-समाज में अपनी आत्म-बंधुता का अनुभव किया और फिर इन अनुभवों से जागृत ममत्वपूर्ण भाषा में मुझ-जैसे मनुष्यों को मानवता का दर्शन कराया। यह दर्शन इतना प्रभावशाली था कि जब वह मुझे अपनी बातें सुना रहे थे तब मैं मही-प्रदेश को आंखों से देखे विना ही अपनी कल्पना में उसे साकार देख रहा था। इसलिए जब महाराज ने उस भूमि तथा वहां के निवासियों को प्रत्यक्ष दिखाया, उस समय वे मुझे पुराने परिचित-से प्रतीत हुए। मैंने उन सबको देखा और आत्म-संवेदन द्वारा उन्हें शब्दबद्ध किया। यह सब रविशंकर महाराज की ही कृपा है। महाराज तो एक नवोढ़ा नारी की तरह संकोचशील हैं। अपनी नहीं, परन्तु वह जिन्हें चाहते हैं ऐसे अपने आप्तजनों के भीतर छिपी हुई मानवता की बातें सुनने के लिए उनका अंतर सदा उभरता रहता है। मैंने उन्हें जो वचन दिया था उसीके अनुसार इस 'मानवता के दीये' में मेरा प्रयत्न महाराज की व्यक्ति-स्तुति करने का नहीं, पर महीकांठावासी जनता की मानवता को खोजने का ही रहा है।

'मानव' यह एक बड़ा जटिल सर्जन है। डाक के 'सॉर्टर' की तरह हम उसे दो खानों में बांट सकते हैं, अच्छा और बुरा। इतना ही नहीं, हम जिन्हें बुरे खाने में फेंक देते हैं, उन्हें एक ओर तो पुलिस, अदालत तथा राज्यसत्ता अपनी रीति के अनुसार शंकापूर्ण मानकर उनकी मानवता पर 'क्रास' लगा देती है किंतु दूसरी ओर बुरे को सुधारने का भी प्रयत्न करते हैं। पर यह सुधारने की क्रिया अर्थात् उस मानव को अपने-जैसा बनाने की क्रिया है। उसे हम अपने चौखटे में ढालने का प्रयत्न करते हैं। उनकी

भाषा को भद्दी गंवारू समझकर उन्हें अपनी तरह बोलना और लिखना सिखाना, अजंता के शिल्प-सी सजीव बनकर उठी हुई उनकी सुडौल, सुगठित नग्नता पर अपने-जैसी पोशाक लादना है, पहाड़ों-जंगलों को मुखरित करनेवाले तीर-भालाधारी भीलों को उनके अपने पराक्रम, प्रणय-रीति और शिकार-रोमांच और उनकी अपनी संस्कारिता से वंचित कर उन्हें अपने स्कूल-कालेजों द्वारा क्लर्क बनाना है। यह है उन्हें सुधारने की हमारी प्रक्रिया। परन्तु हम यह भूल जाते हैं कि अपने परिवेश में उनका जीवन एक निराली संस्कृति तथा मानवता का श्वास भर रहा है। श्री रविशंकर महाराज ने एक महत्व की बात कही थी, उसका मुझे स्मरण है। पाटण की ओर रहनेवाले लोगों में जब काम करने के लिए वह बैठे, तब बड़ोदा के भूतपूर्व पुलिस अधिकारी मेजर एक्विनो ने महाराज से कहा था, "हां, देखिये, इन लोगों के सुधारने के प्रयत्न में इन लोगों की आंखों में जो एक तेज है, उसे आप कहीं बुझा न दें।"

यह सूचना कैसी मार्मिक है। महाराज के कलेजे में वह घर कर गई है। महाराज की यही दृष्टि रही है। वह इनकी आंखों का तेज बुझने देना नहीं चाहते, अर्थात् पाटणवाडियों, ठाकरडों, गरासियों को, जिस अर्थ में आज सुधारने की बात हम करते हैं उस अर्थ में सुधारने के लिए वह वहां नहीं गये हैं। उनका निजत्व और स्वत्व महाराज को प्रिय है। महाराज ने उन्हें अच्छे-बुरे खाने में नहीं बांटा है। मनुष्य न कोई अच्छा है, न बुरा। मानव तो अजीब मिश्रण से बना पिंड है। 'मानवता के दीये' में इस प्रकार की मानवता के दर्शन हैं।

इस पुस्तक में निरूपित किया गया मानव-दर्शन हमें प्रिय लगता है, परन्तु जब ऐसा निरूपित मानव हमारे सामने प्रत्यक्ष व्यवहार में आता है, तब हम उसे अपनी दुनिया से अलग दुनिया का समझते हैं। रेलगाड़ी के डिब्बे में बिस्तर बिछाकर एक पटरी रोककर लेटा हुआ शिक्षित मनुष्य इस 'मानवता के दीये' की दुनिया के मानव को अपने सामने डरा हुआ, अपने को छिपाता हुआ, सिकुड़कर खड़ा हुआ देखता है, फिर भी वह उसे अपने बिस्तर का कोना लपेटकर बैठने की जगह नहीं देता और यदि उसके साथ वह कभी बातचीत भी करता है तो उसकी भाषा की नकल

करके दो घड़ी उसका मजाक उड़ाने के लिए ही वैसा करता है।

: ३ :

कितनों के मन में ऐसी शंका हुई है कि बाबर देवा के चरित्र को इसमें क्यों स्थान दिया गया है ! इसका वह यह कारण बताते हैं कि अन्य सब घटनाओं में तो मानव की मानवता का दीपक प्रकाशित होता दिखाई देता है और कुछ उच्चगामी अंश क्रीड़ा करता दिखाई देता है, पर बाबर देवा के इतिहास में ऐसा कुछ नहीं होता। उसमें केवल क्रूरता तथा अधोगामिता भरी है।

इस कारण मुझे बाबर देवा को इसमें स्थान नहीं देना चाहिए था। यह दलील ठीक नहीं है। किस प्रकार की भूमि में और कैसी परिस्थिति में महाराज कार्य कर रहे हैं यह दिखाने के लिए सृष्टि खड़ी करने की पूरी आवश्यकता थी। बाबर देवा तथा उससे सम्बन्ध रखनेवाले बहुसंख्यक छोटे-बड़े पात्रों के आलेखन द्वारा और उन सब घटनाओं के सब अंगों के पूरे-पूरे चित्रण द्वारा हमें उस समग्र दुनिया का एक दस्तावेजी परिचय प्राप्त होता है, जिसके साथ महाराज मुकाबला कर रहे थे। मेरी तो पाठकों से यह सिफारिश है कि अन्य सब प्रसंग-चित्रों को उसके सच्चे परिवेश में देखना हो, उसका सच्चा मूल्यांकन करना हो, उनका सौन्दर्य समझना हो, तो सबसे पहले बाबर देवा की कथा पढ़ने के बाद ही अन्य रचनाओं को पढ़ना चाहिए। बाबर देवा की कथा 'मानवता के दीये' का प्रवेश-द्वार है।

महत्व की एक और भी बात है। जिन-जिनको महाराज का सत्संग मिला, उन पात्रों को उनका कैसा रंग लगा और जो उससे वंचित रह गए, उनके कदम कैसे उल्टे मार्ग पर मुड़ गए, बाबर देवा उसका एक उदाहरण है। वह बाबर को क्यों नहीं मिल सके, यह प्रश्न मैं स्वाभाविक रूप से ही महाराज से पूछ बैठा था।

उत्तर में महाराज ने मुझसे कहा कि रास ग्राम के पास सुन्दरणा नामक एक गांव है। वहां बाबर देवा ने महाराज को उससे मिलने आने के लिए सन्देशा भेजा था। महाराज उस दिन बाहर गये हुए थे। जब

लौटे तो उन्हें बाबर का सन्देशवाहक मिला। वह डाकू से मिलने के लिए जाने लगे तो मार्ग में दो आदमी मिले। उन्होंने महाराज से एक सूचक हास्य के साथ पूछा, "क्यों महाराज, कहां चले ? वहीं न ?"

महाराज सावधान हो गए। बाबर के आदमी ने निश्चय ही गांव के अन्य दो एक आदमियों से यह बात कही है। सम्भव है, पुलिस तक यह समाचार पहुंच गया हो। अब यदि मैं जाता हूं तो पुलिस मेरे पीछे आयेगी और तब यह कहा जायगा कि मैंने बाबर के साथ विश्वासघात किया।

बस इतनी छोटे-सी बात के कारण महाराज तथा बाबर देवा की मुलाकात न हो सकी और चार महीने के बाद बाबर पकड़ा गया। स्वयं बाबर से न मिल सके, इसका बोझ महाराज के मन पर रह ही गया।

बाबर को फांसी हो जाने के बाद एक बार उसकी मां हेता बेलगाम के क्रिमीनल सेटलमेन्ट से छुट्टी लेकर अपनी लड़की के घर पीपलोई ग्राम में आई। उसका सन्देश लेकर उसका जंवाई महाराज के पास आया। महाराज पीपलोई गये तब दोपहरी हो चुकी थी। भयंकर हेता बेटी के घर की ओसरी में बैठी थी। उसने कहा, "आपका चेला तो महाराज, बहुत अच्छा था। खादी की टोपी पहनता था। वह बेचारा तो चला गया। मेरे दूसरे लड़के वहां सेटिलमेन्ट में ठीक हैं। बुनाई के काम में अच्छा कमाते हैं, पर आप उन्हें यहां ले आवें।"

महाराज ने कहा, "यहां ले आकर क्या करोगी ? वहां वे कमाते हैं। यहां न तो घर है, न खेत है। शत्रु बहुत हैं, इसलिए वहीं रहो। यहां खाओगे क्या ?"

"खाओगे क्या ?" वृद्धा जोर से बोल पड़ी, "मुझे पहचानते नहीं, महाराज ! और यह देखो।" यह कहकर उसने अपना पल्लू झाड़ा तो उसमें से पचासेक रुपये निकल पड़े। इस किस्से के स्मरण से आज भी महाराज के मुंह पर मुस्कराहट छा जाती है।

महाराज की स्वानुभव सम्पदा, जिसको मैंने लिखा है, ऐसे अनेक प्रसंगों से भरी पड़ी है। मेरी यह हार्दिक इच्छा है कि उसका संग्रह अन्य जिज्ञासु लोग करें। मेरी यह पुस्तक तो एक गुप्त खजाने की ओर इशारा करके ही विराम पाती है।

(१९४६) —झवेरचन्द मेघाणी

संस्कृति-सुधार का कीमती दस्तावेज

: १ :

धाराळा, पढियार, बारैया या पाटणवाडिया कही जानेवाली कौम के प्रति मेरा बहुत पुराना आकर्षण है। गुजरात की लोकसंख्या में भिन्न-भिन्न कौमों का परिमाण क्या है, उसका अध्ययन करते हुए और उनमें श्रमजीवी कितने और सफेदपोश—बैठकर खानेवाले कितने, इसका परिमाण खोजने पर 'अठारह और अस्सी' शीर्षक एक लेख मैंने लिखा था। असहयोग के आन्दोलन के दिनों में जब मैं बोरसद के प्रदेश में घूम रहा था, इस कौम की एक 'परिषद्' में उपस्थित रहने का भी सद्भाग्य मुझे प्राप्त हुआ था। कुछ पाटीदारों ने जब मुखिया-पद छोड़ा तब बारैया कौम के लोगों ने वह स्वीकार कर लिया, इसके कारण कई झगड़े खड़े हुए थे। एक-दो खून भी हुए थे। यह सब जानकारी मुझे मिली थी। इसलिए इस कौम की ठोस सेवा करनी ही चाहिए, ऐसा निश्चय करके मैंने गुजरात विद्यापीठ की ओर से बोचासण में एक विद्यालय खोला। पहले तो इसका नाम 'बारैया विद्यालय' रखने का विचार था, परन्तु इसके कारण उसमें कौमी तत्त्व प्रवेश करेगा और भविष्य में बाधक होगा, इसका मुझे खयाल था, इसलिए मैंने विचारपूर्वक इस विद्यालय का नाम 'वल्लभ विद्यालय' रखा।

सन् १९२३ में जब पहली बार जेल गया, उस समय वहां मेरा कांग्रेस के एक कार्यकर्ता श्री शामलभाई पटेल से परिचय हुआ। खेड़ा जिले में पाटीदार तथा बारैया लोगों के जीवन तथा उनके परस्पर के सम्बन्ध के बारे में मैंने उनसे बहुत-सी बातें सुनी थीं। 'कर-बन्दी' की लड़ाई में मैंने ही शामलभाई को खेड़ा जिले में काम करने के लिए भेजा था। उनके साथ चि० बाल कालेलकर को भी यही कार्य सौंपा गया था।

यह काम करते-करते चि० बाल को पुलिस के हाथ से कई बार मार भी खानी पड़ी थी।

उन दिनों बारैया कौम की बहादुरी तथा उनके स्वभाव की खूबियों के बारे में इन दोनों से मैंने बहुत-कुछ सुना था। इसीलिए मैंने उन्हें ही वल्लभ विद्यालय चलाने का भी काम सौंपा। यह विद्यालय अच्छी तरह चले, इस अपेक्षा से मैंने विद्यापीठ के विद्यार्थी, श्री कपिल-राय महेता और परखे हुए राष्ट्रीय शिक्षक श्री डाह्याभाई पाठक, दोनों को भी वहां भेजा था। इन सबोंने मिलकर पाटणवाडिया कौम के लोगों में शिक्षा तथा जागृति का बहुत अच्छा काम किया। उसके बाद मेरी आश्रम-भगिनी पूज्य गंगाबहन ने बोचासण में ही सेवा का कार्य करना पसन्द किया और अब श्री शिवाभाई पटेल इस विद्यालय को बहुत अच्छी तरह चला रहे हैं।

हर्ष की बात है कि विद्यापीठ के ग्राम-सेवा दीक्षित श्री वल्लभभाई महेता भी, जो डाकोर की ओर रहनेवाली ठाकुर कौम में बहुत अच्छा काम कर रहे हैं, वल्लभ विद्यालय के काम में दिलचस्पी ले रहे हैं। सबसे बड़े सद्भाग्य की बात तो यह है कि पुस्तक के कथा-नायक श्री रवि-शंकर महाराज ने अब हमारे वल्लभ विद्यालय में अपना निवास कायम किया है। इनके चिरंजीव श्री मेघाव्रत तो बोचासण में एक अरसा हुआ आयुर्वेद की दवाएं देने का काम कर रहे हैं।

तीन साल की जेल समाप्त कर जब बाहर आया और यह सुना कि रविशंकर महाराज ने बोचासण में स्थायी रूप से रहना स्वीकार किया है, तो मैंने अपने को धन्य माना।

मैं जब कुलनायक बनकर विद्यापीठ का संचालन कर रहा था, उस समय बारैया कौम के लिए खेड़ा, भडौंच तथा पंचमहाल के जिलों में एक-के बाद-एक वल्लभ विद्यालय जैसे अनेक विद्यालय खोलने का मेरा विचार था। उसके लिए मैं इस प्रदेश में प्रवास भी कर चुका था। श्री रविशंकर महाराज से मेरा जेल में तथा बाहर भी, दीर्घ परिचय तो था ही। इसलिए गुजराती के समर्थ लेखक श्री झवेरचन्द मेघाणी के लिखे इन संस्मरणों को मैं सिवनी जेल में बड़े रसपूर्वक पढ़ रहा था। बाहर आने के बाद जब

श्री ईश्वरलाल दवे ने श्री मेघाणी की इस पुस्तक की प्रस्तावना लिख देने के लिए मुझसे कहा तब मैंने एक क्षण का भी विचार किये बिना तुरन्त स्वीकार कर लिया।

एक प्रस्तावक के रूप में ही सही, पर यदि श्री रविशंकर महाराज की जीवन-कथा तथा श्री झवेरचन्द मेघाणी की साहित्य-कृति के साथ मेरा सम्बन्ध जुड़ता हो तो मैं क्यों इन्कार करने लगा!

: २ :

पुराने समय के शूरवीरों तथा चारणों की जीवन-कथाओं का तथा लोक-काव्यों का संग्रह कर गुजराती भाषा में उनके जीवन-मूल्यों का तादृश्य चित्र प्रस्तुत करनेवाले श्री झवेरचन्द मेघाणी ने इस पुस्तक में अद्भुत संयम दिखाया। उन्होंने श्री रविशंकर महाराज की ही भाषा तथा शैली का प्रयोग कर महीकांठा के जीवन-वीरों के जीवन-मूल्य क्या है और उन मूल्यों में मौलिक परिवर्तन करने का प्रयत्न करनेवाले संस्कृति-वीर श्री रविशंकर महाराज ने इस प्रयत्न में अपना जीवन किस प्रकार निचोड़कर कार्य किया है, उसका बड़ा ही प्राणवान चित्र इस पुस्तक में प्रस्तुत किया है। मेरे विचार से श्री झवेरचन्द मेघाणी की अद्भुत रम्य साहित्य-शैली, उपरोक्त संयम के प्रकाश के कारण सोलह कलाओं से पूर्ण होकर खिल उठी है। इस पुस्तक को पढ़ते समय श्री मेघाणी की संयम-समर्थ शैली ने मेरे दिल पर जो असर पैदा किया है, वैसा किसी अन्य भाषा की पुस्तक ने शायद ही किया होगा। मैं आशा करता हूं कि 'माणसाई ना दीवा' (मानवता के दीये) के अनुवाद देश-परदेश की अनेक भाषाओं में हों और संस्कृति-वीर रविशंकर के पुरुषार्थ का यह दस्तावेज साहित्य में अपना स्वाभाविक स्थान प्राप्त करे।

समाज और सरकार जिन्हें मुजरिम कौम करार देती है, उनमें भी कैसे गंभीर और उम्दा जीवन-आदर्श हैं, यह श्री रविशंकर महाराज अपने हृदय से पहचान सके हैं, इसीलिए वह उनमें आदर्श परिवर्तन के तत्त्वों का प्रवेश करा सके हैं या उनके बीज बो सके हैं।

: ३ :

जीवन के आदर्श कौन निर्माण करते हैं—बनाते हैं? परमेश्वर के

पैगंबर, महाकवि, लोक-कवि, धर्माचार्य, न्यायमूर्ति, जनता की पंचायत, जाति के अगुआ, भाट और चारण, पुराने काल का स्मरण रखनेवाली वृद्धाएं, कठिन प्रसंगों में प्रौढ़ सलाह देनेवाले वृद्ध, पुराने रिवाजों के विरुद्ध लड़नेवाले सुधारक युवक और असह्य अन्याय के सामने सिर को हथेली में रखकर परन्तु बेढंगी लड़ाई लड़नेवाले बाहरवटिया याने डाकू। ये सभी अपने-अपने तरीके से जीवन के आदर्शों को रूप देने का कार्य करते आए हैं। हरएक वर्ग अपने-अपने जीवन-दर्शन के अनुरूप आदर्श बनाते हैं।

सबका जीवन-दर्शन एक-सा नहीं होता। बहुत ही कम लोगों का जीवन-दर्शन सम्पूर्ण या सर्वांगीण होता है। हरएक की अनुभूति जितनी गहरी और व्यापक होगी उतनी ही उसकी जीवन-समृद्धि होगी। और जैसी जीवन-समृद्धि होगी, वैसा ही उसका जीवन-दर्शन होगा। बहुतों का जीवन-दर्शन तो उनके स्वभाव-दोष के कारण विकृत भी होता है। एकाकीपन मनुष्य के लिए सबसे बड़ा शाप है। उसके कारण जीवन-दृष्टि विकृत होती है और मनुष्य जीवन-साफल्य प्राप्त नहीं कर सकता है। यही नहीं, उसकी प्रवृत्ति भी जीवन का शाप सिद्ध होती है।

किसी की जीवन-दृष्टि को सुधारना ही उसकी उत्तम सेवा है और जो ऐसी सेवा करता है, वही सच्चे अर्थ में ब्राह्मण है।

इन थोड़े से रेखाचित्रों के द्वारा श्री रविशंकर महाराज ने समभाव-पूर्वक पाटणवाडिया जैसी होशियार, परन्तु दुर्दैवी कौम के जीवन-दर्शन की झांकी हमें कराई है और उनका जीवन-दर्शन सुधारने के लिए उन्होंने कितनी तत्त्वनिष्ठा, धैर्य तथा चातुर्य दिखाया है, उसका भी पवित्र दर्शन हमें यहां होता है।

धीरज और चातुर्य, जितना कौशल के कारण होता है, उससे कहीं अधिक उत्कट प्रेम के कारण होता है। वैयक्तिक प्रेम तथा अहं-प्रेम भले ही अंधा प्रेम हो, पर अहैतुक तथा विशुद्ध प्रेम की दृष्टि तो लगभग दिव्य दृष्टि होती है। बुद्धिपूर्वक प्राप्त किये गए कौशल की अपेक्षा प्रेम का कौशल सब प्रकार से श्रेष्ठ तथा कल्याणकारी सिद्ध हुआ है। शुद्ध प्रेम के साथ भूलें भी की जायं तो वे भी अन्त में ऊपर उठानेवाली ही होती हैं।

प्रेम तथा तत्त्वनिष्ठा मूलतः एक ही बात है। प्रेम की भक्ति सगुण होती है और तत्त्वनिष्ठा की भक्ति निर्गुण होती है, यही उनमें अन्तर है, पर वे दोनों हैं एक ही।

जंगल में रहनेवाले पशुओं में जीवन-युद्ध चलता रहता है, परन्तु उनके इस जीवन-युद्ध के कारण उन्हें कोई अपराधी नहीं मानता। जानवरों पर भी हम 'क्रूर' और 'सौम्य' ऐसे विशेषण लगाते हैं, परन्तु उन्हें अपराधी प्रमाणित नहीं करते। उनके लिए कोई ऐसा भेद है ही नहीं। वे तो जंगल के नियम का ही पालन करते हैं।

कुछ प्राणियों में सामाजिक वृत्ति बड़ी उत्कट होती है। अमुक मर्यादा में वे आपस में सामाजिक-वृत्ति तथा सहायक वृत्ति का व्यवहार करते हैं और यह देखकर हमें आश्चर्य होता है। कुछ प्राणी ऐसी सामाजिक वृत्ति केवल अपने जीवन-साथी तथा अपने बच्चों के प्रति ही दिखाते हैं। अन्य सब प्राणी उनके लिए या तो भक्ष्य हैं या शत्रु हैं।

मनुष्य में सामाजिक वृत्ति का कब विकास हुआ, इसका इतिहास नहीं मिल रहा है। मनुष्य आदिकाल से कमोबेश मात्रा में सामाजिक प्राणी रहा है और इसलिए उसने, अपनी प्राकृतिक और सांस्कृतिक परिस्थिति के कारण भांति-भांति के सामाजिक आदर्श बना लिये हैं। यह सच है कि समय-समय पर उसे इन आदर्शों को बदलना पड़ता है, परन्तु एक बार वे आदर्श बना लिये गए और कुछ काल तक उनका पालन होता रहे तो वे ऐसे दृढ़ हो जाते हैं कि अन्त में वे मनुष्य-स्वभाव का ही रूप धारण कर लेते हैं।

इन आदर्शों के विकास के लिए केवल चार-पांच क्षेत्र ही हैं। उसमें भी आतिथ्य का आदर्श, शरण आये को शरण देने का आदर्श, अपमान या अन्याय करनेवाले व्यक्ति या जाति से बदला लेने का आदर्श, ब्याज का धन्धा करने न करने का आदर्श, वचन-पालन, सत्यवादिता और न्याय-निष्ठा का आदर्श, ये सब इन्हीं क्षेत्रों में समाविष्ट हो जाते हैं।

ऐसे आदर्शों की सृष्टि करने का कार्य कुटुंब के कर्ताधर्ता पुरुषों का, बहुओं पर हुकूमत चलानेवाली सासों का और कुटुंबों का मार्गदर्शन करानेवाले पुरोहित तथा चारण लोगों का होता है।

जब समाज तथा राज्य बन जाते हैं तब राजा और न्यायाधीश, पंचायतों के मुखिया और समाज को राह दिखानेवाले कवि और पगंबर समाज के लिए धीरे-धीरे आदर्श उपस्थित करते हैं।

धर्म-प्रधान समाज में ऋषि-मुनि, साहित्यकार और आचार्य सर्वहित-दृष्टि से अत्यंत व्यापक और उज्ज्वल आदर्श समाज के आगे उपस्थित करते हैं और मानव-संस्कृति को बहुत ऊंचा उठाते हैं। दूसरी ओर राजा तथा राज्यकर्त्ता अपने स्वार्थ तथा सामाजिक अहसासों का—दोनों का विचार कर समाज जिनका पालन कर सकता है और समाज के पास से जिनका पालन कराया जा सकता है, ऐसे व्यावहारिक आदर्शों को समाज में रूढ़ करते हैं।

प्रस्तुत दस्तावेज में पाटणवाडिया कौम के स्वाभाविक जीवन-आदर्श, उनके बीच में रहकर जीविका चलानेवाले पुरोहितों द्वारा प्रवर्तित मध्य-कालीन हिन्दू आदर्श, देशी और परदेशी राजकर्त्ताओं द्वारा विचार-पूर्वक विकसित किया गया परन्तु बेढंगे तौर पर क्रियान्वित किया गया कानून का आदर्श और अन्त में महात्मा गांधीजी ने जिसे देश तथा मनुष्य-जाति के समक्ष रखा, वह मानवता तथा बहादुरीभरा सत्य-अहिंसा का कल्याण-मय आदर्श, इन सब आदर्शों के स्वभाव-सुन्दर आघात-प्रत्याघात हमें देखने को मिलते हैं। और इस दृष्टि से जब हम यह सारा विवरण पढ़ेंगे, तभी हम निस्पृह और प्रेमल, निरहंकार और सेवापरायण संस्कृति-वीर रविशंकर महाराज की मूर्ति की भव्यता की कल्पना कर सकेंगे।

"अरे, तुम्हें कायदा का मार्ग ग्रहण करना हो तो वह मार्ग तुम्हारे लिए खुला हुआ है और मेरे मार्ग से चलना हो तो तुम्हारे लिए मैं प्रयत्न करने के लिए तैयार हूं। मेरे मार्ग पर चलने से तुम्हें सज़ा तो होगी, परन्तु वह कम-से-कम हो, इसका मैं प्रयत्न करूंगा।" महाराज ने इस प्रकार एक अपराधी को समझाया। उसने वकीलों की सलाह मानी। उस मार्ग पर जाने से मुजरिम को महाराज का खयाल था, उससे भी कम सजा हुई और चाहे जिस प्रकार से हो, वह बच गया, इसीसे महा-राज को आनंद हुआ। यही एक दृश्य इन सब प्रसंगों का और वर्तमान मानव-संस्कृति के स्तर का वास्तविक चित्र है।

और इसीमें अनासक्त प्रेमधर्मी रविशंकर महाराज की भव्यता का दर्शन मैंने किया है। ऐसी अनासक्त प्रेम-मूर्ति ही संस्कृति को ऊंचा उठा सकती है।

श्री मेघाणी द्वारा प्रस्तुत की हुई महीकांठा की इस जीवन-कथा में अवगाहन कर मैं धन्यता का अनुभव कर रहा हूं। आशा करता हूं कि पाठक भी ऐसा ही अनुभव करेंगे।

रानीपरज तथा दुबला हलपतियों की सेवा करनेवाले मेरे मित्र श्री जुगतराम दवे के साथ उनके क्षेत्र में, तापी, मिंढोल, पूर्णा तथा वाल्मिकी नदियों के तट पर घूमते हुए मैंने यह प्रस्तावना थोड़ी-थोड़ी करके लिखी है, यह भी मेरे लिए एक आनंद का विषय है।

सन् १९४५,
शरद पूनम

—काका कालेलकर

विषय-सूची

खण्ड : : २

खण्ड १

: १ :
"मैं 'डकैती' सिखाने आया हूं"

वात्रक नदी के किनारे के चरागाह से सटा यह रास्ता कभी भी रात में आने-जानेवालों के लिए भयावह माना जाता है। खानदानी कहलानेवाला कोई भी सफेदपोश गृहस्थ इस रास्ते पर रात को चलने की मूर्खता कभी नहीं कर सकता।

बाईस साल पहले एक अंधेरी रात में यह मार्ग विशेष रूप से भयंकर बन गया था। डाकुओं के तीन गिरोह—बाबरदेवा, नामदारिया और डाह्या फौजदार के—वात्रक तथा मही के किनारों पर चक्कर काट रहे थे। डाकू डाह्या अपनेको 'डायोभाई फौजदार' कहलवाता था।

ऐसी ही एक रात में धरती पर अन्धकार की काली चादर बिछ जाने पर कपडवंज तालुका के छीपीपाल गांव से निकलकर एक ब्राह्मण सरसवणी गांव की ओर जा रहा था। नंगे पैर, घुटनों तक धोती और सिर पर साफा लपेटे। उम्र होगी कोई चालीस साल।

यों तो सुबह से लेकर रात को सोने के समय तक सफर में रहने की उसकी हमेशा की आदत थी। सदा राह में मिलनेवाले किसानों की पालागी और प्रेममयी बातों का उसे खासा परिचय था, परन्तु बाहर के खेतों पर से छीपीपाल गांव की ओर लौटनेवाले लोगों का आज की रात का बर्ताव उसे कुछ अजीब-सा लगा।

उस रात को सब मर्द-औरतों की चाल में कुछ ऐसी व्याकुलता-भरी उतावली दिखाई दे रही थी, जैसी पहले कभी नहीं देखी गई थी। और दिनों में तो दोपहर की चिलचिलाती धूप में भी यदि यह महाराज सामने दिखाई देते तो आपस में से किसी एक की पगड़ी जमीन पर बिछाकर

उस पर उन्हें खड़ा करके लोग उनकी पदरज लिये बिना न रहते। पर निश्चिन्त मन से बातें करनेवाले ये लोग आज रात को इतनी जल्दी में क्यों हैं ? "लौट चलो", कहने में भी वे इतने धीरे और इतनी हलकी आवाजों में क्यों बोल रहे हैं ? उनकी वाणी चिन्ता से कुछ दबी हुई और कण्ठ अवरुद्ध-सा क्यों दिखाई देता है ? मुसाफिर के दिल में कुछ ऐसे विचार आये, पर वे आने के साथ ही दूर भी हो गए। किसान ही तो है। सम्भव है, घर पहुंचने की जल्दी में हो, और यह सभी जानते हैं कि एक बार वह चल पड़ा तो फिर वापस नहीं लौटता।

अब तो लोगों का आना भी बन्द हो गया। खेतों में कोई दिखाई नहीं देता और पश्चिम में वात्रक के चरागाह और दूसरी ओर खेतों के बीच होकर जानेवाले मार्ग की लीक ज्यादा गहरी हो गई थी। अंधेरा इतना घना था कि मुसाफिरों को अपना हाथ तक नहीं सूझता था।

एकाएक मुसाफिर की छाती से किसी का स्पर्श हुआ। उसे ऐसा लगा, मानो किसी जीवित मनुष्य का हाथ उसे पीछे धकेल रहा हो। उसने कहा, "कौन है ?"

"लौट जाओ।" केवल इतना ही उत्तर सामने से सुनाई दिया। बड़ा ही धीमा और भययुक्त स्वर था वह, मानो कान में कुछ कह रहा हो !

"कौन, पूंजा !" अपने हर पशु की आवाज को पहचाननेवाले बंजारे की तरह मुसाफिर ने उस दबी हुई आवाज को भी पहचान लिया।

"हां, लौट चलो।" मुसाफिर के सीने पर पीछे हटने का संकेत करनेवाले ने अपनी आवाज और भी धीमी की। परन्तु मुसाफिर को अपनी सदा से एक-सी बारीक आवाज को कम करने की आवश्यकता प्रतीत नहीं हुई। उसने पूछा, "परन्तु है क्या ?"

"आगे हरामखोर लोग पड़े हुए हैं, महाराज !"

"कौन, डाकू हैं ?"

"हां, नामदारिया।"

"फिक्र मत करो, पूंजा। मैं उन्हींको ढूंढ़ रहा हूं।" ब्राह्मण के मुंह से एकदम ये शब्द निकल पड़े।

यह ब्राह्मण मुसाफिर, घाराला-ठाकरडा के पुरोहित थे। बाद में वह जो कुछ कहते गए, करते गए। उसके पीछे पूरा विचार या परिणामों का अन्दाज़ अथवा विचार था या नहीं, यह तो वह मुसाफिर आज भी यदि किसी से मिले तो नहीं कह सकेगा। उसने फिर कहा, "मैं उन्हींको ढूंढ़ रहा हूँ, पूंजा ! मैं उनसे मिलना चाहता हूं।"

अचरज और डर से सहमे पूंजा के मुंह से अंधेरे में भी बड़ी मुश्किल से ये शब्द निकले, "ऐसा न कहें, बापा ! ये लोग आपकी इज्जत उतार लेंगे।"

"मेरी इज्जत ! पूंजा, मेरी इज्जत तो ऐसी है कि वे कभी उतार नहीं सकेंगे। चलो, उनसे मेरी भेंट कराओ।"

"नहीं, माई-बाप। मैं आपको यहां से एक कदम भी आगे नहीं जाने दूंगा और आपके साथ आऊंगा भी नहीं। उन्होंने आपका कुछ बिगाड़ा तो मैं आपको बचा नहीं सकूंगा, साथ ही मुझे भी मरना होगा। मैं कहता हूं, आप लौट चलो। वे आपको बान[1] में पकड़कर रोक रखेंगे।"

"बान में पकड़कर !" इन शब्दों से मुसाफिर के दिमाग में बिजली-सी कौंध गई। अबतक तो उसे इसका अन्देशा भी न था। एक ही विचार उसके मन में था, यानी डाकुओं के काम आ सके, ऐसा उसके पास कुछ न था। परन्तु 'बान' में पकड़ने की बात ने उसे चौंका दिया। ये लोगों को बान में पकड़ते हैं, बान को छुड़ाने के लिए बड़ी-बड़ी रकमें मांगते हैं और यदि समय पर रकम नहीं मिलती तो डाकू उसे कत्ल कर देते हैं। जान गंवाने का तो डर क्या हो सकता है, परन्तु सहसा उसे स्मरण हो आया कि उसके पास एक ऐसी कीमती चीज है, जो डाकुओं के हाथों नष्ट नहीं होने देनी चाहिए। उसके अपने प्राण भी अपने कहां थे ?

अपनी जिन्दगी को एक दूसरे स्थान पर उत्सर्ग करने की बाजी उसने

---

१ डाकू, लोगों को पकड़कर अपने पास कैद रखते हैं और मुक्त करने के लिए धन लेना या अपनी कोई शर्त मनवाना चाहते हैं। उसे 'बान' कहते हैं।

लगा रखी थी।

आज नहीं, आज से दो महीने बाद एक-दूसरे स्थान पर प्राणों की वलि देने के दस्तावेज पर कौल-करार हो चुके थे। उसका सिर तो बारडोली के युद्ध के लिए समर्पित था। १९२२ का वर्ष था। महात्मा गांधी ने ब्रिटिश सरकार को दो महीने की मुहलत देकर चुनौती दी थी। दो महीने में भारत को यदि स्वराज्य नहीं दिया गया तो गांधीजी सत्याग्रह-युद्ध आरम्भ करनेवाले थे। गुजरात इस युद्ध की प्रथम वलि वननेवाला था। इस देशव्यापी युद्ध का प्रथम वन्दनवार बारडोली के द्वार पर बंधने को था। इसमें सन्देह नहीं कि वहां सरकारी वन्दूकों की गोली की वर्षा होनेवाली थी। इन बन्दूकों की गोलियों को अपनी छाती पर झेलने के लिए दो हजार उम्मीदवारों ने नाम दर्ज कराये थे। उनमें दो नाम सबको वड़े प्रिय थे। एक था मोहनलाल कामेश्वर पंड्या और दूसरा हमारे इस ब्राह्मण मुसाफिर का।

सिर तो वहां जमा कर दिया गया था। मृत्यु का वह अवसर कितना मंगलमय, कितना मन को आनन्द से विभोर करनेवाला और अपूर्व था! मुसाफिर की कल्पना ने शीघ्र एक दृश्य खड़ा कर दिया।

पांच दिन पहले की बात है। महीकांठा के खानपुर गांव में बार-डोली संग्राम का सन्देश सुनाने के लिए एक आम सभा की गई थी। सभा समाप्त होने पर गांव का नौजवान मुखिया परसोत्तम, जो सरकारी नौकर था, इस ब्राह्मण के पास आया और उसे अपने घर ले गया। घर जाकर देखा कि परसोत्तम ने अपने दो छोटे बेटों के नाम शौकतअली-मुहम्मदअली रखे थे—इसलिए कि एक मोटा था और दूसरा दुबला-पतला। ब्राह्मण ने कहा, "परसोत्तम, तुम अब नौकरी छोड़ दो।" मुखिया ने कहा, "मेरी इतनी बिसात कहां?"

रात बीत गई। सुबह होते ही उसने अतिथि को खिला-पिलाकर कहा, "यहां बैठिये। घरवाली के साथ सारी रात बैठकर चर्चा की है और उसके बाद यह लिखा है, इसे पढ़िये।" ब्राह्मण ज्यों-ज्यों उसे पढ़ता जाता था, खुशी के मारे उछलता जाता था। बहुत कड़ा त्यागपत्र था वह। उसने मुखिया की ओर देखा। मुखिया बोला :

"इस इस्तीफे को अभी सरकार को भेज दूंगा, पर एक शर्त है। बारडोली में जब गोलियां चलें, तब पहली गोली मैं अपनी छाती पर लूंगा और जब मैं 'भारत माता की जय' कहकर गिर पड़ूं, तभी दूसरे के गोली खाने की बारी आवेगी; उससे पहले नहीं। मंजूर है यह शर्त ?"

इस प्रसंग का उसे ध्यान हो आया। दिल ने कहा, 'मैंने अपना जीवन तो ऐसे रोमांचकारी राष्ट्रमंगल मृत्यु-पर्व को समर्पित किया है। यहां डाकुओं के हाथों उसका विनाश करने से क्या लाभ ! मनवा, लौट चल पीछे, लौट चल...'

उसी क्षण एक दूसरा दृश्य ब्राह्मण के सामने आया। तीन दिन हुए; वासणा गांव के चौक में रात को यह घटना घटी थी। उसने स्वयं लोगों को डाकुओं का सामना करके प्राण देने के लिए आमन्त्रित किया था। उस समय महेमदाबाद तालुके का एक पाटीदार अपनी कहानी सुनाने के लिए उपस्थित हुआ था। उसने जो बात कही, वह इस प्रकार है :

"डाकू हमारे घर आये। मेरे पास दुनाली बन्दूक थी, फिर भी मैं भागा। बाद में मुझे समाचार मिला कि सौर में पड़ी हुई मेरी स्त्री और अन्धी मां को डाकू अच्छी तरह पीट-पाटकर चले गए।"

यह घटना सुननेवाले पाटीदार से उसी समय भरी सभा में इस ब्राह्मण ने कहा, "वाह भाई, वाह ! अब तो शायद तुम्हारी मौत कभी होगी ही नहीं ? हैजा, प्लेग या स्वाभाविक मौत तुम्हारे पास कभी भी नहीं फटकेगी। है न ? शरम नहीं आती। तुम्हारे कारण सौर में पड़ी तुम्हारी पत्नी को और नौ महीने पेट में रखकर जिसने तुम्हें जनम दिया, उस माता को मार खानी पड़ी और तुम उन्हें छोड़कर भाग गए, पास में दुनाली बन्दूक होते हुए भी !" यह कहकर उसने लोगों को डाकुओं का मरते दम तक सामना करने को ललकारा था।

'और आज ही यदि मैं लौट जाऊं, पीछे हटूं तो वे लोग क्या कहेंगे ? वह पाटीदार क्या कहेगा ? दो महीने बाद होनेवाली बारडोली की लड़ाई की बात कौन समझेगा ?'

इन दोनों विचारों को तौलकर उसने तुरंत निर्णय किया और कहा, "पूंजा, तुम भले ही मत आओ, पर मुझे बताओ कि वे लोग कहां हैं।"

क्षणभर नीरवता छाई रही। पूंजा के हृदय से निश्वास निकल पड़ा। मुसाफिर ने उसे सुना। फिर पूंजा तो इतना ही कह सका, "क्या सचमुच आप वहां जायेंगे ?"

"हां, पूंजा, जरूर जाऊंगा। कहां हैं वे लोग ?"

"यहीं पास के खेत में पड़े हैं।" पूंजा ने पूर्व दिशा में ऊंची जमीन-वाले खेत की ओर इशारा करके विवश वाणी में कहा, "परन्तु देखिये बापू, यह किसी को भी न बताइये कि यह बात मैंने आपसे कही है। यदि डाकू यह जान गए तो वे मेरी बोटी-बोटी उड़ा देंगे और पुलिस को खबर हुई तो वे मेरा लहू पी जायंगे।"

"अच्छा, तुम जाओ !"

पूंजा अंधेरे में अदृश्य हो गया और मुसाफिर उस ओर की गहरी पगडंडी पर आगे बढ़ गया। कुछ दूर जाने पर उस पगडंडी के किनारे एक खेत की वाड़ में टट्टर लगा हुआ दिखाई दिया। वह ऊपर चढ़कर टट्टर के पास पहुंचा ही था कि उसके पीछे बैठा हुआ आदमी उठ खड़ा हुआ। वह ऊंचा, पूरे कद का जवान था। हाथ में बन्दूक थी, चुपचाप खड़ा था। तारों के उजाले में वह स्पष्ट दिखाई दे रहा था। आदमी जब खामोश रहता है, तब अधिक भयंकर लगता है।

"हा-हा-हा !" मुसाफिर ने उस बन्दूकवाले को देखते ही जोर से अट्टहास किया। आज वह यह नहीं बता सकेगा कि उस रोज उसे इस भयानकता में हँसी कैसे आई ! बड़े जोर से हँसते हुए उसने पूछा, "क्यों भाई, तुम अकेले क्यों हो ? और सब लोग कहां हैं ?"

वह अट्टहास और उसके बाद तुरन्त पूछा गया यह विचित्र प्रश्न, उस बन्दूकवाले को विमूढ़ बनाने के लिए काफी था। उसने कुछ जवाब नहीं दिया। मुसाफिर ने टट्टर खोलकर अन्दर प्रवेश किया और वह खेत में चलने लगा। बन्दूकवाला भी चुपचाप उसके पीछे हो लिया।

थोड़ी ही दूर गये होंगे कि मुसाफिर ने दूसरे दो बन्दूकवालों को अपने सामने खड़ा देखा। वे भी मौन थे।

"तुम दो ही क्यों हो ? और लोग कहां हैं ?" मुसाफिर के मुंह से यह सवाल अपने-आप निकल पड़ा।

उनमें से भी किसी ने जवाब नहीं दिया। मुसाफिर और आगे बढ़ गया। दोनों बन्दूकवालों में से एक मुसाफिर के दाएं और दूसरा बाएं होकर चलने लगा। तीसरा बन्दूकवाला तो उसके पीछे ही था। इतने में सामने से आवाज़ आई :

"खबरदार ! वहीं खड़े रहो, वरना गोली से उड़ा दिये जाओगे।" मुसाफिर तुरन्त रुक गया। उसने बोलनेवाले को थोड़ी दूर पर घोड़े पर बैठा देखा। तीन बन्दूकवाले तो मुसाफिर के तीनों ओर थे ही।

"कौन है तू ?" घोड़े की पीठ पर से सवाल पूछा गया।

"डाकू हूं।" मुसाफिर ने कहा।

"यहां क्यों आया है ?"

"कुछ बातें करने, तुम सबसे मिलने। कहां हैं और सब ?"

घुड़सवार ने इसका जवाब नहीं दिया, चुप रहा। परन्तु आठ-दस नये आदमी आकर सामने खड़े हो गए। थोड़ी देर की शान्ति के बाद मुसाफिर ने कहा, "दूर क्यों खड़े हो ? पास आओ, बैठो।"

जैसे आज्ञा का पालन कर रहे हों, वे लोग मुसाफिर के सामने ज़मीन पर बैठ गए। तीनों बन्दूकवाले बन्दूकें तैयार करके तीनों दिशाओं में खड़े थे। सामने की चौथी दिशा में घुड़सवार अपने स्थान पर सावधान और निश्चल था।

दूर से घुड़सवार ने फिर प्रश्न किया, "कौन है तू ?"

"कहा न कि मैं 'डाकू' हूं।"

"किस टोली का ?"

"गांधी महात्मा की टोली का।"

सामने से कोई सवाल नहीं हुआ। टोलीवाले का नाम सुनते ही सब डाकू चुप हो गए और मुसाफिर की वाणी का प्रवाह अपने-आप आगे बढ़ा :

"मैं महात्मा गांधी की टोली का एक सिपाही हूं और तुमको सच्ची डकैती की रीति सिखाने आया हूं। कहने आया हूं कि उन्होंने अंग्रेज़ सरकार के विरुद्ध विद्रोह शुरू किया है। हमारे अपने सब दुःखों की जड़ यह विदेशी सरकार है। सच्चा विद्रोह, सच्ची डकैती तो इनके विरुद्ध होनी

चाहिए। तुम्हारी इन छोटी-छोटी डकैतियों से कुछ नहीं होने का। आज से ठीक दो महीने बाद अंग्रेज सरकार बारडोली पर गोलियां बरसायेगी। अगर तुम सचमुच डकैती करना चाहते हो तो चलो गांधी महात्मा के पास। वह सब लोगों का भला कर रहे हैं।"

जबतक मुसाफिर बोलता रहा, बारह आदमियों में से किसी एक के मुंह से एक शब्द भी नहीं निकला। फिर घुड़सवार ने पूछा, "गांधी महात्मा ने लोगों का क्या भला किया है ?"

"अहमदाबाद में नहीं देखा क्या ?" इस प्रसंग को बताकर उस मुसाफिर ने एक ऐसी बात कह दी, जिसे डाकू भी समझ सकते थे। "मिलों के सेठ लोग मजदूरों की मजूरी बढ़ाने को तैयार नहीं थे। आखिर गांधी महात्मा ने फाका करके उनकी रोजी बढ़वाकर सांस ली।"

सामने बैठे हुए लोगों की भी अब जबान खुली और उनमें से एक ने कहा, "गांधी महात्मा ने इसमें लोगों का क्या भला किया ? उनका नुकसान ही ज्यादा किया। सेठ लोग कपड़े का उतना भाव बढ़ा देंगे और हम सबको कपड़ा ज्यादा महंगा मिलेगा।"

यह दलील सुनकर एक पल के लिए तो मुसाफिर भी चकित रह गया। डाकू के मुंह से निकली यह अनपेक्षित चुटीली दलील गोली की तरह ठीक निशाने पर बैठी। दलीलबाजी में कुशल खिलाड़ी की बौद्धिक चपलता से नहीं, बल्कि अन्न-वस्त्र ही जिनका सर्वस्व है, ऐसी जनता की अन्तर्वेदना समझनेवाले मुसाफिर ने बड़े ही सहज भाव से जवाब दिया, "सेठों की पकड़ में न आने के लिए ही तो गांधी महात्मा ने लोगों को चरखा चलाने को कहा है। सेठ लोग भले ही कपड़ा महंगा बेचें, हम लोग तो चरखा कात-कर कपड़े पहन सकते हैं। गांधी ने हमको साधन दिखा दिया है।"

"अरे नहीं, महाराज।" टोली में से एक ने कहा। 'महाराज' शब्द निकलते ही मुसाफिर ने समझ लिया कि वह पहचान लिया गया है। "क्या लोग ऐसे महात्मा का चरखा कातेंगे ? वे तो तब कातेंगे जब हमारी बन्दूकें देखेंगे।"

"अच्छा, तो तुम चलो महात्मा गांधी के पास। मैं तुम्हें लेने के लिए आया हूं। वह तुम्हें सब बातें समझा देंगे। चलो। अगर मुझ पर विश्वास

न हो तो तुममें से एक ही आदमी चला चले। यदि मैं दगा करूं तो बाकी के तुम सब मुझसे अपना बदला ले सकते हो।"

"गांधी महात्मा जब हमारे मुल्क में आयेंगे तब देखेंगे। तभी हम लोग उनसे मिलेंगे, अभी नहीं!" घुड़सवार ने उत्तर दिया। "हम लोग गरीवों को सतानेवाले नहीं हैं। तुम बताओ, पैसेवालों या गरीबों को सतानेवालों के सिवा किसी दूसरे को हमने कभी मारा या लूटा है?"

"तुमको इसका क्या पता?" मुसाफिर ने कहा, "जैसे ही तुम्हारे आने का समाचार मिलता है, लोग डर के मारे बेहाल हो जाते हैं। भागते हैं, छिपते हैं, खेती या धन्धा कुछ कर नहीं सकते और ऊपर से उन्हें पुलिस भी सताती रहती है। तुम नहीं जानते, तुम्हारा कैसा आतंक है!"

"पेट के लिए ही तो यह सब करना पड़ता है।" एक डाकू ने कहा।

"पेट के लिए! तुम्हारा हरएक का पेट तो हर महीने १५ सेर अनाज मांगता है, लेकिन तुम लोगों को हजारों की लूट करनी पड़ती है। तुम्हें अपने आश्रय देनेवाले को देना पड़ता है, पुलिस को भी कुछ देते ही होगे! सिर्फ अपना पेट भरने के लिए लूटने से तुम्हारा पूरा थोड़े ही पड़ता है।"

डाकुओं के पास इस दलील का कोई जवाब न था। झूठे तर्क करके जवाव देने की वृत्ति उनकी नहीं थी। वे चुप रहे। थोड़ी देर के बाद एक आदमी ने, जो आवाज़ से जवान मालूम पड़ता था, मुसाफिर से पूछा, "पैंसिल का टुकड़ा होगा तुम्हारे पास?"

"हां, है।"

"कागज़ भी?"

"हां, है।"

"तो दो, हम तुम्हारे गांव के बामण सोमा मथुर को चिट्ठी भेजना चाहते हैं।"

"कैसी चिट्ठी?"

"पांच सौ रुपये दे जाओ, वरना तुम्हें जान से मार दिया जायगा। यह चिट्ठी सोमा मथुर को पहुंचा देना।"

अबतक की बातचीत में मुसाफिर की आवाज़ किसी कुलीन वधू के कण्ठ से निकलने वाले एक मीठे और सुरीले स्वर के समान थी। वह अब कुछ ऊंची हो उठी। उसने कहा :

"मेरी पेन्सिल और कागज़ ऐसी चिट्ठियों के लिए नहीं है और न मैं चिट्ठियां पहुंचाने के लिए यहां आया हूं। मैं तो अपने गांव जाकर गांव के लोगों को तैयार करूंगा और कहूंगा, खबरदार रहें, डाकू आ रहे हैं। हमें उनसे लड़ना होगा। वे हमारे गांव पर हाथ डालें, उसके पहले हमें मरना होगा!"

"अरे ओ, वेअक्ल!" एक ने आवेश में कहा। दूसरे सब एक साथ उसे उलहना देने लगे—"चुप रह, महाराज को कहीं ऐसा कहा जाता है! बेवकूफ कहीं का!"

फिर एक ने मुसाफिर की ओर देखकर कहा, "यह तो जंगली है, जंगली! उसका आप बुरा न मानें, महाराज। गांव के लोगों से जो कुछ कहना हो, भले ही कहो और अब आपको जाना हो तो जाओ। चलो, हम छोड़ आयें।"

"अगर मुझे अकेले जाने में दिक्कत होती तो मैं यहां अकेला आता ही क्यों? अकेला आया था, अकेला ही चला जाऊंगा।"

इतना कहकर मुसाफिर वहां से चल दिया। कुछ दूर जाने पर एक साथ छूटी हुई बन्दूकों की आवाज़ उसने सुनीं। ये बन्दूकें डाकुओं ने हवा में दाग़ी थीं।

मध्य रात्रि में सरसवणी ग्राम में पहुंचकर मुसाफिर ने लोगों को जगाया और सबके सामने सारी बात कह सुनाई। लेकिन सरसवणी गांव पर उस रात या उसके बाद फिर किसी भी रात को किसी लुटेरी टोली ने आक्रमण नहीं किया।

: २ :

एक हवाई ने सारा जीवन जला दिया

"पहचानते हैं ?"

१९४२ के साल में साबरमती जेल में साठएक साल के एक नये आये हुए कैदी से कोई पचपन साल का, सूख कर कांटा बना हुआ, एक कैदी यह सवाल पूछ रहा था और उसकी अभ्यर्थना कर रहा था।

"नहीं पहचान पा रहा हूं," नये कैदी ने अपना सूखा चेहरा हिलाकर उस कैदी के प्रति अपना अज्ञान प्रकट किया।

"याद कीजिए, कहीं मुझे देखा है ?"

"याद नहीं आ रहा।" नये कैदी ने उसका मुंह ध्यानपूर्वक देखकर कहा।

"नहीं याद पड़ता ? उस दिन रात को वात्रक नदी के किनारे के खेतों में टट्टर की आड़ में कोई बन्दूकवाला खड़ा हुआ था न ?"

हां, बीस साल हुए छीपीपाल गांव से सरसवणी जाते हुए रास्ते में डाकुओं से मुलाकात हुई थी। उसकी याद आते ही कैदी को आश्चर्य हुआ। उसने कहा, "वह..."

"हां, वह बन्दूकवाला मोती, मैं ही हूं।"

बात बीच में ही काटकर उसने कहा।

"ओहो, मोती ! बीस साल पहले के तुम !"

"हां, बीस साल तो कट गए। बत्तीस अभी बाकी हैं।"

"सच मोती, तो तुम्हें बावन साल की सजा हुई है !"

इस विचार से नये कैदी के दिल में गहरी उदासी छा गई। सन ४२ के अगस्त की नवीं तारीख से भारत में स्वतंत्रता-संग्राम छिड़ा था। नये

कैदी रविशंकर महाराज को कई बार साबरमती जेल में लाया गया था। सन २२ तथा ४२ के दरमियान के २० साल के समय में तो उन्हें कई बार साबरमती जेल में आना पड़ा था, परन्तु पहले कभी मोती से उनकी एक बार भी भेंट नहीं हुई थी। सन २२ में एक अंधियारी रात को खेत के टट्टर के पीछे से निकलकर खड़ा हो जानेवाला बन्दूकधारी नौजवान आज यकायक ऐसा बूढ़ा होकर उनसे मिल रहा था, मानो उस काली रात का जवान मोती तो मर गया हो और यह कोई दूसरा ही हो! पल-भर के लिए महाराज के दिल पर आरी-सी चल गई। वह पहले कभी मोती से मिले तो नहीं थे, परन्तु उसकी जीवन-गाथा से परिचित थे। वह गाथा यह है :

देवकी वणसोल महेमदावाद तालुके का एक गांव है। मोती उस गांव का एक बारैया[1] था। खेती-मजदूरी करके गुजर-बसर करता था। ब्याह उसका हो गया था। पत्नी की गोद में एक छोटा-सा बालक भी था। छोटे-से घर में वह छोटा-सा परिवार शांति-पूर्वक रहता था।

देवकी वणसोल के सरकारी मुखिया गरासिया[1] थे। एक तो जाति के गरासिया और फिर मुखिया! उनके लड़के की शादी में, दूसरों के घर की अपेक्षा, कहीं ज्यादा धूमधाम रही। रात को वरयात्रा का जलसा था, उसमें हवाइयां छोड़ी गईं। मोती की पत्नी अपने छोटे बच्चे को लेकर रास्ते में खड़ी-खड़ी आसमान में अग्निफूल या तारे बिखेरती हवाइयों को देख रही थी। उनमें से एक हवाई उसके ही छप्पर पर जा गिरी। फूंस का वह छप्पर तुरन्त जल उठा और बुझाने का समय मिले, उससे पहले आग ऐसी भड़की कि घर खंडहर बन गया।

सवेरा होते ही मुखिया को समाचार मिला कि मोती पुलिस में रिपोर्ट लिखाने महेमदाबाद जा रहा है। मुखिया ने गांव के कुछ लोगों को भेजकर उसे लौटाया और यह तय हुआ कि दिवाली आने से पहले मुखिया नया घर बनवा देगा। मुखिया चूंकि एक फरीक थे, इसलिए मोती बारैया का मन नहीं मान रहा था। उसे विश्वास नहीं हो रहा

१ एक जाति विशेष।

था । इसलिए उसने उस करार को मंजूर नहीं किया ।

काठियावाड़ (सौराष्ट्र) का एक बनिया देवकी वणसोल जाकर कुछ कमा लाया था, इसलिए काफी सुखी था । दूसरे का काम करके प्रशंसा प्राप्त करना पंच लोगों का स्वभाव होता है । उस समय उसने मोती से कहा, "मैं वचन देता हूं। मुखिया अगर नया घर नहीं बना देगा तो मैं बना दूंगा । अब बात न बढ़ा, अपनी जिद छोड़ दे और घर जाकर मौज कर ।"

काठियावाड़ी के मुंह से जब 'मौज कर' शब्द निकलता है तब सुननेवाला अपने चारों ओर एक प्रकार की कोमलता का अनुभव करता है । सेठ ने वचन दे दिया है, इसलिए मोती बारैया को सन्तोष हो गया । वह उठकर चला गया ।

तीनों प्राणियों ने बिना घर-जमीन के ही किसी तरह दिवाली निकाल दी । आषाढ़-श्रावण के बावले मेह और भादों की जलती हुई धूप उन्होंने किसी-न-किसी की आड़ लेकर सहन कर ली, परन्तु खंडहर हुए घर ने ईंट-चूने के दर्शन नहीं किये । मोती बारैया डरता-लजाता जब कभी मुखिया के पास जाता तो उसे उस गरासिया मुखिया की शहद-सी मीठी जीभ से एक ही उत्तर मिलता—"हां, जल्दी ही करा देंगे । अब देर नहीं है । महेमदाबाद जाकर, सामान भरकर, गाड़ी आने की ही तो देर है ।"

महेमदाबाद से सामान भरी गाड़ी आने की राह देखते-देखते दूसरे वर्ष के महीने भी एक के बाद एक निकले चले जा रहे थे और मोती ठगा-सा अपना मुंह लेकर ही रह जाता था । मामला ठंडा पड़ गया । मुखिया को क्या चिन्ता थी ! चैत, वैसाख तपकर चले गए और वर्षा की ठण्डी झड़ी भी शुरू हुई । भादों की धूप निकली और फिर दिवाली आ पहुंची । यह दूसरी दिवाली थी । अब मुखिया की जबान भी कुछ अक्खड़ बन गई । उसने कहा, "ऐसी जल्दी हो तो जा, जाकर नालिश कर दे । हमें जब सुविधा होगी, तभी बनवायेंगे ।"

मोती बारैया जवान था । अठारह महीने से बिना सहारे, सिर पर बिना छप्पर की छाया के, रह रहा था । वह हाथ में धारिया[1] भी रखता

१ एक प्रकार का शस्त्र ।

था। मुखिया की इन बातों को सुनकर उसे बड़ा क्रोध आया। परन्तु उसने गम खाया और जामिन बने सेठ से जाकर कहा। इस पर सेठ ने जवाब दिया, "मैं ऐसा जामिन तो नहीं बना कि अपने पैसों से तुम्हारा घर बनवा दूं। हां, अगर मुखिया पैसे देंगे तो बनवा देने की ही मैंने जमानत दी थी।"

यह सुनकर मोती बारैया सोच में पड़ गया कि जामिन कैसा होता है और किसे कहा जाता है। जामिन बनते समय सेठ ने अपने दिल में जमानत के नाम पर कैसी धोखाधड़ी छिपा रखी थी, इसकी जानकारी उसे डेढ़ साल बाद हुई। इससे उसका पारा कुछ चढ़ गया। उसने कहा, "यों बात उड़ा देने से तो काम नहीं चलेगा।"

"तो तुमसे जो बने, कर लो।"

एक दिन सुबह मोती बारैया जंगल जाने के लिए निकला। गांव की सीमा के तालाब पर निबटकर लौटा हुआ काठियावाड़ी सेठ लोटा मांज रहा था। मोती ने अपने घर के बारे में तकादा किया। सवेरे-सवेरे तो सच्चे लेनदार का तकादा भी सिर पर किये गए वज्राघात-सा बुरा लगता है। उस पर मोती बारैया का तकादा, जिससे सेठ को कुछ भी लेना-देना न था। सेठ को कितना बुरा लगा होगा, यह तो उसका दिल ही जानता है। अठारह महीने तक जो बिना किसी प्रकार का बखेड़ा किये चुपचाप सहन करता रहा है, उस पर क्या बीतेगी, यह बिना सोचे ही सेठ ने कह दिया, "जा, तुझसे जो हो सके, कर लेना।"

मोती बारैया के कन्धे पर धारिया था। इस उत्तर को सुनकर वह अपने-आपको काबू में नहीं रख सका। एक ही वार में सिर धड़ से अलग करके ढाई साल तक वह अपने सगे-सम्बन्धियों में छिपा रहा और जब नामदारिया की डाकू की टोली बनी, वह उनका साथी बन गया।

वात्रक के किनारे के एक खेत में उस रात को जब नामदारिया का गिरोह अंधेरे में छुपा हुआ था, उस समय डाकुओं से मिलने जानेवाले रविशंकर महाराज के आगे खेत की बाड़ में लगे टट्टर के पीछे से खड़ा होने वाला बन्दूकधारी डाकू यह मोती था। यह तो जब मोती ने सन '४२ में कहा, तब महाराज ने पहली बार ही जाना था। पर मोती नाम का

बारैया सेठ का खुन करके डाकुओं में मिल गया है और उसे ५२ साल की सजा हुई है, यह जानकारी उन्हें पहले से ही थी।

अब जेल में उन्हें अधिक जानकारी मिली। जेल में आकर जवान मोती ने जो सबसे पहला पराक्रम किया, वह यह था कि उसने जेल का कोई काम करने से साफ इन्कार कर दिया। सादी मजूरी, मध्यम मजूरी, भारी काम कुछ भी करने से इन्कार किया। आगे भी वह इन्कार ही करता रहा। चक्की पीसने को कहा, उत्तर मिला, "नहीं।" कहा, "घानी में जुतो" तो कहा—"कभी नहीं।" "मोट खींचो।" "नहीं।" "सबको लुभानेवाला रसोड़े का काम करोगे ?" "नहीं।" "झाड़ू लगाने जैसा सादा काम करोगे ?" "नहीं।"

काम करने से इन्कार करने पर एक के बाद एक मोती को सजाएं मिलने लगीं। मोती चुपचाप सब सहने लगा। जेल-नियमावली के तर-कस में सजाओं की कोई सीमा नहीं है। परन्तु मोती की ताकत की भी थाह नहीं मिल सकी। डण्डा-बेड़ी, खड़ी बेड़ी, टाट के कपड़े। इस प्रकार की सजाओं के दिये जाने के बाद एक साथ तेरह दिन तक खाना बन्द करने की सजा उसे मिली। ग्यारहवें दिन मोती बेहोश होकर गिर पड़ा तो डॉक्टर ने आकर उसे खाना देने की आज्ञा दी और पूछा, "अब काम करोगे ?"

"नहीं...नहीं।" उसकी आवाज़ बदल गई थी, पर जवाब नहीं बदला था।

"अच्छा, इसे अंधेरी कोठरी में ले जाओ।"

अंधेरी कोठरी में, एकाकी जेल के बन्द द्वारों के पीछे, मोती बन्द हो गया।

एक दिन, दो दिन, सात दिन !

एक महीना, दो महीना, छः महीना—

एक वर्ष, दो वर्ष, तीन वर्ष, चार-पांच वर्ष और छः वर्ष...

लगातार, एक दिन की भी छुट्टी के बिना, छः वर्ष—अंधेरी, एकाकी कोठरी में।

छठे वर्ष में प्रदेश की जेलों के बड़े अधिकारी कर्नल भण्डारी जेल

की जांच के लिए आये। अंधेरी कोठरी में जाकर खड़े हो गए। कहा, "इसे खोल दो।"

कोठरी खोल दी गई, मानो जीवित-समाधि खोली गई हो। अन्दर जीवित खड़ा था बारैया मोती।

"तुम काम करोगे ?" अधिकारी ने पूछा।

"नहीं।" अब भी उसका जवाब नहीं बदला था।

"अच्छा, काम मत करना।" (अधिकारी से) "इसे चक्कर में ले जाओ, कुछ भी काम न देना। मजे से रखना। बिलकुल सताना नहीं।"

छः वर्ष के बाद मोती फिर से सब कैदियों के साथ खुले निवास में रहने के लिए चला गया।

तीसरे ही दिन मोती बारैया बड़े अधिकारी के सामने आकर खड़ा हो गया।

"साब, एक अरज करनी है।"

"क्या ?"

"मुझे काम दो।"

"क्यों ?"

"बिना काम अच्छा नहीं लगता। काम दो।"

कर्नल भण्डारी ने आगे पूछताछ नहीं की। आखिर इतने दिनों से वह क्यों इन्कार करता रहा था। अब एकाएक क्या हो गया ? ये बातें उनके दिमाग़ में उठीं जरूर, पर उन्होंने एक शब्द भी नहीं कहा। केवल इतना ही कहा, "जैसी तुम्हारी इच्छा।"

मोती काम करने लगा। वह पहले दरजे का उद्यमी कैदी साबित हुआ। अन्त में वह मुकादम बना और उसके सिर पर पीली पगड़ी रखी गई, अलग-अलग जेलों में उसकी बदली भी की गई।

एक दिन रत्नागिरि जेल में उसे समाचार मिला कि गांधीवाले नये आये हुए कैदियों में एक औरत कैदी भी है और वह कोई महाराज नाम के मशहूर गुजराती की लड़की है।

"महाराज !"

पन्द्रह-वीस साल पहले का यह पवित्र शब्द मोती के कानों में पड़ा।

"महाराज की लड़की !" वह दौड़कर स्त्री-कैदियों की कोठरियों में जा पहुंचा। वहां उसने रविशंकर महाराज की पुत्री को ढूंढ़ निकाला। उसके चरणों में वन्दना की और बोला :

"बहन, तुम्हारे पिता तो मेरे गुरु हैं। तुम ज़रा भी मत घबराना। तुम्हें जो भी चाहिए, मुझसे कहना। समझीं।"

कई जेलों में उसकी बदली हुई। मोती जवान से अधेड़ बन गया। अधेड़पन खोकर बुढ़ापे में प्रवेश कर वह फिर साबरमती जेल में आकर स्थिर हुआ। जब महाराज आये तब, जैसा कि ऊपर कहा गया है, वात्रक नदी के किनारे के खेत में से उस भयानक रात्रि में टट्टर के पीछे खड़े होनेवाले बन्दूकधारी जवान का स्मरण दिलाकर उनसे मिला।

राजनैतिक कैदियों के रहने के स्थान में मोती खुलकर आता-जाता था, बातें करता था और उनकी बातें सुनने के लिए खड़ा रहता था। बीच में कभी एकाएक सीटी सुनाई देती तो वह बोल उठता, "तो अब जाऊंगा। मां बुला रही है।"

"मां बुला रही है ! कौन मां ?" राजनैतिक कैदियों को आश्चर्य होता तो मोती कहता, "मां बुला रही है, अन्नपूर्णा बुला रही है। यहां वीशी भोजनशाला हमारी सच्ची मां है। वीशी में जाने पर शाक-रोटी पाते हैं। मां है वीशी तो।"

एक दिन राजनैतिक कैदियों के लिए बाहर से किसी ने महाराज के लिए मक्की के भुट्टे भेजे। महाराज ने उनमें से एक लेकर मोती को दिया।

घड़ी-भर मोती उसे देखता रहा। उसकी आंखों में पानी भर आया। वह कुछ बोल न सका।

फिर मोती ने मक्की का भुट्टा जमीन पर रख दिया और उसकी परिक्रमा करके उसे दंडवत प्रणाम किया। बोला, "माताजी, आज बाईस साल के बाद तुम्हारा दर्शन कर रहा हूं। खाने की तो बात ही दूर है।"

सब लोगों ने उसे परिक्रमा करते देखा। उसके शब्द भी सबने सुने।

यह कोई मामूली बात न थी। सबके चेहरों पर वेदना की रेखाएं उभर आईं। गुजरात का पृथ्वी-पुत्र बाईस साल के बाद मक्की के कुछ दानों को देखकर अपने को कितना धन्य मान रहा था !

महाराज ने अपने साथियों से पूछा, "भाइयो, क्या अब हम ये भुट्टे खा सकेंगे ?" सबने सिर हिलाकर मना कर दिया। उसको चखने की हिम्मत किसी में न थी ! "लो मोती, ये सब भुट्टे तुम ले जाओ और भूनकर सब कैदी इसका स्वाद लें।"

"ना, दादा, हम उन्हें कहां जाकर भूनेंगे ?"

× × ×

एक दिन मोती का सारा इतिहास रविशंकर महाराज ने अपने साथी राजबंदी श्री गणेश वासुदेव मावलंकर दादा साहब के सामने कह सुनाया। गुजरात के राष्ट्र-भक्त वकील श्री मावलंकर का हृदय पसीज उठा। उन्होंने सरकार को एक दया-याचना की अरजी लिखी, जिसमें सारे इतिहास का उल्लेख कर यह स्पष्ट किया कि उसकी जवानी ने कैसे संयोगों के कारण गुनाह के रास्ते का अनुसरण किया था। इस आदमी के घर पर पत्नी और एक बेटा बाईस साल से राह देख रहे हैं। इसकी जवानी तो अब मिट्टी में मिल चुकी है, परन्तु शेष जीवन के दो-चार साल अपनी पत्नी और बेटे के साथ रहकर बिताने का उसे अवसर दिया जाय। इस अरजी का तत्काल परिणाम हुआ। एक दिन सरकारी कैद के शेष तीस वर्षों की माफी पाकर मोती साबरमती जेल के दरवाजे से बाहर निकला।

परन्तु...

परन्तु घर जाने के लिए नहीं। बड़ौदा राज्य में सुपुर्द होने के लिए, क्योंकि बड़ौदा राज्य में किये गए गुनाहों के लिए उसे वहां लम्बी सजा काटनी बाकी थी।

आज मोती बड़ौदे की जेल में है।[1]

---

१ दस साल की सजा में से तीन साल की सजा भुगतकर वहां से भी मोती सन १९४६ में अपने घर पहुंच गया।

: ३ :

हाज़िरी

रात को लगभग नौ बजे होंगे कि ढोल बजाया गया। थोड़ी देर में सरकारी चबूतरे के आगे गांव के लोगों की टोलियां जमा होकर जमीन पर बैठने लगीं। एक ओर स्त्रियां बैठीं, दूसरी ओर पुरुष बैठे।

सरकारी चबूतरे पर लालटेन के प्रकाश में रजिस्टर तथा कलम-दवात लेकर बैठे हुए शख्स को आनेवाले सब नम्रतापूर्वक 'रामराम' कह रहे थे। रामराम का उत्तर देने में लापरवाह वह मनुष्य ओसारे में कुर्सी पर बैठे हुए अपने मेहमान की ओर बार-बार देख रहा था। उसके अधिकार तथा वैभव का मेहमान पर कैसा रौब पड़ रहा है, उसकी नजर उसीका अन्दाज लगाने में लगी हुई थी। मेहमान के पास एक पलंग भी बिछा हुआ था। उसका गद्दा मुलायम, लम्बा-चौड़ा और भारी था। चद्दर दूध-सी सफेद थी और उस पर मुलायम तकिया रखा हुआ था।

रजिस्टरवाला अपने रजिस्टर में से नामों को पुकारता जाता था और सामने से 'हाज़िर' के जवाब मिलते जा रहे थे।

"करसन पूंजा"—"हाज़िर"

"मोती देवा"—"हाज़िर"

"गुलाब काला"—"हाज़िर"

"हाज़िर" कहकर कहनेवाला या तो उठकर चला जाता था, या स्वेच्छा से वहां बैठा रहता था। बीच में स्त्रियों के नाम भी बोले गए। स्त्रियों के 'हाज़िर' शब्द विविध प्रकार के महीन तथा कोमल कण्ठों से निकल रहे थे।

"जीवी शनियो"—"हाज़िर"

"मणि गुलाब"—"हाज़िर"

यह अन्तिम 'हाज़िर' शब्द एक स्त्री के कण्ठ से निकला हुआ सुनकर रजिस्टर भरनेवाले गरासिया से दीखनेवाले आदमी ने तुरन्त ही रजिस्टर से सिर उठाकर स्त्रियों की ओर देखा और कहा :

"यह कौन, 'हाज़िर' बोली ?"

"मैं मणि ।" स्त्री ने उत्तर दिया ।

"मणि ही है न ? मुझे ठगना तो नहीं चाहती है ? इधर आ, उजाले में अपना उजला मुंह तो दिखा । देखूं, मणि है कि नहीं ?"

"यह लो । देख लो मेरा मुंह ।" स्त्री ने खड़ी होकर अपना चेहरा लालटेन के प्रकाश में आगे कर दिया ।

"अच्छा, जा ।" यह कह कर अधिकारी ने मेहमान की ओर मुड़कर सफाई दी, "असल के बदले दूसरी औरतें हाज़िरी भरवा देती हैं । मन में समझती हैं कि मुझे क्या पता चलेगा । पर वे जानती नहीं कि मैं एक-एक की आवाज पहचानता हूं । मैं कोई छोटा वच्चा थोड़े ही हूं !"

इतनी टीका करने के वाद वह गरासिया मुखिया रजिस्टर में से फिर नाम पुकारने लगा । इधर कुर्सी पर बैठे हुए मेहमान के स्वच्छ, स्वस्थ मुंह पर गरम लहू ने हरकत की । क्रोध, शर्म, हताशा और इनका अंधकार-मय भविष्य, इन भावनाओं की उनके चेहरे पर रेखाएं खिचने लगीं ।

हाज़िरी पूरी करके मुखिया ने रजिस्टर बन्द किया और फिर अपने मेहमान की ओर देखकर कहा, "अभी वेफिकरी कहाँ हुई ? रात में ये कुछ न करें तव है । इन लोगों का क्या कहना ! यहां हाज़िरी देकर वाद में पच्चीस-पच्चीस कोस जाकर सेंध लगाते हैं ।"

'और औरतें ?" मेहमान ने पूछा ।

"औरतों की क्या बात करते हैं ? चोरों की लड़कियां और चोरों की घरवालियां ! श्रीमन्त सरकार ने (गायकवाड़ सरकार ने) गुनहगार कौमों का कानून क्या इन पर यों ही लागू किया है ! अक्खड़पन और रौव देखो तो राजाओं का-सा है । पर इनके काम हैं चोरों जैसे ? स्त्रियां भी वैसी ही हैं । एक ही थैली के सब चट्टे-वट्टे हैं । पाटन-

वाड़िया की औरत के सम्बन्ध में कुछ पूछने की आवश्यकता नहीं । आखिर जात तो कोली की ही है न ।"

मेहमान ने अपने धीमे और ममतापूर्ण स्वर में मुखिया से पूछा, "इन सबको थोड़ी देर रोकेंगे ? मैं इनसे कुछ कहना चाहता हूं ।"

"क्यों नहीं रोकूंगा !" और सामने बैठे हुए लोगों की ओर देखकर बोला, "अरे, भाग कहां रहे हो ? थोड़ी देर बैठो । यह (मेहमान की ओर हाथ से इशारा करके) आये हैं । तुम नहीं जानते क्या ? बैठो और उनकी सीख के दो शब्द तो सुनते जाओ !"

स्त्रियां चली गई थीं । पुरुष खड़े हुए थे । वे जमीन पर बैठ गएं ।

कुर्सी पर कुछ आगे सरककर मेहमान ने अत्यन्त विवेकपूर्ण तथा मीठे स्वर में उनसे कहा, "भाइयो, तुम्हारी यह हाजिरी क्या रोज होती है ?"

"जीहां ।"

"रोज दो बार ।" मुखिया ने जवाब दिया । उसका हाथ धीरे-धीरे अपनी मूंछें सहलाने लगा । उस ओर ज़रा भी ध्यान दिये बिना मेहमान ने लोगों से पूछा :

"तुमको यह हाजिरी अच्छी लगती है ?"

थोड़ी देर चुप रहने के बाद वहां बैठे हुए लोगों में से एक ने उत्तर दिया :

"अच्छी लगे या न लगे, पर दादा, हम कर क्या सकते हैं ?"

मेहमान ने कहा, "औरतों की हाज़िरी होती है, यह भी क्या तुमको पसन्द है ?"

एक आवाज आई, "हां, बहुत पसन्द है ।"

मेहमान चौंक उठे । उन्होंने जवाब देनेवाले उस युवक की ओर एकटक देखते हुए उससे पूछा, "किसलिए ?"

"किसलिए क्या ! हाज़िरी नहीं होती थी तब अगर इनकी कोई मरम्मत करते तो ये रूठकर अपने मायके भाग जाती थीं । अब पीट-पीटकर आटे की तरह नरम कर दी गई हैं । अब ये थोड़े ही घर छोड़कर कहीं जा सकती हैं ! हाज़िरी के समय मौजूद न हुईं तो जान ले-ली

जायगी। अब तो हड्डी-पसली एक कर देने पर भी चूं तक नहीं कर सकतीं। अच्छा ही हुआ है, इस हाज़िरी से।"

यह सुनकर उपस्थित लोगों में से बहुत-से हँस पड़े। कुछ चुप रहे, पर दो-तीन जनों ने बोलनेवाले को फटकारा :

"चुप हो जा। बैठा रह। ऐसा भी कहीं कहा जाता है ! यह तो बावला है बावला ! इसे बोलना नहीं आता !"

मुखिया मेहमान की ओर देखकर हँसने लगे। मेहमान के प्राण तो मानो सूख गए। थोड़ी देर बाद उन्होंने लोगों से कहा, "भाइयो, तुममें से कोई मुझे अपने घर सोने के लिए नहीं ले जायगा ?"

"वाह !" मुखिया चौंककर बोल उठे।" इन कोलियों के यहां आप क्यों जायंगे ? यह पलंग बिछवाया है। आराम से यहीं सो जाइए।"

"नहीं, यहां मुझे नींद नहीं आवेगी।"

इतना कहकर मेहमान अपनी दो कपड़ों की झोली लेकर एकाएक खड़े हो गए। मुखिया आश्चर्य में पड़ गए। उनका आश्चर्य दूर हो, उससे पहले ही मेहमान उन लोगों में से एक साथ पाटणवाडिया लोगों की डरावनी बस्ती की ओर चल दिए।

मेहमान के प्रति मुखिया का जो आदर था वह एकदम खत्म हो गया। ब्राह्मण कोली के यहां और चोर-डाकुओं के घर में रात बिताने के लिए जा रहा है। कुछ महीने पहले जिले के गांवों पर 'हैडिया कर'[1] के विरुद्ध लोक-युद्ध में मुखिया की उनसे मुलाकात हुई थी। उन्हें अकस्मात यहां आये देखकर उन्होंने आग्रह करके एक रात के लिए रोक लिया था। उनकी इच्छा थी कि उन्हें अपना अधिकार तथा दबदबा दिखाये। वह अकेला शेर-चीतों जैसे सैकड़ों लोगों पर किस तरह रौब गांठ सका है, यह दिखाने की उसे बड़ी हौंस थी। उन्होंने मेहमान को आदर से सरकारी चबूतरे पर ठहराया था। इस सबके लिए यह मेहमान अपात्र साबित हुआ, यह समझकर मुखिया लालटेन उठाकर गुस्से में अपने घर को चल दिया।

---

१. खेड़ा जिले की तमाम बस्ती पर बाबरदेवा आदि डाकुओं को आश्रय देने के बहाने सरकार द्वारा लगाया टैक्स।

आधी रात का समय हो रहा था। मेहमान जिसकी झोपड़ी में रात विताने के लिए गये थे, उसके यहां किसी भी सूचना के विना सारे गांव के पाटणवाडिया इकट्ठे हो गए। उनके सामने बैठकर मेहमान का हृदय उमड़ा आ रहा था। वह सोच रहे थे कि आदमी को अधोगति की सबसे गहरी खाई में गिरानेवाली यह हाज़िरी है। इस कौम का हरेक आदमी मां के गर्भ से निकलते ही गुनहगार सिद्ध हो जाता है। मर्दों की हाजिरी तो ठीक, पर औरतों की भी होती है। हाज़िर कहनेवाली स्त्री की आवाज पर ज़रा-सी शंका होने पर इतने लोगों के सामने तीन कौड़ी का सरकारी नौकर—मुखिया, उस स्त्री का घूंघट खुलवाकर उसका मुख देखकर सच-झूठ का निर्णय करता है! सबसे भयंकर वात तो यह है कि अपनी स्त्रियों की हाज़िरी दी जाने पर पुरुषों को खुशी होने का कारण मिलता है!

उनके अंतर का क्षोभ काफी रात बीतने पर कुछ शांत हुआ। उपस्थित स्त्री-पुरुषों के प्रति उन्हें अपनेपन का अनुभव हुआ। उन्हें लगा, मानो वे अपने स्वजनों से ही मिल रहे हों। वे जानते थे कि इनमें से बहुत से तो चोरी-डकैती करनेवाले हैं। ईश्वर, धर्म, पुण्य, नीति आदि गुणों को सुधरा हुआ समाज जिस अर्थ में ग्रहण करता है, उस अर्थ में उन गुणों से वे कोसों दूर रहते हैं। फिर भी उन्हें ये लोग अपने लगे। उन्होंने कोई लम्बा-चौड़ा भाषण नहीं किया। बस इतना ही पूछा:

"यह हाज़िरी तुम्हें पसन्द है!"

"अच्छी नहीं लगती, दादा! पर हम करें क्या? खेत में हमारे घर हैं। वहां से दो बार गांव में हाजिरी देने के लिए आना पड़ता है। छोटे बच्चों को रोते छोड़ कर आना पड़ता है। बूढ़े, कमजोर, बीमार, सबको आना पड़ता है।"

"और अपनी स्त्रियों का ऐसा अपमान तुम कैसे सहन करते हो?"

लोग कुछ भी उत्तर न दे सके। लज्जा से सब जमीन की ओर देखने लगे। उनकी बात को मजाक में उड़ाने के लिए या बात टालने के लिए एक शब्द भी किसी की जबान पर नहीं आया।

मेहमान के हृदय में आशा का उदय हुआ। इन मनुष्यों में अभी

कुछ इन्सानियत बची हुई तो है।

"तो फिर तुम कोई हाजिरी में मत जाओ।"

यह सलाह देकर वे सो गए, परन्तु बाद में उनको विचार आया कि यह सलाह अनुचित है। इस रास्ते से इनका कल्याण नहीं हो सकेगा। ये लोग तो बालक-जैसे हैं।

सुबह उठकर मेहमान चल पड़े। गांव के बाद गांव छोड़कर वह आगे बढ़ रहे थे। थकान, धूप, सरदी, भूख-प्यास, किसी की भी उन्हें चिन्ता न थी। सवारी में न बैठने की तो जैसे उनकी प्रतिज्ञा ही थी। पैदल ही चलकर वह सीधे बड़ौदा जा पहुंचे।

बड़ौदा के पुलिस अधिकारी के साथ उनकी कोई विशेष जानकारी नहीं थी। पर वह समझदार आदमी थे। उन्हें जाकर समझाया कि उन लोगों की हाज़िरी बन्द करा दी जाय।

उन लोक-सेवक की उत्कंठा देखकर अधिकारी के मुंह पर मुस्कराहट उभर आई। उन्होंने कहा, "आज्ञा निकालकर मैं हाज़िरी को फौरन बंद करवा सकता हूं, पर उससे आपको कोई लाभ न होगा।"

"तो क्या किया जाय ?"

"इस प्रकार से कार्य किया जाय, जिससे इनपर आपका अहसान हो। ये आपके कहने के अनुसार चलें और आप उनसे अधिक अच्छे काम करा सकें।"

"क्या करूं, जिससे ऐसा हो सके ?"

"इन्हें ऐसा लगना चाहिए कि आप जिनकी हाज़िरी बंद करवाना चाहते हैं, उन्हींकी हाज़िरी हम बंद कर देते हैं। तब लोग आपके पास आवेंगे।"

यह सलाह तथा उसके लिए अधिकारी का वचन लेकर वह ब्राह्मण वहां से लौट पड़े।

उन्होंने पांच अच्छे गांव चुने। पहला गांव था वटादरा। उन्होंने पाटणवाडिया के निवासियों से कहा, "चलो पेटलाद, मैं तुम्हारी हाज़िरी बंद करवा देता हूं।"

उनके कहने का किसी पर कोई प्रभाव न पड़ा। कोई हिला तक

नहीं। हाजिरी के डर से कांपते इन लोगों ने उनकी बात इस कान से सुनी और उस कान से निकाल दी। वे सब चिलम फूंकते बैठे रहे। यहां उन्हें कोई जानता-पहचानता तो था नहीं। यह हाजिरी उनके लिए ऐसा स्वाभाविक जीवन-क्रम बन गया था कि उसको बदलने की किसी को ज़रा भी चिन्ता न हुई।

बड़ी मुश्किल से वटादरा में पांच-सात पाटणवाडियों को बार-बार गोद-गोदकर, समझा-बुझाकर, उन्होंने तैयार किया। वे पेटलाद थाने पर पहुंचे। थानेदार के आगे इनकी हाज़िरी बन्द कराने के लिए एक अर्जी पेश की।

थानेदार गरज उठा, "यह कैसी अर्जी है हाज़िरी बंद कराने की?"

इसके बाद थानेदार ने जीवन में जितनी गालियां कंठाग्र की थीं, उन सबका वहां ढेर-सा लगा दिया।

महाराज ने कहा, "देखिये थानेदार साहब, हमें इन सब बातों की कोई आवश्यकता नहीं। मैं जैसा कहता हूं, वैसा करने की आप कृपा करें। आप यह अर्जी सरसूबा साहब को भेज दें। वह जैसा ठीक समझेंगे, करेंगे।"

कुछ ही दिनों के बाद थानेदार चौंक कर रह गया। वटादरा गांव की औरतों की हाज़िरी को एकदम बंद कर देने की और जिन सात पुरुषों ने अर्जी दी थी, उनकी हाज़िरी भी बंद करने की आज्ञा बड़ोदा से उनके हाथ में आ पहुंची।

थानेदार तो ठीक, पर ग्राम-पंचायतें भी, चौंक उठीं। पाटणवाडियों की हाज़िरी बंद हो जाय तो उन्हें चोरी, डकैती और लूट की मानो खुली छुट्टी ही मिल जायगी। इन पंचायतों में व्यापारी भी थे। हाज़िरी बन्द हो गई तो इन व्यापारियों के हित को बड़ा आघात पहुंचेगा। सीमा पर इधर-उधर बिखरे झोंपड़ों में रहनेवाले किसानों से वसूली का तक़ादा करने के लिए फिर भटकने का कष्ट उन्हें उठाना पड़ेगा। हाज़िरी होने पर बड़ी सुविधा थी। हाज़िरी के समय तकादे करनेवाले साहूकार, मुर्दे पर जैसे गिद्ध की टोलियां मंडराती हैं, वैसे ही, सरकारी चबूतरे पर अपनी बहियां लेकर चक्कर काटा करते थे।

ग्राम-पंचायतों ने सरकार को लिखा, "इन लोगों को गांव में आकर रहने के लिए मजबूर किया जाय।" नतीजा यह हुआ कि फिर से हाज़िरी शुरू हो गई। महाराज गांव-गांव घूम रहे थे। वहां उन्हें इसका समाचार मिला। वे उल्टे पैरों दूसरे दिन सुबह ही बड़ोदा की ओर रवाना हो गए। पुलिस अधिकारी के बंगले पर पहुंचे तो अधिकारी ने अपने सहायक अधिकारी से कहा, "छोटे साहब, इन्हें सूबा साहब के पास ले जायं।"

"चलिये, आइये।" छोटे साहब ने ब्राह्मण से अपनी घोड़ागाडी में बैठने को कहा।

महाराज ने उत्तर दिया :

"मैं गाड़ी में नहीं बैठूंगा।"

"तो कैसे जाओगे ?"

"पैदल आता हूं। आप चलें।"

"पैदल ! पैदल आप कब पहुंचेंगे ?"

"बहुत जल्दी। मैं दौड़कर आऊंगा।"

अधिकारी को वह ब्राह्मण जंगली-सा लगा। शहर में क्या यह आदमी दौड़ेगा !

और छोटे साहब की गाड़ी के पीछे महाराज ने सचमुच दौड़ लगाई।

ब्राह्मण सूबा साहब के बंगले पर पहुंचा, उस समय उसने गाड़ी में गये अधिकारी को अपने आगे-आगे बंगले में प्रवेश करते देखा, यानी साहब की गाड़ी और ब्राह्मण की पैर-गाड़ी में कोई आधे मिनट का अन्तर था।

नंगे पैर ब्राह्मण को भिक्षुक जानकर पहरेदार ने अन्दर जाने से रोक दिया। ब्राह्मण ने उसे समझाया, "भाई, तुम अन्दर जाकर साहब को खबर कर दो। उन्होंने ही मुझे बुलाया है और मुझे फौरन उनके सामने पहुंचना है।"

पहरेदार ने कहा, "भाग यहां से ! जबतक सूबासाहब अन्दर हैं, किसीकी भी इत्तिला नहीं की जा सकती।"

ब्राह्मण क्या करता ! रुका खड़ा रहा। दोनों अधिकारी बाहर आये। उन्होंने ब्राह्मण को बाहर खड़ा देखा तो उनका पारा चढ़ गया।

उन्होंने पूछा, "वहां, क्यों खड़े हो ?"

"यह जब आने दे तभी तो आ सकूंगा।"

"आने दो।" पहरेदार को आज्ञा मिली।

"कहां तक पढ़े हो ?" सूबा साहब ने तिरस्कार-युक्त भंगिमा से पूछा।

"कुछ भी नहीं।"

"इन ठाकरडा लोगों को जानते हो ? सबसे बुरी और भयंकर जाति है, यह तो जानते ही होंगे।"

"नहीं।"

"तो फिर उन्हें सुधारने का काम कैसे कर सकेंगे ?"

"नहीं जानता।"

"इन लोगों के बीच काम करके तुमने उल्टा उनका शराब पीना बढ़ा दिया है।"

"तो इससे राज्य कों लाभ ही हुआ होगा न ?"

ऐसे लापरवाही भरे जवाब सुनकर उसके सम्बन्ध में सब प्रकार की आशा त्यागकर झुंझलाये हुए सूबासाहब ने कहा, "जाओ, बारह बजे अदालत में आ जाना।"

दोपहर को जब महाराज कचहरी में सूबा साहब के सामने हाज़िर हुए। साहब ने सिर उठाकर पूछा, "ज़रा घड़ी में देखो, तुम कितने बजे आये हो !"

"सवा बजे।" ब्राह्मण ने घड़ी देखकर उत्तर दिया।

"और मैंने तुम्हें यहां कितने बजे आने को कहा था !"

"क्या करूं, मुझे पराये घर भोजन करना था।"

"अच्छा, जाओ, हुक्म भेज दिया गया है।"

"हुक्म भेज दिया गया है।" इन शब्दों से पाटणवाडियों की हाज़िरी बन्द करने का हुक्म समझकर ब्राह्मण ने बहुत उमंग के साथ वापस लौटने के लिए अपनी पैदल-यात्रा फिर आरम्भ की और रात को चौबीस कांस का लगातार सफर करके अपने गांव वटादरा पहुंचा। पहुंचते ही पूछताछ की।

"क्यों जी ? हाज़िरी बन्द करने का हुक्म तो आ गया होगा।"

"नहीं, दादा, नहीं।"

पहले जिनकी हाज़िरी बन्द कर दी गई थी, उन्होंने कहा, "उल्टे हमारे नाम फिर से हाज़िरी में दाखिल करने का हुक्म आया है।"

वहां बैठे-बैठे जी जलाने का या पत्र-व्यवहार से काम करने का ब्राह्मण के पास समय नहीं था। दूसरे ही दिन प्रातःकाल उसके फौलाद जैसे मजबूत पैर बड़ोदा की २४ कोस की यात्रा पर फिर चल पड़े और वहां पहुंचकर वह फिर पुलिस अधिकारी से मिला। वहां उन्हें दुखद समाचार मिला, "सूबासाहब को तुम्हारी बात में कोई सार दिखाई नहीं दिया, इसलिए उन्होंने फिर से हाज़िरी शुरू करने की आज्ञा दी है।"

सूबासाहब की मुलाकात के लिए दिन-प्रतिदिन कचहरी की सीढ़ियां घिसते रहने पर भी ब्राह्मण की सूबासाहब से भेंट न हो सकी। परन्तु सूबासाहब के पेशकार ने एक दिन कुतूहल से उनसे पूछा :

"आप कौन हैं ? वकील हैं ?"

"नहीं।"

"तो लोगों की हाज़िरी बन्द कराने में आपका क्या स्वार्थ है ?"

"मैं नहीं जानता। परन्तु मैं उनकी हाज़िरी बन्द कराना चाहता हूं, यह तो निश्चित ही है।"

पेशकार ने माथे पर चढ़ाये हुए चश्मे को फिर से आंख पर लगाया और इस ब्राह्मण को तिरछी आंखों से ध्यानपूर्वक देखा।

स्वार्थ के बिना क्या कोई मनुष्य चौबीस-चौबीस कोस की मंजिल एक-एक दिन के अन्तर से पैदल चलकर पार करेगा और सूबा की कचहरी की सीढ़ियां रोज बारह बजे तक बिना स्वार्थ के घिसता रहेगा ? पेशकार को दुनिया में चारों ओर ढूंढ़ने पर भी ऐसे सत्य या चमत्कार का कहीं स्थान मिल नहीं सकता था। 'लाला बिना लोभ देखे क्यों लौटने लगा ?' यह मनुष्य रोज आता है, सूखे ठूंठ-सा खड़ा रहता है, बारह बजे कचहरी बन्द होती है, तबतक केवल खंभे-सा एक जगह स्थिर खड़ा रहता है और फिर बिना कुछ बोले घर चला जाता है। एक दिन नहीं, दो दिन नहीं, परन्तु कई दिनों से यह ऐसा करता है, तो क्या

बिना किसी स्वार्थ के ही करता है ? पेशकार के मन ने ऐसी किसी बात को मानने से इन्कार किया ।

एक दिन सूबासाहब आये । रोज जैसे देखते थे, उसी प्रकार ब्राह्मण को वहां खड़ा ही देखा । ऊपर की मंजिल पर वह चढ़ गए । थोड़ी ही देर बाद चपरासी ने आकर महाराज से कहा, "चलो, साहब बुलाते हैं ।"

"क्या पढ़े हो ?" सूबा साहब ने अपने सामने मौन खड़े हुए ब्राह्मण से फिर वही प्रश्न पूछा ।

"कुछ भी नहीं ।" फिर वही जवाब मिला ।

"तो आप इन लोगों में क्या काम करेंगे ?"

"मैं नहीं जानता ।"

"अच्छा, जाओ मैं हाज़िरी बन्द कराने की आज्ञा भेज रहा हूं ।"

ब्राह्मण वहां से निकलकर साहब के पेशकार के पास आकर बैठ गया ।

थोड़ी देर के बाद सूबासाहब का हुक्म पेशकार के पास आया । पेशकार ने कहा, "अब आप जायं । हुक्म गांव में भेज दिया जायगा ।"

"किस तरह जायगा ?"

"किस तरह का क्या अर्थ ? नीचे के दफ्तरों में दर्ज होता हुआ नियमपूर्वक आपके गांव पहुंचेगा ।"

"नहीं, यों नहीं ।" ब्राह्मण ने शांति के साथ उत्तर दिया ।

"तो फिर कैसे ?" पेशकार ने व्यग्र होकर पूछा ।

"आप इस हुक्म को दर्ज करके मुझे ही सौंप दें ।"

ब्राह्मण आज्ञा दे रहा है या प्रार्थना कर रहा है, यह पेशकार के लिए एक समस्या-सी बन गई ।

"हां-हां, लेकिन आप उसका क्या करेंगे ?" पेशकार ने व्यंग्य किया ।

"मैं उसे नीचे की कचहरी में ले जाऊंगा और दर्ज करा लूंगा ।"

पेशकार को इस मनुष्य की बिना स्वार्थ की जल्दबाजी अधिक रहस्य-मय प्रतीत हुई । उन्होंने इस बला को टालने के लिए हुक्म का लिफाफा उसे सौंप दिया । उसे लेकर ब्राह्मण नीचे की कचहरी की ओर गया ।

वहां के अधिकारी ने भी कहा, "अच्छा, अब आप जा सकते हैं।"

"नहीं, ऐसे नहीं जाऊंगा। आप हुक्म को दर्ज करके लिफाफा मुझे दे दीजिए।"

"आप क्या करेंगे ?"

"आप कहेंगे उस कचहरी में जाकर उसे दर्ज करा लाऊंगा।"

इस प्रकार एक के बाद एक नीचे की कचहरियों में एक ही दिन में दर्ज कराते हुए, जिसे वटादरा पहुंचने में एक महीना लग जाता, उस हुक्म को अपने साथ लेकर ब्राह्मण ने फिर से वटादरा की चौबीस कोस की यात्रा शुरू की। रात में पेटलाद पहुंचकर फौजदार को जगाया और रात ही में हुक्म कराकर स्वयं उसे लेकर वटादरा पहुंचे। उस समय सूर्य देव आकाश में अधिक ऊपर नहीं चढ़े थे।

५

: ४ :

अधिकारी का साहस

उस रोज बामणगाम की सरहद पर 'ऊंधियु'[1] खाने के लिए मण्डली इकट्ठी हुई थी। दरबार गोपालदास अपने संगी-साथियों को लेकर बोरसद छावणी से ऊंधियु खाने के लिए बामणा गये हुए थे। महाराज इस मंडली के साथ थे।

ऊंधियु का स्वाद लिया जा रहा था। स्वाद बड़ा अच्छा था, सब मजे में खा रहे थे और उसका आनन्द ले रहे थे। ऐसे समय में किसी ने समाचार दिया कि पामोल गांव के एक पाटीदार के लड़के को पकड़कर खोडिया ने पांच सौ रुपये मांगे हैं। ये पांच सौ यदि समय पर नहीं पहुंचे तो खोडिया लड़के को मार डालेगा।

ऊंधियु के टुकड़े महाराज के हाथ से गिर गए और ब्राह्मण वहां से पैदल चल दिए। पामोल के रास्ते में ही समाचार मिला कि सब ठीक हो गया है और पाटीदार का लड़का सही-सलामत घर लौट आया है। उन्होंने पूछताछ की :

"क्या खोडिया ही यह सब कर्म करता है ?"

"नहीं, उसका एक साथी है, देदरड़ा का भीखा।"

"कितना बड़ा होगा ?"

---

१ सेम की फलियां, बैंगन, आलू, जमीकंद आदि ताजे शाकों को एक साथ पकाकर 'ऊंधियु' तैयार किया जाता है। कभी-कभी मटके में शाक के टुकड़ों को भरकर उसे औंधा जमीन में रख देते हैं और ऊपर से आग जलाकर उसे पकाते हैं। इसीसे इसका नाम 'ऊंधियु' पड़ा है।

"वह भी जवान ही है।"

उनसे यह जानकारी मिलने के बाद धैर्य रखना मुश्किल था। वह देदरड़ा की ओर चल दिए। वहां पहुंचने पर देखा कि खेत में भीखा नहीं था, उसका पिता था। दोनों में क्या बात हुई, यह तो वे ही जानते होंगे, परन्तु उस बातचीत का परिणाम यह था कि दूसरे ही दिन बड़े तड़के पिता अपने पुत्र को लेकर बोरसद की छावनी में महाराज के पास उपस्थित हो गया।

भीखा को छिपाने की या वड़ौदा ले जाकर माफी दिलाने की कोई बात न थी। पहला कदम तो एक ही था। युवक भीखा को लेकर महाराज फौजदार के पास गये और उनसे कहा, "इसे कब्जे में लें।"

फौजदार ने उसे अपने कब्जे में लेकर अदालत के सामने पेश कर दिया। अदालत ने उसे हवालात में रखने की आज्ञा दी। महाराज भीखा को हवालात तक पहुंचाने गए। महाराज की आंखें उससे कह रही थीं— "धीरज रखना, घबड़ाना नहीं।"

पिछली रात तक एक विकराल बाघ की तरह, जो सारी बस्ती को रौंद रहा था, वही भीखा उन आंखों की बात को समझकर धैर्य धारण कर सका! उसकी आंखों ने भी अपना उत्तर दे दिया था।

महाराज जब जाने लगे तो भीखा ने पीछे से आवाज दी, "ज़रा यहां आइये!"

"क्यों, क्या है?" महाराज को डर लगा कि कहीं जवान भीखा हिम्मत तो नहीं तोड़ देगा। पर इतने में भीखा ने मुस्कराते हुए कहा:

"क्या उसे पकड़ना है?"

"किसे?"

"कावीठावाले खोडिया को?"

"हां।"

"मैं ले आऊंगा।"

"तुम कहां से ले आओगे?"

"वह नजदीक ही है। बासणा में एक पाटीदार के घर में। चलो, हम जाकर उसे बुला लावें।"

"आवेगा ?"

"बकरी की तरह खिंचा चला आयगा।"

"थोड़ा पहले बताया होता तो अच्छा था। अब तो तुम हवालात में हो। अब क्या हो सकता है ?"

"अभी जाकर ले आवेंगे।" उसके मुंह पर उत्साह और आशा की झलक दिखाई दे रही थी। हवालात की छड़ों में से उसका जवान चेहरा चमक रहा था।

महाराज को चैन नहीं था। एक अधिकारी के घर की ओर जाते हुए पैर बार-बार रुक जाते थे और पीछे लौटने लगते थे। आखिर उन्होंने हिम्मत की। अधिकारी के पास जाकर उन्होंने अपनी मांग रखी, "हवा-लाती को मेरे साथ भेजें। कावीठावाला पास में ही है, मैं ले जाऊंगा।"

अधिकारी बाल-बच्चेवाला ब्राह्मण था। वह इस मांग को सुनकर हँसा। बोला, "रजिस्टर में दर्ज किये गए कैदी को छोड़ने की बात करते हो! ऐसा भी कभी हुआ है! कभी हो सकता है ?"

"सम्भव बनाइये।" महाराज ने आग्रह किया।

"अपनी लम्बी नौकरी पर आंच आने दूं ? इतना भयंकर जोखिम सिर पर लूं ? यह क्या कह रहे हैं आप ?"

"मनुष्य की कसौटी का प्रसंग एकाध बार ही आता है। साहब, आप विचार तो करें। वह खोडिया भयंकर डाकू बन जायगा, कितनों का खून भी करेगा, कितनों को लूटेगा। बस्ती के लोगों की उससे रक्षा करने के लिए एक बार तो आप यह जोखिम उठा ही लें।"

"परन्तु मेरे बाल-बच्चे..."

"समझता हूं। उनका विचार आते ही मैं भी कांप जाता हूं। फिर भी मैं यह मांग कर रहा हूं।"

उस रात को अधिकारी की नींद गायब हो गई। अपने बाल-बच्चों और महाराज, इन दोनों के बीच उसका मन घड़ी के लटकन की तरह झूल रहा था।

'कैदी को, और वह भी लूट के कैदी को, हवालात में से निकालूं ? यह अपराध मुझे हथकड़ी पहनाने के लिए काफी होगा। और यदि कैदी

महाराज को चकमा देकर भाग गया तो ! फिर मेरी क्या गति होगी ?' इस कल्पना मात्र से अधिकारी का सिर चकरा गया।

'नहीं-नहीं, मैं क्यों ऐसा जोखिम उठाऊं ? किस आशा से, किस भरोसे पर ? यह लोक-सेवक मेरे बच्चों की रक्षा कर सकेगा ? उसके लिए तो जेल आम बात बन गई है। उसे किसीका पेट भी नहीं भरना है। पर मैं तो गरीब नौकरी करनेवाला हूं। मैं कहां किसकी शरण लूंगा ? मेरे अधिकारी, मेरे साथी, यहां तक कि ये सेवक भी, बाद में मुझे मूर्ख कहेंगे।

'विचार दूसरी ओर लौटे। "परन्तु यह मनुष्य—यह महाराज, क्या मुझे दग़ा देंगे ? ऐसा आदमी क्या कभी मेरी बुराई की बात सोच सकता है ? यह जान की बाजी लगानेवाला है। इसके जैसे पवित्र पुरुष पर विश्वास करना चाहिए।

'अरे भाई, अफसरी तो बहुत साल की। एक बार यह जीवन-मरण का खेल भी क्यों न खेल लूं ? जिन्दगी के किनारे पहुंचने पर कभी किसी दिन अन्तर्यामी भी बोल उठेगा कि शाबाश हे ब्राह्मण ! अपने विभाग की एक टुकड़ा रोटी के लिए तो अनेक प्रपंच किये थे, पर उसके साथ-साथ इतनी मर्दानगी भी तो भला दिखाई !"

सोचते-सोचते सुबह हो गई। पर हृदय-मंथन बन्द नहीं हुआ। उस दिन उससे दफ्तर का कामकाज भी नहीं हो सका। शाम हुई। महाराज फिर दिखाई दिए। कहने को तो अब कुछ बाकी था नहीं। अब तो काम करने की वात ही सामने थी। उसका समय आ पहुंचा था।

रात का आगमन हुआ, अंधेरा फैलने लगा। हवालात के ताले में चुपचाप चाबी घूमी। चुपचाप दरवाजा खुला। जवान भीखा को बाहर निकाला गया। महाराज के हाथ में उसे सौंपते हुए अधिकारी ने सिर्फ इतना ही कहा, "अपनी सबकुछ सम्पत्ति, वाल-बच्चे और जिंदगी आपको सौंप रहा हूं।"

दो आकृतियां रात्रि के अंधकार में धीरे-धीरे विलुप्त हो गईं।

: ५ :

भरोसा

रात का पहला पहर पूरा हुआ। अंधकार और गहरा हो गया। आफत से घिरे हुए जीवन में सज्जनों की तरह तारे पूर्ण विश्वास के साथ चमक रहे थे। जैसे-जैसे अंधकार बढ़ता गया, तारागण भी अधिक चमकने लगे। जंगल में इतना सुनसान छाया हुआ था कि मुंह पर आई बात भी भय के कारण बाहर नहीं निकल सकती थी। निडर मनुष्य के दिल में भी शंका होती थी कि ये झाड़-झाड़ियां भी कहीं सुन न लें और सुनकर चुगली न कर दें।

रविशंकर महाराज तो साक्षात अभयमूर्त्ति थे, परन्तु उनके साथ में थी आफत की पुड़िया—देदरड़ावाला भीखा। दोनों चुपचाप बोरसद से कावीठा की सीमा पर पहुंचे। रात का पहला पहर तो बीत ही चुका था, दूसरा भी बीतने को था।

गांव की सीमा पर पहुंचकर जवान भीखा ने कहा, "आप यहां बैठें, मैं उसे लिवा आता हूं।"

महाराज मन में चौंके—'अरे! यह तो अकेला जाना चाहता है।' बोरसद की हवालात, ब्राह्मण अधिकारी, उसका सौंपा गया उसके जीवन का सर्वस्व, इस नौजवान डाकू का अनजान जीवन, उसकी अपरिचित मनोदशा—इन सबकी संकलित चित्रमाला उनके मानस-पटल पर से चमकती हुई सपाटे-से निकल गई। पर अपनी आशंकाओं को झट दबाकर उन्होंने उत्तर दिया, "जाओ!"

कुछ भी कहे बिना भीखा महाराज को छोड़कर चला गया।

थोड़ी देर बाद जब भीखा लौटकर आया तो ऐसा प्रतीत हुआ, मानो

वह पृथ्वी में से प्रकट हुआ है। वह चोर था, कैदी था, गुप्त कार्य करने के लिए आया था। पैर की ज़रा भी आवाज हो तो वह पाटणवाडिया नहीं !

पर वह आया अकेला था।

महाराज ने उससे कुछ पूछा नहीं। भीखा को ही बोलने दिया।

"मालूम होता है, वह तो मेरे गांव देदरड़ा गया है।"

"अच्छा !" और महाराज ने कुछ नहीं कहा।

"हम वहां चलेंगे ?" भीखा ने पूछा।

"चलो।"

इतना कहकर महाराज चलने लगे, मानो भीखा संचालक हो और वह स्वयं उसके हाथ का यन्त्र हों। उन्होंने अपने-आपको डाकू के हाथ में सौंप दिया था। पक्षी ऊंचे हवा में अनायास ही तैरता है, उसी प्रकार ब्राह्मण की आत्मा किसी उन्नत दिगंत में मस्त परों पर लहरा रही थी। भीखा आगे नहीं, उनके पीछे-पीछे चल रहा था। चार कोस के रास्ते में ब्राह्मण ने एक बार भी पीछे फिरकर नहीं देखा। दोनों में से किसी के भी पैर में जूते नहीं थे। दोनों की जबान और पैर निःशब्द थे। एक चोर था और दूसरा ब्राह्मण, परन्तु थे दोनों संयमी।

देदरड़ा की सीमा पर रात के तीसरे पहर में वे जा पहुंचे। यहां पैरों पर बंधन की कोई आवश्यकता न थी, क्योंकि भीखा का अपना घर वहां था। भीखा ने महाराज से कहा :

"महाराज !"

"क्या है ?"

"आप मेरे घर न आयें।"

"तो क्या करूं ?"

"यहां, गांव के बाहर बैठें।"

"अच्छा, जाओ।"

निर्जन सरकारी चबूतरे पर महाराज बैठ गए और बैठे रहे। वह यह देख रहे थे कि आगे क्या होनेवाला है। थोड़ी देर में युवा कैदी लौट आया और महाराज को जगत जीने योग्य जान पड़ा। पर उसी समय विश्वास के मूल को भी हिला देनेवाली वाणी भीखा के मुंह से निकल पड़ी :

"महाराज, मालूम होता है, वह तो मेरे खेत पर गया है। घर पर नहीं है।"

"अच्छा, तो खेत पर जाओ।"

ये शब्द उनके मुंह से निकलने की देर थी कि कैदी चल पड़ा।

महाराज मानो अपने प्राणों से खेल रहे थे। दांव पर रखने के लिए अब कुछ बाकी न रहा था।

थोड़ी देर में भीखा वापस आया। बोला, "वह तो खेत पर से भाग गया है।"

"अच्छा!"

फिर भीखा बोला, "तो अब क्या करें? चलो, बोरसद लौट जायं।"

रात के दो बजे होंगे। महाराज ने अंदाज लगाया कि यदि पांच बजे चलेंगे तो सुबह अंधेरे-अंधेरे पहुंच जायंगे। फिर उन्होंने स्वयं भीखा से कहा, "तुम थक गए होगे। कहो तो यहीं सो रहें।"

"कहां?"

"तुम अपने घर जाकर सो जाओ। मैं...नाई के घर जाकर सो जाऊंगा। तुम सुबह जल्दी आ जाना।"

"अच्छा।"

नाई के घर पर महाराज ने जो तीन घण्टे नींद ली, वह दूसरे दिनों की अपेक्षा भिन्न नहीं थी। वह गहरी नींद सोये थे। बिना स्वप्न की उनकी वह निद्रा थी। विश्वास का तकिया था। सम्भवत: हृदय में अमृत सींचनेवाला भी ऐसा कोई भाव भरा था कि भीखा के स्त्री-बच्चों को आज एक सुख की रात नसीब हुई थी—ऐसी रात न मालूम कितने साल तक उसे फिर नसीब न हो।

प्रभात की किरण अभी फूटी नहीं थी। अंधेरा जैसा-का-तैसा था, पर बोरसद का ब्राह्मण अमलदार दरवाजा खोले राह देख रहा था। उसके भाग्य की तराजू उस दिन भगवान के हाथों में थी। जैसे ही उसने उन दोनों को आते दूर से देखा, उसे बेहद खुशी हुई, मानो उसे सांध्य-अंधकार में भी दिवाकर के दर्शन हुए हों। चमत्कार की बात तो यह थी कि वे दो थे, पर रास्ते में तीन हो गए थे। लेकिन तीसरा खोडिया

कावीठावाला नहीं था, शंकरिया था। शंकरिया भी उस दिन तड़के ही अपने गांव से अपने को सौंप देने के लिए हाज़िर हो गया था। खोडिये का यह गुनहगार साथी था।

कैदी सकुशल लौट आया, इसका हर्ष अधिकारी किस प्रकार प्रकट करे! अपने भावों को दबाने का उसके पास कोई उपाय न था। घर में जाकर उसने हर्षावेश में अपनी घरवाली से कहा, "चाय तैयार करो जल्दी।"

उन दोनों कैदियों को अपने पास बिठाकर उसने चाय पिलाई। खुद भी पी, मानो वह स्वयं भी धन्य हो गया हो! उसके बाद दोनों को हवालात में बन्द कर दिया।

"इनके साथ मारपीट न करना।" हवालात तक साथ जाकर वापस लौटते हुए महाराज ने अधिकारी से आश्वासन प्राप्त किया और कैदियों से कहा :

"मेरा ख्याल है कि मैं तुम्हें तीन साल से अधिक की सजा नहीं होने दूंगा।"

: ६ :

जाति की इज्जत

"याद रखो, सरकार के हाथ बहुत लम्बे हैं। सरकार के पास तोप हैं, बन्दूकें हैं..."

पूरे जोश में भाषण चल रहा है। गांव के चबूतरे पर ठाकरडों की भीड़ जमा थी। कच्छ लगाये, सिर पर साफे बांधे असामाजिक जीवन जीनेवाले ठाकरडा लोग बैठे-बैठे चुपचाप सुन रहे हैं।

"याद रख लेना इस बात को !"

पुलिस के एक बड़े साहब अपने प्रवचन के शब्द चाबुक की तरह फिराये जा रहे थे।

"याद रखो कि इन डाकुओं का साथ देनेवाले तुम हो, तुम सब हो। तुम गांव-गांव के धाराला-पाटणवाडिया..."

"और उसमें जोड़िये, साहब—आपकी पुलिस।"

एक रोष और दर्दभरी परन्तु एक महीन आवाज सुनाई दी। भाषण करनेवाले अधिकारी मानो किसी शहंशाह का अपमान हुआ हो—गर्जना कर उठे।

"कौन है यह बोलनेवाला ?"

"मैं हूं।" कहकर श्रोताओं में से एक ऊंचा, दुबला-पतला आदमी खड़ा हो गया। वह घुटने तक छोटी धोती, बंडी और सफेद टोपी पहने हुए था।

"ओहो ! आप यहां हैं क्या ?" भाषणकर्त्ता ने उन्हें पहचानकर कहा।

तुरन्त उसकी आवाज में कोमलता आ गई थी और उसके बाद उसके भाषण का रंग फीका पड़ गया था। भाषण लंबा चलनेवाला था, परन्तु वह

अब जल्दी से समेट लिया गया और साहब वहां से रवाना हो गए। सभा विसर्जित हो गई। लम्बा भाषण करने में अब स्वाद नहीं रहा था। तैयार करके लाया हुआ भोजन स्वादहीन हो गया था।

अच्छा ही हुआ कि साहब चले गए, नहीं तो इस छोटी धोतीवाले आदमी से साहब को ऐसी-ऐसी बातें सुननी पड़तीं कि जिन्हें सुनने के लिए वह तैयार नहीं थे।

महाराज को साहब की बुलाई हुई सभा के समाचार गांव में मिले थे। वहां से वह रात को इस गांव में आकर श्रोताजनों के बीच शान्ति से बैठ गए थे। कावीठावाले खोडिया की जलाई हुई होली के बीच यह सभा जुड़ी थी। इस होली की आग पर इस ब्राह्मण का हृदय चूल्हे पर चढ़ी हांडी की तरह उबल रहा था। खोडिया उन्हें चकमा देकर निकल गया था, इन्सानियत भी खो चुका था और उसको इस प्रकार पथ-भ्रष्ट करनेवाली इलाके की पुलिस है। इसका उनके दिल में गहरा दर्द था और इसी दर्द के कारण महाराज ने सभा में कुछ कठोर और गर्म शब्दों का प्रयोग भी किया था।

इस भाषणकर्त्ता ने जब से खोडिया को अपने साये में लिया था, उसी दिन से उसे अपने द्वारा सुधारे जाने का समय बीत चुका था। अब तो केवल एक यही प्रश्न सम्मुख था कि कैसे खोडिया की डकैतियों से परेशान इस बस्ती के लोगों की रक्षा की जाय।

साहब ने जब धमकी से काम लेना चाहा और सारी कौम को गुनहगार कहकर गालियां दीं, तब भी ब्राह्मण अपने धैर्य को धारण किये रहा।

अपने जजमानों की बिरादरी को इकट्ठा करके उन्होंने कहा, "अपनी बिरादरी में ऐसा कैसे चलने दे सकते हैं ? खोडिया का डर हमें दूर करना ही होगा।"

बिरादरीवालों ने निश्चय किया कि कावीठावालों को चाहिए कि वे अपने इस आदमी का त्रास दूर करें, नहीं तो सारे कवीठे को बिरादरी से बाहर कर दिया जायगा।

कावीठावालों तक यह संदेशा पहुंचा। खोडिया का पक्ष लेनेवाला

वहां कोई नहीं था। पेट में लगी हुई छूरी की तरह खोडिया सबको खटक रहा था, परन्तु वह छुरी पकड़ में नहीं आरही थी।

एक वार कावीठा गांव में साप्ताहिक भजन-मण्डली का आयोजन किया गया था। ऐसे समारंभ में पाटणवाडियों को बैठने की अनुमति नहीं होती। अन्दर एक लड़का दाखिल होने के लिए गया तो उसे जवाब मिला, "भाग जा, भाग जा। बड़ा आया है भजन-मण्डली में बैठने-वाला !"

अपमानित करके निकाला गया पाटणवाडिया का वह लड़का वाहर वैठा-वैठा ही मंडली में गाये जानेवाले भजनों को सुन रहा था, लेकिन उसका ध्यान वाहर मिठाई, नमकीन आदि की दूकानों पर लगा हुआ था। उन व्यंजनों को देख-देखकर उसके मुंह से पानी आ रहा था और वह उसके घूंट पीता जा रहा था।

परन्तु लड़के की जीभ तो सचमुच अव ललकने लगी। मिठाई की दुकान पर एक ढेढ़ ग्राहक आया और उसने आर्डर दिया, "ढाई सेर लड्डू तौलो।"

तराज़ू में ढेर से लड्डू तौलकर ढेढ़ की झोली में जैसे ही डाले, वैसे ही लड़के के मन में यह विचार आया कि चाहे जैसे भी हो, इन लड्डुओं का स्वाद लिया जाय।

लड्डू की झोली को बांधते हुए ढेढ़ ने कहा, "बीड़ी का एक बण्डल दो।"

ढाई सेर लड्डू और बीड़ी का एक बण्डल लेकर ढेढ़ वहां से चल दिया। उसके जाते ही, तत्काल लड़के के मुंह का सांचा चलना बन्द होकर उसके दिमाग का सांचा चलने लगा, 'अरे, यह ढेढ़ और वह भी ढाई सेर लड्डू तुलवा ले गया ! एक साथ ढाई सेर ! और बीड़ी का बण्डल भी। इसके पास इतने पैसे आये कहां से ! सारे कावीठा गांव में तो ऐसा श्रीमंत कोई दिखाई नहीं देता और यह ढेढ़ कैसे साहूकार बन गया !'

लड़के की खोपड़ी में से उसके पैरों को कुछ ऐसा सन्देश मिला कि वह तेजी से दौड़ने लगा। अपने घर पहुंचकर वह अपने पिता से कहने

लगा, "दद्दा, एक ढेढ़ ढाई सेर लड्डू और एक वण्डल बीड़ी लेकर जा रहा है !"

"चुप रह।" उसके बाप ने उसे खोडिया का नाम तो नहीं वताया, पर खुद अपने मुहल्ले के नीम पर चढ़कर इधर-उधर देखने लगा। उसने देखा कि अपने कपड़े की झोली बनाये उसे अपने शरीर से लपेटे हुए ढेढ़ दूर के एक खेत में ऊंची बढ़ी हुई जवारी में दाखिल हो रहा है। घनी जवारी के खेत में वह सांप की तरह घुसा चला जा रहा है।

"दौड़ो, दौड़ो, खोडिया है !" नीम पर से उतरकर वह पाटण-वाडिया वस्ती में से आवाजें देता हुआ दौड़ने लगा। उसकी आवाज़ सुनकर दूसरे लोग भी उसके साथ हो गए। उनमें एक था, उसके सगे चचा का वेटा।

पुलिस थाने की ओर वे लोग दौड़ने लगे। थाने में एक ही सिपाही था। वह भी दौड़ा तो खूब, पर उसका शरीर भारी था। वेचारा थोड़ी दूर जाकर हांफने लगा।

शिकारी कुत्ते की तरह पाटणवाडिया दौड़ रहे थे। जवारी के खेत में पहुंचे। चोर चेत गया और भागा। उसके हाथ में कारतूस दागनेवाली वन्दूक थी, फिर भी पीछा करनेवाले लौटे नहीं, पीछा करते ही रहे। डेढ़ कोस दौड़कर वे सव सन्तोकपुरा गांव की सींवानी पर पहुंचे। आगे-आगे खोडिया था, उसके पीछे उसके सगे चचा का वेटा और उसके पीछे दूसरे विरादरी के लोग थे। इतने में खोडिया को एक पेड़ की आड़ मिल गई। यह वुरा हुआ। आड़ लेकर खोडिया ने अपनी वन्दूक तानी। यह जानकर भी कि अव छूटनेवाली है और छूटते ही उसके पीछे दौड़नेवालों में से एक का प्राण ले लेगी, फिर भी पाटणवाडिया रुके नहीं, दौड़ते रहे, और सव से आगे था उसके सगे चचा का वेटा।

परन्तु खोडिया के हाथ में वन्दूक की नली ऐसी ही ताकती-की-ताकती रह गई, धड़ाका नहीं हुआ, धुंआ भी निकलता दिखाई नहीं दिया।

"हां, जवानो ! दौड़ो ! वन्दूक तो है, पर मालूम होता है कारतूस नहीं हैं।"

सगे चचा का वेटा पहुंच गया और खोडिया को अपनी अंकबार में

भर लिया। दोनों एक-दूसरे से भिड़ गए। दोनों के बालों की लटें फर-फरा रही थीं, दोनों के मुंह पर लहू की ललाई फूट निकली। ऐसा लगता था, मानो दो भैंसे पृथ्वी को क्रोध में भरकर रौंद रहे हों। दो भेड़िये मानो प्राण-पण से लड़ रहे हों। डाकू अपने प्राण बचाकर भाग जाना चाहता था और उसके चचा के बेटा कावीठा गांव की आबरू बचाना चाहता था। थोड़ी ही देर में दोनों का फैसला होनेवाला था।

खोडिया अंकवार छुड़ाकर भाग गया होता, लेकिन इतने में सारे लोग वहां पहुंचे गए। खोडिया विवश हो गया। उसे पकड़कर कावीठा ग्राम में पुलिस-थाने पर ले जाया गया और पुलिस को सौंप दिया गया। सबने राहत की सांस ली, बिरादरी में मुंह दिखाने की हिम्मत आई। सबने सोचा कि अब महाराज को शान से मुंह दिखा सकेंगे।

महाराज दौड़कर आये। परन्तु उन्हें देखने को सूने-उदास चेहरे मिले। पाटणवाडिया स्त्रियों की आंखों से आंसुओं की अविरल धारा बह रही थी।

भादरण परगना के कोसिन्द्रा गाम में खोडिया के पकड़े जाने का समाचार उन्हें मिला था, पर पुलिस ने तो पहले ही कावीठा गांव के कई मुखियों को पकड़कर पेटलाद भेज दिया था।

महाराज ने आकर मामले के बारे में पूछ-ताछ शुरू की। लेकिन उन लोगों ने जवाब दिया, "हमें तो कुछ भी मालूम नहीं है।" बस पकड़कर ले गए हैं। जिन्होंने खोडिया को पकड़ा उन्हें, और यहां तक कि बूढ़े-बीमारों तक को पकड़कर ले गए हैं। यह कहकर स्त्रियां रोने लगीं। उनकी गोद में छोटे-छोटे बच्चे थे।

महाराज ने उनके मन की सब बातें निकलवा लीं।

उन सबने कहा, "ऐसा जानते तो उसे हम क्यों पकड़वाते? उसे पकड़वाने पर ही तो यह विपत्ति हम सब पर आ पड़ी है। मुआ चरता-खाता रहा होता तो पुलिस किसका हाथ पकड़ती? डाकू को तो छिपाने से ही लाभ है।"

यह सुनते ही महाराज को तो श्वास लेने की भी हिम्मत नहीं हुई। वह पैदल चलकर पेटलाद पहुंचे। उन्हें मानवता के दीये फिर बुझते हुए

दिखाई दे रहे थे। उनका मन चिन्ता-ग्रस्त था।

उन्होंने फौजदार से जाकर पूछा, "साहब, क्या बात है जो दूसरों को भी पकड़कर ले आये हैं?"

"उन पर आरोप लगे हुए हैं।"

"किस बात के?"

"तीन दिन पहले खोडिया ने जिस स्त्री को लूटा था, उस लूट का माल छिपाने का।"

"अच्छा, यह सब किसने कहा है?"

"खुद खोडिया ने।"

"अच्छा, खोडिया यह कहता है?"

"वह कबूल करता है कि फलां-फलां को उसने लूट का माल दिया है।" उनके लिए यह सरसे पैर तक आग लगानेवाली बात थी।

खोडिया—चोरी-डकैती करनेवाला खोडिया—पकड़ा गया है, और जिन्होंने उसे पकड़ा है, उन्हींको वह अपने साथ फंसाना चाहता है। पुलिस को भी कैसे सत्यवादी हरिश्चन्द्र की साक्षी मिली है? परन्तु उस आग को महाराज पचा गए और फौजदार से उन्होंने सिर्फ इतना ही कहा :

"जानते हैं, खोडिया को पकड़नेवाले यही लोग हैं।"

"नहीं! पकड़नेवाला तो हमारी पुलिस का सिपाही है।"

"अरे रहने दीजिए! वह मुटल्ला तो जरा दौड़कर ही हांफने लगा था। उसे पकड़नेवालों को ही आपने पकड़ा है और वह भी खोडिया के कहने से। इन सब लोगों को जल्दी छोड़ दीजिए, नहीं तो मैं बड़ोदा पुलिस कमिश्नर के पास जा रहा हूं। अधर्म की भी कहीं कोई हद होती है!"

महाराज ने सबको छुड़ाकर वापस कावीठा पहुंचा दिया।

× × ×

१९२८ में एक दिन सुबह साबरमती जेल के एक कैदी-चक्कर में कैदियों के लिए खाना आया। दूसरे तमाम कैदियों को बाजरे की रोटी और दाल बांट देने के बाद खाना लानेवाला एक नये आये हुए कैदी के

पास गया और उसे बाजरे की नहीं, गेहूं की रोटियां दीं। कैदी ने पूछा, "क्यों, मुझे गेहूं की रोटी क्यों दे रहे हो?"

"आप खाइये न।"

"पर, समझाओ भी तो!"

"आपके लिए भेजी हैं।"

"किसने?"

"शंकरिया मुकादम ने।"

"शंकरिया? अरे हां, याद आया। बोरसद में उस दिन भीखा देदरड़ावाले के साथ जो शख्स आया था वह शंकरिया?" उन्होंने पूछा।

"किस तरह भेजी हैं?"

"कोई चोरी करके नहीं भेजी हैं।" खाना लानेवाले ने सफाई दी।

"तो कैसे?"

"उसे मिलनेवाली गेहूं की रोटियां उसने आपके लिए भेजी हैं।"

"और मेरी बाजरे की रोटी कहां हैं?"

"आपकी रोटियां उसने अपने खाने के लिए रख ली हैं।"

"क्यों?"

"उसने कहा है कि हमारे महाराज आये हैं, उन्हें गेहूं की रोटियां अधिक भायंगी।"

"ठीक, तुम जाओ।"

खा-पीकर निबटे, पर कैदियों ने देखा कि बोरसद तालुके से आये हुए नये कैदी ने कुछ नहीं खाया है। गेहूं की रोटियां उसने एक ओर रख छोड़ी हैं।

ये थे रविशंकर महाराज!

शाम का खाना आया। उसमें भी इस कैदी के लिए गेहूं की रोटियां आई थीं। लानेवाले ने कहा, "शंकरिया मुकादम ने भेजी हैं और आपकी ज्वार की रोटियां उसने रख ली हैं।"

शाम भी महाराज ने बिना खाये ही बिता दी। यह बात चुपचाप एक कान से दूसरे कान में जाकर जेल के दूसरे—दूर के चक्कर में

शंकरिया मुकादम के कान तक पहुंची। वह बहुत दुखी हुआ। छिप-छिपाकर आखिर वह महाराज से मिलने आ ही पहुंचा और पांवलागी करके पूछा :

"मेरी रोटियां क्यों नहीं खाईं ?" उसने झगड़ा शुरू किया।

"शंकर, मैं इन्हें नहीं खा सकता। यह जेल के कानून के खिलाफ है।"

"जेल के कानून !" शंकरिया को क्या पड़ी थी जेल के कानून की ! अपनी आत्मा का कानून ही उसके लिए तो सच्चा कानून था। पांच साल पहले जब वह दूसरे की रोटी लूट लेता था उस समय, और आज, जब वह अपनी रोटी दे रहा था, तब भी उसके लिए वही एक कानून था। आत्मा के—प्रेम के—कानून के सम्बन्ध में जैसी वह कर सकता था, वैसी उसने अपनी टूटी-फूटी भाषा में महाराज से बहुत-सी बातें कीं और महाराज ने उसे सामाजिक नीति के तत्त्व समझाये। काफ़ी चर्चा के बाद शंकरिया के दिल का समाधान हुआ और उसने कहा, "अच्छा, अब गेहूं की रोटियां नहीं भेजूंगा।"

"हां, शंकर !" महाराज ने जब यह कहा, तब उनका मुंह उतर गया और उनकी मृदु आवाज़ में करुण याचना का भाव दिखाई दिया।

"मैं भीखा (देदरड़ावाले) से मिलना चाहता हूं।"

"उसे भेज दूंगा। वह भी आपसे मिलने के लिए बहुत आतुर है।"

दूसरे ही दिन महाराज को एक कैदी ने समाचार दिये।

"आप अपने चक्कर के उस छोर पर ज़रा चले जायं।"

"क्यों ?"

"वहां एक शख्स आपको मिलने के लिए बुला रहा है, नाली के जरिये बातें होंगी।"

"कौन है ?"

'भीखा नाम का कैदी है।"

"उससे कहना कि मैं चोरी से, नाली में से, बातें करने के लिए नहीं आऊंगा।"

दूसरे ही दिन महाराज चक्की पीसकर नहाने के लिए जा रहे थे।

उनका सारा शरीर आटे से सना हुआ था। उस समय एक कैदी दौड़ता हुआ आकर उनके पैरों में गिर पड़ा। उसे खड़ा करके महाराज ने ध्यान से देखा, वह भीखा था। पांच साल पहले, जिसे बोरसद की हवालात के दरवाजे की छड़ों के पीछे देखा था, वह आज भी वैसी ही निर्मल लालिमा लिये हुए अपने चेहरे को अपनी मुस्कान से उज्ज्वल बनाता हुआ खड़ा था।

माता जिस प्रकार अपने पुत्र को देखकर मुसकराती है, उसी प्रकार मुसकराते हुए महाराज उसे देख रहे थे।

फिर भीखा के कंधे पर हाथ रखकर क्षमा मांगते हुए स्वर में उन्होंने कहा, "तुम्हें बहुत बुरा लगा होगा!"

'किसलिए ?"

"इसलिए कि मैंने तुम दोनों को तीन साल की सजा का आश्वासन दिया था, पर..."

भीखा बीच में ही बोल उठा, "ऐसा न कहें, महाराज! हम तो आपके पैर पूजते हैं कि वह खोडिया बत्तीस साल की सजा पर गया और हम दोनों आपके परताप से सात-सात साल की सजा लेकर ही चले आये। दो साल के बाद तो दद्दा, हम मौज करते हुए घर पहुंच जायंगे। आप ही ने हमें बचा लिया है, नहीं तो, कौन जानता है, शायद हम फांसी ही पा जाते। मुझे कुछ भी बुरा नहीं लगा है।"

महाराज को इन शब्दों में मानवता के दीये की नव-ज्योति के दर्शन हुए!

भीखा उनसे अलग होकर खुशी-खुशी अपने चक्कर में चला गया।

: ७ :

चोर कौन—साह कौन ?

"महाराज !"

"हां !"

"कुछ मालूम हुआ ?"

"क्या ?"

"कणभा गांव में चोरी हुई। लवाणा के घी के डिब्बे चोरी चले गए।"

कणभा गांव में प्रातःकाल उठते ही किसी ने यह समाचार दिया। जिन्हें यह समाचार दिया गया था, वह पुलिस-थाने के फौजदार नहीं थे, परन्तु गांधी के फौजदार रविशंकर महाराज थे।

"गांधी ! छोटे गांधी ! बड़े गांधी ! कहां होंगे ? ऐसे प्रिय संबोधनों से गांव के लोग जिनको सादर बुलाते थे, उन्हीं रविशंकर महाराज ने जब यह सुना कि उनकी देखरेख में चलनेवाले कणभा गांव में चोरी हो गई है तो बहुत बुरा नहीं लगा। लेकिन इस समाचार को देनेवाले ने जो बात कही थी, उससे हृदय दुखी हो गया :

"और लवाणे ने थाने में जाकर रिपोर्ट दर्ज कराई है। फौजदार कणभा गया है।"

उनका दिल रो उठा, चिन्ता होने लगी। कुछ डर भी लगा। उनके और लोगों के बीच हुआ करार टूट गया था। डाकू बाबर की लूट-पाट के कारण गांवों पर दंड के रूप में हर आदमी पर जो सरकारी कर लगा था, उसे वहां के लोगों ने 'हैडिया वेरो' (घूंटीकर)[1] का नाम दिया

१. गले के नीचे घूंटी होती है, उस पर से यह नाम दिया गया है। यह

था। उसके विरुद्ध लोगों ने लड़ाई शुरू की थी, जिसमें डेढ़ ही महीने में लोगों की जीत हुई थी। इस जीत को प्राप्त करने में मर्दानगी का प्याला जिसने लोगों को पिलाया था, वह थे 'महात्मा गांधी' के फौजदार 'छोटे गांधी'। वह जब लोगों से 'राम-राम' कहकर कालू गांव से अपने घर लौट रहे थे, लोगों ने उनका रास्ता रोककर उनसे कहा था, "हम आपको जाने नहीं देंगे।"

उन्होंने कहा, "मैं यहां रह नहीं सकूंगा।"

लोगों ने पूछा, "क्यों ?"

उनका उत्तर था, "हमारा तुम्हारा हृदय का संबंध जुड़ा है। प्रीति की डोर बंधी है, इसलिए अब तुम्हारा दुःख मुझसे देखा नहीं जायगा।"

"दुःख कैसा ?"

"तुम चोरी करो, शराब पियो, पुलिस तुम्हें पकड़े, बांधे, मारे, गालियां दे; यह सब मुझसे नहीं देखा जायगा।"

"तो हम चोरी नहीं करेंगे, शराब नहीं पियेंगे, परन्तु 'छोटे गांधी', आपको तो हम यहां से जाने नहीं देंगे।"

फिर तो गांव-गांव में—कठाणा में, खटलाश में और सारोला में—लोगों के कहने से महाराज ने जाहिरा शराब की होली जलाई थी, जिसकी लौ धरती से एक-एक हाथ ऊपर उठी थी। उसका उन्हें स्मरण हो आया। इसी लौ के साथ-साथ बारैया लोगों ने चोरी न करने की शपथ खाई और चोरी जिसके घर हो, वह पुलिस में रिपोर्ट नहीं करेगा, यह करार सभी लोगों ने, व्यापारियों ने भी, किया था। यह बात उन्हें अनायास याद हो आई।

और अब रिपोर्ट लिखा दी गई है, इसलिए केवल शक पर ही फौजदार बहुतों को हैरान करेगा, उनकी जेबें झड़वायेगा, गालियां देगा और मारेगा। सच्चा चोर तो बचकर निकल जायगा और इस प्रकार वह और भी अधिक अपराध करने लगेगा। यदि सच्चा अपराधी पकड़ा भी गया तो वह सरकारी तौर-तरीके के बुरे असर के कारण मानवता से

वय प्राप्त होने पर बाहर दिखाई देती है, अर्थात, यह कर हर वय-प्राप्त व्यक्ति पर लगाया गया था।

भ्रष्ट हो जायगा और यदि किसी निर्दोष को पुलिस ने अपने शिकंजे में कसा तो उसका जीवन ही नष्ट हो जायगा।

लोगों ने महाराज को रोक लिया था उसके बाद, यह बात नहीं थी कि गुनाह होते ही नहीं थे, पर उनकी जांच, विचार, घर-पकड़, शिक्षा, बदला चुकाना आदि सब कार्य एक अनोखे रूप से होते थे। कोई भूल करनेवाले नादान बालक-सा चोर स्वयं आकर माल लौटा जाता, शर्मिंदा होकर मुंह छिपाता फिरता, महाराज अंत में उसका मुंह खुलवाते और इस बुरी लत से उसे छुड़ाते। यह लत ही तो है। यह लत ही तो चोरी का प्रेरक-तत्त्व है। स्त्रियां आकर अपने पतियों के बारे में कहतीं, "महाराज, अपने इस सेवक को तो कुछ समझाइये। रात को आराम से सोने की बजाय जहां-तहां चोरी करने पहुंच जाते हैं।" तब पुरुष भी अपनी पत्नी के समक्ष ही महाराज से शिकायत करता, "पूछो इसीसे। यही तो रोज मुझ पर व्यंग्य करती रहती है। मुझे टोकती रहती है और चोरी करने भेजती है।" जैसी बीड़ी-तम्बाखू की आदत होती है, वैसी ही यह चोरी की आदत है। उससे अधिक कुछ भी नहीं। बड़े हंसमुख और भोले-भाले थे वहां के सब लोग।

अपराध की जांच-पड़ताल की विचित्र सरकारी पद्धति के कारण ही तो वे अपराधी बनने पर विवश होते हैं। इसीलिए रिपोर्ट न करने का करार उन्होंने लोगों के दिल में मजबूत किया था। इसी उचित कारण से हानि उठानेवाले पुलिस खाते के कुछ कर्मचारियों के दिल में महाराज की नई पद्धति के प्रति दिल में गहरा रोष छिपा हुआ था। उस रोष को प्रकट करने का अब उन्हें मौका मिलेगा।

मानवता के उपासक के लिए यह विचार बहुत ही दुःखद था। फौजदार कणभा गये हैं, इसलिए यदि वह स्वयं वहां जायंगे तो उसका परिणाम अच्छा नहीं होगा, इस ख्याल से वह सारा दिन कठाणा में ही बैठे चरखा कातते रहे। परन्तु रात होते ही वह वहां ठहर नहीं सके। रात को नौ बजे कणभा के लिए चल दिए।

थोड़ी दूर जाने पर घोड़े पर चढ़े हुए फौजदार सामने रास्ते में मिले। उन्होंने पूछा, "क्यों, कणभा जा रहे हैं, महाराज ?"

"हां।" शर्मिंदा थे, इसलिए वह अधिक न बोल सके।

"ठहरिये !" घोड़ा रोककर फौजदार ने अपना रोष प्रकट करने का यह मौका खोया नहीं। "इन बारैयों की आप बहुत प्रशंसा करते हैं न ? पर मेहरबान्, यह भी समझ लीजिए कि ये लोग सोने की झारी हैं, पर इनकी पैंदी पीतल की है। चाहे जो कहें, पर यह जाति ही बुरी है। हम तो सब समझते हैं, आपको भी अब अनुभव हुआ होगा।"

"सोने की झारी, लेकिन पैंदी पीतल की !" इस वाक्य से उनका कलेजा छिल गया। अन्य किसी अवसर पर इन अमलदारों के साथ रौब से बात करनेवाले महाराज आज निरुत्तर थे।

बिना कुछ कहे वह कणभा पहुंचे और वहां जाकर धर्मशाला में ठहर गए।

गांव में समाचार पहुंचा। दो-एक आदमी मिलने के लिए आये। परन्तु महाराज अपने नित्य के रिवाज के अनुसार मौन ही रहे। आने-वालों की इधर-उधर की बातें सुनते रहे। परंतु ऐसा कोई सूत्र हाथ नहीं लगा, जिससे वह कोई बचाव का रास्ता निकाल सकें। अंत में एक ने कहा :

"महाराज, अब आप अपने जी को क्यों जला रहे हो ? चोरी तो गोकलिए ने की है।"

महाराज ने मुंह ऊपर उठाया और पूछा, "कहां है गोकलिया ?"

"खेत पर।"

"अच्छा !"

सुबह उठकर दतौन आदि से निबटकर अकेले ही गोकुल के खेत पर चल दिए।

"आइये दद्दा, आज तो आपने मेरे खेत को पवित्र किया !" गोकुल ने अपने ओढ़ने की गुदड़ी महाराज के बैठने के लिए बिछा दी।

दोनों थोड़ी देर तक मौन रहे। आखिर गोकुल ने ही मौन तोड़ा, "आपने देखा न महाराज, हम लोगों की आपने कितनी मदद की, सरकार की ओर से होनेवाली परेशानी दूर की, कैसे अच्छे उपदेश दिए, फिर भी किसी ने आपका मान नहीं रखा। हमारी जाति ही ऐसी बुरी है,

दादा !"

महाराज यह सुनकर चुप रहे। गोकुल से अब कुछ भी पूछने की आवश्यकता नहीं थी। उठे और कहा, "तो मैं जाता हूं।"

"कहां जायंगे ?" गोकुल उन्हें पहुंचाने के लिए उठ खड़ा हुआ। ऐसा लगता था मानो उन्होंने अपने होंठ सी लिये हों।

"गांव में।"

"अच्छा," कहकर खेत के किनारे तक उन्हें पहुंचाने गया और "पधारें दद्दा," कहकर लौट गया। उन्हें उसके पेट में पाप होने की जरा भी प्रतीति नहीं हुई। क्या झूठे ही उसका नाम लिया गया होगा ? गोकुल जैसा सरल किसान, यह तो चोरी करनेवाला हो नहीं सकता।

लौटकर धर्मशाला में जा बैठे। लोग भी इकट्ठे हुए। तरह-तरह की बातें होने लगीं। महाराज तो किसी से कुछ पूछते नहीं और न अंतर की आग और दुःख ही प्रकट करते हैं। सबकी बातें सुन रहे हैं।

रसोई की बेला हुई। लोग कहने लगे, "महाराज, रसोई बनाइए।"

लोगों के या स्वयं किये हुए अपराधों का प्रायश्चित्त करने के लिए उपवास किया जाता है, इस बात का ब्राह्मण को पता नहीं था। लोगों से काम कराने का उनका साधन अनशन नहीं था। पर उन्हें तो स्वाभाविक तौर पर यही विचार आ रहा था कि 'मैं कैसे खा सकूंगा। पुलिस इनको मारे-पीटेगी। ऐसे में मुझे खाना कैसे अच्छा लगेगा ? क्या मैं यहां से भाग जाऊं ?' उनका मन व्याकुल हो उठा। खाने की इच्छा नहीं रही। कह दिया, "नहीं खाऊंगा।"

"क्यों ?"

"यहां मैं कैसे खा सकता हूं ?" इससे अधिक वह कुछ भी नहीं कह सके।

एक मुसलमान किसान, जिसका नाम दाजी था, खड़ा हुआ। सबको संबोधित कर बोला, "अरे, यह तुम्हारे बापू यहां आये हैं, वह कुछ खायेंगे-पीयेंगे नहीं ? चलो, धर्मशाला के दरवाजे पर ताला लगा दो। ये न खायें तबतक हममें से कोई भी नहीं खा सकेगा।"

महाराज ने कहा, "नहीं, मैं तो धर्मपूर्वक उपवास कर रहा हूं।

तुम्हारा धर्म उपवास करने का नहीं है। तुम लोग सब जाओ और खाना खाओ।"

उन्होंने सबको खाना खाने भेज दिया। उसके बाद भी लोग आते-जाते रहे। पर चोर का पता न चला। रात हुई। भूखे पेट महाराज चादर ओढ़कर सो गए। अकेले ही थे।

आधी रात हुई। सोये हुए महाराज के पैर का अंगूठा पकड़कर किसी ने दबाया। उठकर निगाह दौड़ाई तो एक आदमी को अपनी ओर पीठ करके खड़ा हुआ देखा। वह कुछ बोल नहीं रहा था। महाराज खड़े हुए तो उस आदमी ने आगे-आगे चलना शुरू कर दिया। वह भाग रहा था, परंतु आगे-आगे जाता हुआ वह मानो यह चाहता था कि महाराज उसके पीछे-पीछे चले आवें।

महाराज उसके पीछे-पीछे चले। वह आगे और महाराज उसके पीछे। गांव की हद पर पहुंचे। उसके बाद एक टीलेदार खेत आया। उसके बाद आगे-आगे चलनेवाले आदमी ने दौड़ना शुरू किया। दूर अंधेरे में वह लुप्त हो गया। उसकी देह तो नहीं दिखाई दे रही थी, पर एक आवाज़ सुनाई दी।

"ए-ए-ए यहां है।"

"यहां है।" चोरी का माल वहां होगा ? लेकिन कहां ? यहां के माने क्या ? आवाज़ किस ओर से आ रही है ?

अंधेरी रात, टीलेदार खेत, सत्यानाशी के पौधों को कुचलते हुए, पैरों पर कांटों की चोटें सहते हुए, महाराज चलते गए। उन्होंने समझ लिया कि जिस ओर से आवाज़ आई थी, उसी ओर वह जा रहे हैं। परंतु वस्तुतः वह उससे उल्टी दिशा में जा रहे थे। अंधेरे में लुप्त उस मनुष्य ने दूसरे खेत पर जाकर देखा कि दद्दा भूल से दूसरी ओर जा रहे हैं।

थोड़ी देर में कोई एक व्यक्ति उनके पास पहुंचा। वह सिर पर साड़ी की तरह लाल कपड़ा लपेटे था। परंतु स्त्री नहीं थी। आवाज़ मर्द की थी। "यहां कहां टटोल रहे हैं ? इधर आइये, इधर !"

"इधर आइये !" लेकिन इधर, याने कहां ? दिशा सूझ नहीं रही थी।

इतने में खड़खड़ की आवाज़ आई। डिब्बों के खड़खड़ाने की। सोना-

मोहर या रुपयों की झंकार भी कभी इतनी मीठी नहीं लगी थी, जितनी कि टिन के डिब्बों की यह खड़खड़ मीठी लग रही थी। इन डिब्बों की खड़खड़ाहट के सहारे, उसका सूत्र पकड़कर जब वह वहां पहुंचे तो वहां कोई मनुष्य नं था। स्त्री का वेश बनाकर मर्द की आवाज़ में मार्ग बतानेवाला वह आदमी वहां से चला गया था।

डिब्बे खेत में पड़े हुए थे। दोनों भरे हुए थे। दिनभर के भूखे ब्राह्मण ने एक डिब्बा सिर पर और दूसरा हाथ में उठाया। अंधेरे में ठोकरें खाते-खाते गांव में पहुंचकर वह सीधे उस लवाणे के घर गये और पूछा :

"ये तुम्हारे हैं न ?"

डिब्बे देखकर लवाणे ने कहा, "यह एक मेरा है, दूसरा मेरा नहीं। एक में घी है, दूसरे में तेल है। मेरे तो दोनों डिब्बे घी के थे।"

फिर मुकाम पर लौटकर महाराज खाट पर पड़कर सोते रहे। सुबह जानकारी मिलते ही लोगों की टोली-की-टोली धर्मशाला पर जाकर खड़ी हो गई।

"डिब्बे मिल गए। डिब्बे मिल गए। अब महाराज भोजन करेंगे।" लोगों के दिल की वाणी गूंज रही थी।

महाराज ने कहा, "डिब्बे तो मिले, पर न मिलने के बराबर हैं। यह तो मुझे और भी अधिक ठगना है।"

लोग मुंह बाये देखते रहे। डिब्बे सौंपनेवाले ने दगा की थी और चोर तो अभी तक छिपा हुआ था। दूसरे दिन भी महाराज ने अन्न-जल ग्रहण न करने का आग्रह बनाये रखा। लोग भी बैठे रहे।

संध्या का समय हुआ। एक लड़का आया। उसने कहा, "दद्दा को मेरे पिता बुला रहे हैं।"

"किसका लड़का है ?" महाराज ने पूछा।

"उस गोकुल का ही तो है।" एक आदमी ने कहा।

"जाओ, महाराज, जाओ।" दूसरा बोला।

"हां-हां ! उठो-उठो।" सब कहने लगे।

महाराज उठे। पीछे लोगों की भीड़ भी जाने लगी। यह देखकर उन्होंने कहा, "मैं तुम लोगों को साथ लेकर वहां नहीं जाऊंगा। तुम सब

क्यों चल रहे हो ? मुझ अकेले को ही यदि जाने देना चाहते हो तो जाने दो।"

इतने में गोकुल ने ही सामने के ओसारे से ऊंचा हाथ हिलाकर आवाज़ दी और कहा, "महाराज, जो भी आना चाहें उन्हें आने दें। मुझे कोई आपत्ति नहीं।"

घर आये हुए महाराज को बैठाकर निश्चित मन से मुस्कराते हुए गोकुल ने धीरज के साथ कहा, "आपके सेवक ने भूल की है।"

किसी भी प्रकार बाह्य पश्चात्ताप न व्यक्त करनेवाली गोकुल की सीधी-सादी वाणी सुनकर महाराज थोड़ी देर चुप रहे, फिर उन्होंने कहा, "नहीं-नहीं, गोकुल, तू तो ऐसा नहीं कर सकता !"

"लेकिन महाराज।" गोकुल ने कहा, "गलती से कर बैठा हूं। अब छोड़िये इस बात को।" लगा, मानो कोई बालक बोल रहा था।

"तब तू मान कैसे गया ?"

"मुझे यह थोड़े ही पता था कि आप इस हद तक पहुंच जायंगे ?"

हँसी रोककर महाराज अंतर में स्नेह का अनुभव करते हुए बोले, "लवाणा तो दो में से एक ही डिब्बे को अपना बताता है।"

"सच कहता है," गोकुल ने कहा।

"तो मुझसे डिब्बे क्यों उठवाये ?"

"दूसरा कोई उपाय नहीं था।"

"क्यों ?"

"कल यहां फौजदार आये थे। वह जान गए कि डिब्बे मैंने चुराये हैं। मुझे दो-एक बैंत फटकारे और चालीस रुपये मांगे। क्या करता ? दो में से एक डिब्बा बाजार जाकर बेच आया। तीस रुपये मिले। दस रुपये उधार लेकर चालीस पूरे किये और फौजदार को दिये। बाकी बचा एक डिब्बा, बेचकर लेनदारों को चुकाने की सोची थी। परंतु महाराज, आप तो कुछ ऐसा कर बैठे कि घर में पांच सेर भैंस का घी था, उसे बेचकर तेल लाया और दूसरा डिब्बा भरा।"

यह वर्णन करते समय गोकुल किंचित मुस्करा भी रहा था, मानो वह कोई पाप या अपराध प्रकट नहीं कर रहा था, बल्कि अपनी कोई

स्वाभाविक आपबीती का बखान कर रहा था। जो कुछ भी उसने किया था, उसमें कोई नई या अजीब बात नहीं थी। उसने अपनी चोरी का वर्णन किया, फौजदार की दुष्टता का बखान किया। चालीस रुपये का जुगाड़ कैसे किया और घी के बदले तेल से डिब्बा कैसे भरा, इसका भी वर्णन किया। फिर कहने लगा, "महाराज, आप ऐसा करेंगे, यह मैंने नहीं सोचा था।"

महाराज को दो दिन पहले संध्या के समय रास्ते में फौजदार मिला था। उस समय उसके छाती के बहुत पास चालीस रुपये की रिश्वत जमा थी और फिर भी उसके होठों पर वे शब्द थे, "चाहे जो कहें, यह जाति ही बुरी है। आप उसकी प्रशंसा करते हैं, पर सोने की झारी..."

गोकुल की बातें सुननेवाले सब हँस पड़े, क्योंकि अपराध करनेवाला कौन था, गोकुल या फौजदार—यही एक समस्या बन गई थी। लेकिन महाराज नहीं हँसे, वह थाह लेना चाहते थे। व्यक्ति के मन में जलनेवाले इस दीपक की बत्ती किस तेल में भिगोई गई है, इस बात की उन्हें थाह लेनी थी। उन्होंने पूछा :

"परंतु तुमने चोरी क्यों की ?"

"क्या कहूं ?" गोकुल शरमा रहा था।

"तू अकेला था ?"

"नहीं, हम दो जने थे। आपके इस मुल्क में आने से पहले मैं चोरी नहीं करता था, पर जो होना था, हो गया और मैं न करते भी कर बैठा। एक रात को हम दोनों जने पोखरे पर बैठे थे। यह लवाणा वहां से निकला। दहेवाण गांव में न्यौता खाने जा रहा था। इसको देखकर मेरा साथी कहने लगा, 'यह दिन में सबको लूटता है और रात को न्यौता खाने जाता है। लवाणे की यह कैसी जाति है ? ये लोग हमको लूटते हैं, हमें भी इन्हें लूटना चाहिए। चलोगे, गोकुल ?' मैंने कहा, 'जाने भी दे।' वह बोला, 'अरे, चला भी चल।' मैंने कहा, 'अच्छा, चल।' हम दोनों गये। उसकी दूकान पर ताला लगा था। ताला तोड़ डाला और अंदर से घी के दो डिब्बे उठाये, पर यह नहीं जानता था कि आप ऐसा करेंगे।"

महाराज के मुंह पर मुस्कान थी, पर हृदय जैसे रो रहा था। क्या कोई बालक भी इतना निष्पाप होगा, परंतु निष्पाप होना ही काफी नहीं था। मनुष्य बालक बनकर समाज में कैसे जी सकता है ? बालक को बदमाश बना देनेवाला यंत्र तो पूरे जोश में कार्य कर रहा है !

महाराज ने कहा, "तब गोकुल, तुम्हें लवाणा के बाकी रहे माल की हानि को पूरा करना होगा।"

"अच्छा ! जो कहोगे, वह दूंगा।"

"दस रुपया दोगे।"

"हां, एक महीने में अपनी भैंस का घी वेचकर दे दूंगा।"

"पर तुम्हारी ओर से उसकी जमानत कौन देगा ?"

वहां बैठे हुए लोगों में से और किसी की तो नहीं, केवल एक मुसलमान व्यापारी दाजी की यह हिम्मत हुई। उसने कहा, "गोकुल के दस रुपये की जमानत मैं देता हूं।"

इतना जब हुआ, केवल एक घड़ी दिन बाकी रहा था। महाराज लवाणे की दूकान पर गये। उन्होंने उससे दस रुपये की बात कबूल करवाई। अब लोगों ने कहा, "महाराज, अब उठो, रसोई बनाओ।"

महाराज ने कहा, "नहीं-नहीं, अब दिन बीत चुका है, और मुझे भूख भी नहीं है।"

"तो फलाहार करें, खजूर का फलाहार।"

"अच्छा, लाओ।"

"पर खजूर कहां से लाये जायं ? अरे, गांव में तलाश करो, किसीके पास खजूर हैं ?"

धीरे-से वह लवाणा बोला, "मेरे पास हैं।"

महाराज ने कहा, "अच्छा, पाव-भर खजूर तौलो।"

लोग बोले, "नहीं, आधा सेर तौलो।"

आधा सेर खजूर तौलकर वह लवाणा कहने लगा, "इसके चार आने किसके नाम पर लिखूं ?"

लोगों को बहुत बुरा लगा। सिर पर किये गए घाव से भी अधिक। सबके मुंह काले पड़ गए। महाराज के मुंह की ओर देखने और उनसे आंख

मिलाने की भी किसीमें हिम्मत नहीं थी। महाराज भी एक क्षण के लिए चौंके, परन्तु उन्होंने तत्काल अपने को सम्हाल लिया। फिर वही मुसलमान दाजी बोल उठा, "चार आने नहीं हो सकते, छः आने होंगे। मेरे नाम पर लिख लो। और अब लेना अपने दस रुपये ? देख लिया तुम्हें।"

महाराज ने लोगों के गुस्से को रोक लिया। लवाणे से एक शब्द भी न कहा। सब उठे। धर्मशाला की ओर जाते समय दाजी कह रहा था, "महाराज, ये लवाणे अपने पक्ष के नहीं। हां, वे तो सरकारी पक्ष के हैं। सरकार ने ही इनसे कह रखा है कि तुम बेफिक्र होकर लोगों को लूटो। तुम्हारे पैसे हम डूबने नहीं देंगे, इसीलिए तो हमने कोरट-अदालतें रखी हैं ! ये लवाणे सरकार के पक्ष के हैं, हमारे नहीं।"

सब हंसने लगे। महाराज के मुंह पर भी थोड़ी मुस्कराहट दिखाई दी।

परन्तु यह अध्याय अभी पूरा नहीं हुआ था। कठाणा के फौजदार को जब इसका समाचार मिला, उसने समझ लिया कि अपना हाथ ऊपर रखने का यही समय है। उसने आकर खाली डिब्बे अपने कब्जे में कर लिये। महाराज से कहा, "अपराधी का नाम बता दो।"

महाराज ने कहा, "मैं नाम नहीं बतलाऊंगा।"

"जानते हैं, यह भी गुनाह होगा ?" वह इसी एक बात को बार-बार दोहरा रहा था।

महाराज ठंडे दिल से जवाब देते जाते थे, "होने दो, मैंने उसे अभय वचन दिया है।"

फौजदार ने महाराज पर मुकदमा करने का उपाय किया। मामला खेड़ा के अंग्रेज पुलिस अधिकारी के पास पहुंचा। उन्होंने फौजदार को बुलाकर डांटा :

"जानते हो किस पर मुकदमा करने जा रहे हो ? जो भूखों मरकर, अनशन करके, अपराध कबूल करवाते हैं, उन पर। खबरदार, जो आगे से ऐसे मामले को हाथ में लिया !"

: ६ :

मेरे स्वजन

न मालूम मुखिया का कैसा समय पलटा कि उस दिन उसके पैर वाघला पाटणवाडिया की बाड़ी की ओर उसे ले गए, यद्यपि वह जा तो रहा था धर्मज स्टेशन की ओर। उसके कोई सगे-सम्बन्धी अफ्रीका जा रहे थे, उन्हें पहुंचाने के लिए स्टेशन तक जाना चाहता था और इसीलिए वड़दले से निकला था, परन्तु मौत उसे रास्ते से ही उस बाड़ी की ओर खींच ले गई।

वहां तीन पाटणवाडिया थे। एक मोट चला रहा था, दूसरा पानी की नाली ठीक कर रहा था और तीसरा बैठा था। मुखिया को आते हुए देखकर वाघले ने कहा, "आइये, मुखियाजी !"

"साले कोली !" पाटीदार मुखिया ने अपने सदा के स्पर्द्धी इस पाटण-वाडिया को बिना किसी कारण गाली से ही सम्बोधन कर बात करनी शुरू की। "क्यों रे ! बहुत घमण्डी हो गया है तू।" इसके बाद उसको अपने किसी काम के न करने की बात को लेकर उसे धमकियां देने लगा।

वाघला दीन-सा चुपचाप सब सुनता रहा और जब मुखिया ने कहा कि लाओ, शाक के लिए थोड़ी फलियां दे दो, तो उसने फलियां लाकर उन्हें दीं। फलियां झोली में भरकर वह स्टेशन की ओर चल पड़ा।

पर मुखिया की पीठ फिरते ही तीनों गरम होने लगे। एक ने कहा, "देखो तो सही, बिना कारण ही गालियां दे गया !" दूसरा बोला, "तो क्या वह यों ही चला जायगा ?" तीसरे ने कहा, "जाने तो नहीं देना चाहिए।"

बस इतनी बात हुई कि वाघला मोट चलाना छोड़कर नीचे उतर

आया। बैलों की जोत छोड़ दी और भाला उठा लिया। वह मुखिया के पीछे दौड़कर जाने लगा और दूर से ही आवाज़ दी—"अबे ओ कणबीके, खड़ा रह।" मुखिया ने पीछे फिरकर देखा ही था कि वाघला का भाला उसके शरीर में आकर घुस गया।

मुखिया ज़मीन पर गिर पड़ा और वाघला भाग गया। दूसरे दो जो थे, वे भी भाग गए। मुखिया लहूलुहान होकर जमीन पर पड़े हुए हैं, यह समाचार वडदला से धर्मज स्कूल में पढ़ने जानेवाले लड़कों ने वडदले पहुंचकर दिया, तभी सबको इसकी जानकारी मिली। सब लोग वहां पहुंचे और मुखिया के शरीर को वडदला ले आए।

वडदला, धर्मज तथा उनके आसपास रहनेवाले पाटीदारों में इस घटना से बड़ी खलबली मच गई। अपनी जाति के मुखिया को मारा! कांग्रेस की लड़ाई के समय जिसने मुखिया-पद से त्यागपत्र दिया था, ऐसे त्याग करनेवाले को मारा! और कांग्रेस का साथ देने वाले पाटीदारों की जब्त की गई जमीनों को कुर्की में लेने वाले पाटणवाडिया जाति के एक शख्स ने मारा! पुराने समय से चली आई अदावत की आग में घी पड़ा। मुखिया के मरणासन्न शरीर के पास...भाई आकर खड़े हो गए।

ये भाई एक प्रचण्डकाय, विकराल और अपनी टेढ़ी-मेढ़ी चालों से कई लोगों को डराने-कंपानेवाले एक पाटीदार नेता थे। पुलिस अधिकारी तथा पंचों के समक्ष मुखिया का आखिरी बयान लिखाया जाने लगा। मुखिया ने मारनेवालों के नाम लिखाते समय केवल दो ही नाम लिखाये। उस समय उन भाई ने आंखें दिखाकर उन्हें दबाया और कहा, "तुम तो चले, लेकिन पीछे रहनेवालों का भी तो कुछ विचार करो। चलो, और लिखाओ।" यों कहकर उन भाई ने उस आखिरी बयान में दूसरे पांच पाटणवाडियाओं के नाम भी दाखिल करा दिए। मुखिया कुछ हां-ना कर सके, उसके पहले ही उसके प्राण निकल चुके थे।

वड़ौदा की सेशन्स अदालत में पक्के सबूतों के कारण और बड़े-बड़े वकीलों की होशियारी से वडदला के देशभक्त मुखिया के खून के लिए वडदला के सातों अपराधियों को सजा हुई। एक को फांसी की, एक को आजन्म कैद की और बाकी पांचों में से किसी को पांच, किसी को

सात तो किसी को दस साल की कैद मिली।

जिसे फांसी की सजा हुई, वह मुखिया को भाला मारनेवाला वाघला नहीं, उसके साथ मुखिया की ओर दौड़नेवाला पाटणवाडिया भी नहीं, वाडी में जो तीसरा व्यक्ति हाजिर था वह भी नहीं।

तब वह कौन था ?

उसका नाम भी वाघला था। परन्तु इस खून से उसका कोई सम्बन्ध नहीं था। फिर भी वह फांसी के योग्य था, क्योंकि कांग्रेस की लड़ाई के समय जब मुखिया ने त्यागपत्र दिया था, उस समय मुखिया का पद सम्हालने वाला वाघला यही था। इसलिए वह इसी योग्य था। उसका सिर मांगा जा रहा था। पक्के सबूत थे। वकील बहुत कुशल थे। निर्दोष खूनी साबित हुआ। रात का दिन बना।

आजन्म कैद की सजा पानेवाला वाघला बेशक सच्चा खूनी था। उसको इतनी ही सजा हुई। कोई हर्ज नहीं, इतनी सजा ही सही। उसने कांग्रेस की लड़ाई को थोड़े ही कोई हानि पहुंचाई थी !

बाकी के पांच इस कार्य में बिल्कुल निर्दोष थे। पर इससे क्या ? आखिर वे पाटणवाडिया थे, चोरी डकैती करनेवाले।

जिस दिन सजा सुनाई गई, वडदला के पाटीदारों ने उस रोज सार्वजनिक उत्सव मनाया !

२

...भाई ने जब सुना कि जेल से निकलकर रविशंकर महाराज ने वडदला आकर इन सातों कैदियों का मामला अपने हाथ में लिया है और वरिष्ठ अदालत—हाईकोर्ट में अपील करने का वह प्रबन्ध कर रहे हैं तो उनके क्रोध की सीमा नहीं रही। महाराज को अपने घर बुलाकर उन्होंने लालच दिया, धमकियां सुनाईं और कहा, "आप इन कोलियों को और भी अधिक बहकाना चाहते हैं ?"

महाराज कहने लगे, "भाई, क्या तुम यह चाहते हो कि इन फांसी पर लटकनेवाले कैदियों के निराधार बाल-बच्चों को दाना-पानी भी मैं न पहुंचाऊं ?"

"मैं यह सबकुछ नहीं जानता, रविशंकर। वडदला में आना हो तो

सीधी तरह से आओ और जाओ। और अगर तुम्हें इस तरह की बातें करनी हों तो यहां मत आना। मैं तुम्हें यह कहे देता हूं।"

...भाई जब ऐसी कोई बात कह देते हैं तो उसके भयंकर परिणाम को न समझनेवाला और जिसके दो सिर हों, ऐसा व्यक्ति अभी तक कोई पैदा नहीं हुआ था। रविशंकरजी...भाई के जीने से नीचे उतरे। उन्होंने जोखिम का हिसाब लगाने में एक पल का भी विलम्ब नहीं किया। उनके मन में तो यह प्रतीति हो चुकी थी कि सात में से छः जने तो निर्दोष हैं और जिसे फांसी की सजा हुई है, वह वाघला अगर फांसी पर चढ़ा दिया गया तो बड़ा अनर्थ हो जायगा।

उस समय गांधीजी गुजरात में ही थे। उनके पास जाकर महाराज ने सारा किस्सा शुरू से आखिर तक कह सुनाया और पूछा, "उनके बचाव का प्रबन्ध करूं ?"

"अवश्य।" गांधीजी ने उत्तर दिया।

"परन्तु बहुत-से पाटीदार इसका बुरा मानेंगे।"

"यह जोखिम तो उठाना ही होगा।"

"परन्तु इन सातों ने दूसरी तरह के गुनाह तो किये ही हैं।"

"यह देखना हमारा काम नहीं है। इस मामले में यदि वे निर्दोष हैं तो उन्हें छुड़ाना हमारा धर्म है। तुम जाओ और इसकी व्यवस्था करो और आवश्यकता होगी तो अन्त में मैं महाराज गायकवाड को इस बारे में पत्र लिखूंगा।"

३

"अरे ओ बामन !"

स्टेशन से बाहर खड़े हुए रविशंकर महाराज ने अपने पीछे से आती हुई इस आवाज को सुना और पीछे मुड़कर देखा तो थोड़ी दूर पर एक हथियारबंद घुड़सवार को कड़ी मुद्रा धारण किये ऊंचे घोड़े पर बैठा हुआ पाया। उसके साथ चमकते हुए भाले को हाथ में लिये हुए दो अंग-रक्षक थे। "यह तो...भाई हैं। क्या वह मुझे बुला रहे हैं ? और इन शब्दों से ?" महाराज को आश्चर्य हुआ। उस घुड़सवार...भाई ने आज्ञा दी, "यहां आओ, इधर।"

महाराज ने उनके पास जाकर पूछा, "क्यों...भाई, क्या कहना चाहते हैं ? कहिये ।"

"क्यों, उन कोलियों को छुड़ाकर ला रहे हो न ?"

"उसका प्रबन्ध तो कर ही रहा हूं ।"

"जल्दी कर लो । सयाजीराव महाराज के पास भी पहुंच जाना । कहीं महाराज विलायत न चले जायं ।"

"इसकी भी व्यवस्था हो गई है, ...भाई ।"

एक के बाद एक इस प्रकार के शान्त उत्तरों से उत्तेजित होकर जब...भाई अनुचित धमकियां देने लगे तो महाराज ने हँसकर कहा :

"देखो, ...भाई, आपकी तथा मेरी स्थिति में जो भेद है, उसे आप समझ लें । आप तो हथियार बांधकर घूम रहे हैं और मेरे हाथ में एक लाठी भी नहीं । आप मौत से प्रत्येक पल पर डरते हुए यह रिवाल्वर, घोड़ा और इन रक्षकों को साथ लेकर चलते हैं, और मैं बिना साथी के अकेला रातदिन घूमता रहता हूं । भय से आप दिनरात थरथराते रहते हैं और मुझे लेशमात्र भी भय नहीं है । मेरी तुलना में आपकी स्थिति कैसी दयाजनक है, इसका भी तो ज़रा विचार कीजिए । दूसरी एक बात यदि आपके ध्यान में न आई हो तो मैं आपके ध्यान में लाना चाहता हूं । यदि भूलकर भी आपने कभी मुझपर हाथ उठाया तो जानते हो, उस दिन ये आपके दो अंगरक्षक क्या करेंगे ? ये कौन है यह तो देखो ! पाटणवाडिया हैं । मुझ पर हमला होगा तो क्या तुम यह समझते हो ये लोग खड़े देखते रहेंगे ? ये दोनों ही मेरी रक्षा के लिए दौड़ पड़ेंगे ।...भाई, विचार करो, मुझ पर झूठमूठ रौब न झाड़ो । अपनी इस कमजोर स्थिति के बारे में सोच लो ।"

...भाई का मुंह सूख गया । महाराज को कोई उत्तर दिये बिना ही वह अपना घोड़ा हांक कर चल दिये । परन्तु ये...भाई तो अपने जाति-भाइओं के प्रज्वलित प्रकोप की एक प्रतिनिधि-मूर्ति रूप थे । दूसरे एक गांव में जब महाराज गांव के चबूतरे के पास जा रहे थे तो एक पाटीदार ने तैश में आकर उन पर हमला कर दिया । महाराज ने उसके इस आक्रमण को शान्ति से सह लिया । दूसरे लोग हमला करनेवाले को

भला-बुरा कह खींचकर ले गए और महाराज को बचा लिया। महाराज ने कहा, "उसे क्यों रोक रहे हो ? उसे अपना गुस्सा मुझ पर निकाल लेने दो। उसे अगर मेरा आचरण अनुचित लगता है तो मुझे सजा देने का उसे अधिकार है।"

इस पर दूसरे सभ्य लोगों ने महाराज से कहा, "महाराज आप इसमें क्यों दखल दे रहे हैं। यहां से हट जाइये। ये तो कांग्रेस के शत्रु पाटणवाडिया हैं, सदा के चोर-डाकू हैं। मार-पीट, लूटपाट करते ही रहते हैं। आप क्यों ऐसे लोगों को बचाने का प्रयत्न कर रहे हैं ?"

महाराज ने उत्तर दिया, "आपके किसी स्वजन पर यदि ऐसा संकट आता और उसे ऐसी सजा हुई होती तो आप उसे बचाने जाते कि नहीं ? उसी प्रकार ये जैसे भी हों, मेरे अपने स्वजन हैं। मैं उनका बचाव किये बिना कैसे रह सकता हूं ?"

उच्च न्यायालय में अपील करने का समय धीरे-धीरे नजदीक आ रहा था। वकील किये गए। बचाव के मुद्दे तैयार किये जा रहे थे। वडोदा के वकील-मंडल में, अधिकारी-मंडल में, प्रजा-मंडलों में, निर्दोषों पर रचा गया यह षड़यन्त्र बड़ा प्रसिद्ध हो रहा था। उस समय गुजरात में महात्माजी सत्याग्रह के समय जब्त की गई जमीनें वापस दिलाने का प्रयत्न कर रहे थे। सरकार से जिन्होंने ये जमीनें प्राप्त की थीं, उनकी नामावलियों में एक नाम दिखाई दिया—वडदला का पाटणवाडिया वाघला। महादेवभाई ने पूछा, "यह क्या वही वाघला है, जिसे फांसी की सजा मिली है ?"

"हां, वही है।"

"तब तो रविशंकर महाराज," महादेव भाई ने कहा, "आप उसके पास जेल में जायं और उससे यह लिखा लायं कि वह अपनी राजी-खुशी से जमीन लौटा रहा है।"

"आज, अभी !" महाराज का श्वास नीचे बैठा जा रहा था।

पाटीदार की ज़मीन पाटणवाडिया ने ली थी। लेनेवाले को मौत के मुंह में धकेल दिया गया था। इन्हीं षड्यंत्रवादियों को ज़मीन लौटा देने के लिए कहने जाना था।

"हाँ, अभी।" कहकर महादेव भाई ने एक कागज़ पर एक मसविदा लिखकर महाराज के हाथ में दिया। इस कागज पर उसके दस्तखत करा लाओ और उसके नीचे जेल-अधिकारी की 'मेरी उपस्थिति में यह हस्ताक्षर किये गए हैं', ऐसी टिप्पणी भी लिखा लाओ।

बड़ी सख्त कसौटी थी। पैर उठने को तैयार नहीं थे। पहले अनेक प्रसंगों पर बड़ोदे के मार्ग पर दौड़कर जानेवाले पैर आज चलने में कांप रहे थे।

और बड़ोदे की बड़ी जेल की अंधेरी कोठरी के द्वार जब खुले तो महाराज को अपने सामने दो मानव-प्रेत खड़े दिखाई दिये। दोनों वाघला। उनकी दाढ़ी बढ़ी हुई थी, आँखों में मौत की छाया दीख रही थी, मानो ये द्वार उन्हें फांसी के मंच पर ले जाने को ही खुले हों!

महाराज ने ऐसी कोई वात नहीं कही कि वाघला, मैंने अपील दाखिल करवाई है और तुम्हारे बचाव का प्रयत्न किया जा रहा है, बल्कि सीधे यही प्रश्न किया, "वाघला, गांधीजी ने तुम्हारे लिए सन्देश भेजा है कि लड़ाई में ली हुई वह ज़मीन क्या तुम वापस लौटा सकते हो?"

"हां, क्यों नहीं, महाराज!" फांसी की सजावाला वाघला बोला। "जरूर, गांधी महात्मा को मैं वह ज़मीन वापस लौटा देता हूं। लाइए, अंगूठा लगा दूं। अब मुझे उस जमीन से क्या मतलब है?"

जेल-अधिकारी की साक्षी में वाघला ने स्वीकृति लिखकर दे दी और फिर उसने कहा, "पर महाराज, आप गांधी महात्मा से कहेंगे कि वह हमें आसीस दें। हम तो अब चले। हमने गांधी महात्मा के प्रति अपराध किया, उसकी सजा तो हमें, यह देखो, विना किसी कारण के ही मिल रही है। अब भी क्या हमें वह माफी देकर आशीर्वाद नहीं देंगे? महाराज, आप क्या इतना गांधी महात्मा से कह देंगे? जरूर कह दीजिएगा।"

"वाघला!" महाराज बड़ी कठिनाई से बोल सके, "मैं उनसे कहूंगा और वह अवश्य तुम्हें आशीर्वाद देंगे।"

महाराज वहां अधिक नहीं ठहर सके। उनकी पीठ के फिरते ही डूबी हुई नौका पर जैसे फिर पानी आ जाता है, फांसी की कोठरी के कठोर

द्वार फिर बंद हो गए।

बड़ोदा के उच्च न्यायालय के अन्तिम निर्णय का दिन भी आ गया। वकीलों के साथ महाराज हाजिर हुए थे और महाराज के साथ कैदियों के सगे-संबंधी भी वडदले से आकर बैठे थे। कैदी सातों कारागृह में थे। उनका बचाव हो रहा है, इस बात की उन्हें जानकारी नहीं थी, परवा भी नहीं थी, और कोई आशा भी नहीं। फांसी की सजा पाया हुआ बाघला इसी की राह देख रहा था कि कब उसकी अंधेरी कोठरी का द्वार खुलेगा और कब वह मौत के अनन्त अन्धकार में अपने-आपको छिपा लेगा। इसलिए वह किसी के पैरों की आवाज़ की प्रतीक्षा कर रहा था।

अदालत में ही शाम हो गई। दलीलें समाप्त हुईं। न्यायाधीश उठकर चेम्बर में चले गए। कैदियों के सम्बन्धियों की आंखें महाराज की ओर लगी हुई थीं। धीरे-धीरे समय बीता जा रहा था। महाराज न्याय-मूर्तियों के चेम्बर की ओर आंख लगाये खड़े थे। घड़ी के कांटे स्थित-प्रज्ञों की गति से चक्कर काट रहे थे। चेम्बर में से कोई भी न निकला।

अन्त में महाराज ने कैदियों के संबंधियों से कहा, "तुम्हारी गाड़ी का समय हो गया है, इसलिए अब तुम तो सब जाओ।"

उसका एक यही अर्थ था कि आशा नहीं है। यहां ठहरने से कोई लाभ नहीं। यह सुनकर सब लोग विदा लेकर चल दिये। बिना सुने ही फैसला समझ गए। गाड़ी पकड़कर उन्होंने वडदला की राह ली।

उनके जाने के बाद तुरन्त ही वकील ने आकर महाराज से कहा, "फैसला लिखा जा चुका है। दस्तखत हो गए हैं। सातों निर्दोष साबित हुए हैं।"

अधिक जानने की राह देखे बिना ही, अधिक पूछताछ किये बिना ही, महाराज दौड़ पड़े—बड़ी जेल की ओर। जेल-अधिकारी से जाकर कहा, "आप मुझे इन सातों से मिलने दें।"

"लेकिन अभी हुक्म नहीं आया है।"

"वह आवेगा, परन्तु मैं अब अधिक राह नहीं देख सकूंगा। कृपा कर आप मुझे उनसे मिलने दें। मैं उन्हें जल्दी से यह खबर देना चाहता हूं।'

जेल-अधिकारी की कचहरी में आकर सातों कैदी एक पंक्ति में खड़े हो गए। उनके मुंह पर हवाइयां उड़ रही थीं। शरीर में मानो प्राण नहीं थे, खून जम गया था, आंखें झूठी पड़कर मानो यों ही ताक रही थीं, मानो उनमें कोई नूर ही न रहा हो।

सातों के मुंह पर एक बार नज़र दौड़ाने के बाद बिना किसी उत्तेजना के महाराज ने उन्हें शान्ति देनेवाले शब्द सुनाये।

थोड़ी देर के लिए तो सातों शरीर न हिले, न डुले, न कुछ बोले। उन्होंने न दृष्टि घुमाई और न ओठों के कोनों तक को हिलाया। फिर सातों एक साथ महाराज के पैरों में ऐसे पड़ गए, मानो किसी यंत्र की चाबी घुमाने से जैसे पुतले गिरते हैं।

सातों में से एक के भी मुंह से कोई शब्द नहीं निकला।

महाराज उठे। अभी तक आज्ञापत्र क्यों नहीं आया? मैं जाता हूं और लेकर आता हूं। यह कहकर पुनः वे अदालत की ओर दौड़े गए। थोड़ी ही दूर जाने पर एक साइकिल-सवार मिला। उसके हाथ में आज्ञा-पत्र था। वह बोल उठा, "तुम्हारे सात आदमियों की मुक्ति का हुक्म है। जेल ले जा रहा हूं।"

महाराज खड़े रहे।

साइकिलवाला बोला, "मुझे कुछ नहीं दोगे?"

महाराज का हाथ बड़ी खुशी से अपनी बंडी की जेब में गया, लेकिन हाथ में आये मात्र दो पैसे।

अपनी अपरिग्रही व्रत-दशा का सख्त अफसोस उस भिखारी को पहली बार हुआ। आज जेब में दस रुपये होते तो वे भी उसे दे देते! लेकिन निकले मात्र दो ही पैसे!

"लो भाई, और अधिक तो कुछ है नहीं।"

महाराज का दो पैसेवाला हाथ यों ही लंबा होकर रह गया, उनका चेहरा उतर गया, साइकिल-सवार पैंडल-पर-पैंडल मारता हुआ जल्दी से जेल की ओर चल दिया। उनका हाथ जेब की ओर लौटा। दो पैसे उसमें फिर लौट पड़े और लज्जा से अभिभूत होकर वह जेल की ओर चल पड़े।

(४)

दूसरे दिन दोपहर के समय पांचेक वर्ष का एक वालक, वडदला गांव के मार्ग के किनारे एक खेत में खड़ा था। उसके काका वगैरा वड़ोदा जाकर अभी सुबह ही घर लौट आये थे। उन्होंने न मालूम मां से क्या बात कही कि वह बड़े-बड़े आंसू बहाकर रो रही थी। रुदन-भरे घर में से अकुला कर वह बाहर चला आया था। उस समय किसी ने उससे कहा था कि तेरा वापू अव कभी नहीं आयेगा। उसे तो आज सुवह भगवान के घर पहुंचा दिया गया होगा। ऐसी बातें उसे सुनना अच्छा नहीं लगा, इसलिए वह खेत पर चला आया था और वहुत संभव है कि भगवान के घर जाते हुए उसका वापू गांव के आकाश पर से निकलेगा, इस विचार से वह उसके निकलने की राह देखता हुआ खड़ा था। उसी समय उसे रास्ते पर पैरों की आहट सुनाई दी। उस ओर उसकी निगाह गई। आठ आदमी चले आ रहे हैं। कौन होंगे वे? वे नजदीक आने लगे, नजदीक, और भी नजदीक आये तो उन्हें पहचान लेने पर भी उनके पास जाने के बदले वह आश्चर्य, हर्ष तथा भय से भरा हुआ था— या जो देखा था, वह सत्य नहीं हो सकता, इस प्रकार के भाव से गांव की ओर, अपने घर की ओर, अपनी मां के पास जाने के लिए मुट्ठी बांधकर दौड़ पड़ा, बड़ी तेज़ी से। वह दौड़ा जा रहा था, दौड़ा जा रहा था।

महाराज को आश्चर्य हुआ, "हम लोगों को देखकर वह लड़का इस तरह भाग क्यों खड़ा हुआ?"

आठ में से एक ने कहा, "वह मेरा लड़का है।" यह कहनेवाला फांसी की सजा से मुक्त होकर लौटा हुआ वाघला था।

वाप वेटे से कुछ न कह सका, न वेटा वाप से। अभी तक यह विश्वास नहीं हुआ था कि यह जो नई बात हुई है, वह सच है या झूठ!

गाँव की सीमा पर पहुँचते ही सप्त में से एक बोल उठा, "अब तो यहीं विछान विछा दो। यहीं वैठकर मिठाई खाई जायगी।"

"क्या है रे?" महाराज बोल उठे। "ऐसा क्या पराक्रम करके आये हो, जो यहाँ जल्सा करोगे? खबरदार, जो कोई घर से बाहर निकला

तो ! मैं जहाँ कहूँ वहीं सातों को बैठे रहना होगा। बड़े चले हैं जलसा करने।"

महाराज समझ गए थे कि इन सातों को जिस दिन झूठी-सच्ची सजा दी गई थी, उस दिन पाटीदारों ने मिठाई उड़ाई थी। उसका बदला आज ये पाटणवाडिया लेना चाहते थे। उन्होंने यह नहीं होने दिया और इस प्रकार उनके बहकने पर अंकुश लगा दिया। सबको एक घर में बैठा कर रखा।

(५)

"चलो, सातों जने मेरे साथ।"

"कहाँ, महाराज !"

"...भाई के पास।"

"क्यों ?"

"हमें, सबको उनसे माफी माँगनी है।"

यह सुनकर पाटणवाडियों के मुँह काले पड़ गए। वे बोले, "माफी! उल्टे उनसे माफी, जिन्होंने हमें फँसाया ? हमें उन्होंने सताया और अब ऊपर से उन्हींसे माफी भी माँगनी होगी !"

"हाँ !"

"यह तो हमारे सिर उतारे जा रहे हैं !"

"कटने दो सिर। मैं कहता हूँ, चलो !"

"आप कहते हो तो, जहाँ कहेंगे वहाँ हम चले चलते हैं।"

सातों को लेकर रविशंकर...भाई की अटारी पर चढ़े। महीने बीत चुके थे। वैर की आग बुझाने का अवसर कब मिलता है, इसकी वह राह देख रहे थे। बोरसद से दरबार गोपालदास वहाँ उपस्थित थे।...भाई के घर पर जाकर महाराज खड़े हो गए। उनके साथ जब उन सातों फाँसी से बचकर आये हुए पाटणवाडियों को...भाई ने देखा तो उन्होंने मुँह फेर लिया।

महाराज ने कहा, "...भाई, अगर मुझसे कोई अपराध हुआ हो, तो मैं माफी माँगता हूँ। और ये सब भी आपसे माफी माँगते हैं।"...

उत्तर में भाई ने एक शब्द भी न कहा और न उनकी ओर देखा ही। थोड़ी देर राह देखकर आठों जने नीचे उतर गए।

उसके बाद एक दिन महीसागर के किनारे के कोटरों में रविशंकर महाराज अकेले चले जा रहे थे। उस समय दूर से आवाजें आती सुनाई दीं, "ओ जानेवाले, खड़े रहो।"

और दो आदमी दौड़े हुए आये। महाराज रुके। दो हथियारबन्द पाटणवाड़ियों में से एक ने अपना साफा ज़मीन पर बिछाकर महाराज से कहा, "महाराज, इस पर बैठिये।"

"क्या है रे ? कुछ कहो भी तो।"

"कहूँगा। एक बार आप इस पर बैठें भी तो !"

"बोलो, क्या बात है ?" महाराज ने बैठने पर उसे पहचान लिया। अपराध करके भागा हुआ यह एक युवक था। उसके लिए वारंट निकला हुआ था। युवक उत्तेजित होकर बोल रहा था, "हम उसका सिर उतार लेंगे।"

"किसका सिर ?"

"उस···भाई[1] का, वडदलावाले का।"

"लेकिन, क्यों ?"

"वह गालियाँ बकता है।"

"किसको ?"

"आपको। हम इस बात को बर्दाश्त नहीं कर सकते। हमें सुना-सुनाकर वह आपको गालियाँ देता है। हम उसका सिर कलम कर देंगे।"

"अरे जा-जा ! बड़ा आया है सिर उतारनेवाला। मुझे गालियाँ देता है तो उसमें तेरा क्या बिगड़ता है ? बकने दो उन्हें। और तुम भी तो अपने सिर पर एक गुनाह का बोझ लिये फिर रहे हो। तुम भी मेरे पास पहले कब हाजिर हुए हो ? जा अपना काम कर। वह मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकता !"

महाराज वहाँ से वडदले···भाई के पास गये और उनसे कहा : "एक ही बात कहने के लिए आया हूँ। एकान्त में आप मुझे जितनी गालियाँ देना चाहें, दे लें, मैं एक शब्द भी नहीं बोलूँगा। परन्तु आप मुझे बाहर कहीं गालियाँ न दिया करें। ये पाटणवाडिया उत्तेजित हो जाते हैं। मुझे डर है कि वे कहीं आपको कुछ कर न बैठें।"

१. ···भाई अब जीवित नहीं हैं।

: ९ :

खोया हुआ-सा पशु

महीने बीत गए। ब्राह्मण ने बड़ोदा के सूबा साहब से जो कहा था, वह सच साबित हुआ। इन पाटणवाडियों से क्या काम लिया जा सकता है, उसका किसी प्रकार खयाल किये बिना या कोई योजना तैयार किये बिना वह एक ही काम करता आ रहा है। इस गाँव से उस गाँव, सूर्योदय से सूर्यास्त तक चक्कर काटता रहा है। गाँव में गली-गली जाकर उसने स्त्रियों से कुशल-समाचार पूछे। जहाँ दोपहर होती, वहीं गाँव के किसी हरिजन भाई से गगरी-रस्सा माँगकर कुएँ पर स्नान कर लेता। गगरी भरकर उस घर के ओसारे को साफ़ करके पत्थरों का चूल्हा बनाकर दो मुट्ठी खिचड़ी माँगकर पका लेता। बिना मसाले की केवल नमक डाली खिचड़ी खाकर पानी पीता और फिर वहाँ से चल पड़ता। जिस गाँव में रात होती, उसी गाँव की पाटणवाडिया-बस्ती के आँगन में सो रहता। गाँव के बाहर खेतों में रात हो जाती तो घास-फूस के ढेरों में ही पड़कर ठंडी रात बिता देता। सोते हुए लोगों को उसने कभी जगाया नहीं और किसी को उपदेश भी नहीं दिया। उसने उन्हें कुछ दिया तो बस एक प्रेम; और उनसे माँगा भी तो बस उनका प्रेम ! हाजिरी बन्द कराने के लिए प्रेम से उन्हें मना लिया है। वह आलसी और प्रमादियों को जगाता और उनसे हाजिरी बन्द कराने की अर्जियाँ लिखवाता। किसी-किसी गाँव में बैठे-बैठे चरखा चलाता। वह स्वयं पुरोहित है। लोगों से जाकर उसने कभी यह नहीं पूछा कि क्या वे चोरी-डकैती करते हैं ? या करते हैं तो ऐसा क्यों करते हैं ? परन्तु लोगों ने ही जब उसके पास स्वयं आकर अपने पापों की गठरी खोली तो उस

समय उसने एक ही काम किया है। अपराधी आदमी को ले जाकर बड़ोदा की पुलिस के सुपुर्द किया और उसे हलकी-से-हलकी सजा या थोड़ा-सा जुरमाना कराके भयानक डाकूगिरी के रास्ते जाने से बचा लिया।

(२)

एक दिन बोरसद तालुका के कठाणा गाँव में महाराज एक ओसारे में बैठे-बैठे चरखा कात रहे थे। उस समय एक पाटणवाडिया आकर शान्ति से ओसारे के एक कोने में बैठ गया। चरखा कातते हुए महाराज न उसे पहचान लिया और खडोल गाँव की स्त्रियों, बच्चों तथा पुरुषों के कुशल-समाचार पूछ लिये और फिर चुपचाप चरखा कातते रहे। वह कुछ कहने के लिए आया है, यह तो वह समझ गए थे, परन्तु अपनी ओर से किसी के पेट की बात निकलवाने की महाराज की आदत नहीं थी। वह देख रहे थे कि आनेवाले की जीभ कुछ कहने के लिए अन्दर-ही-अन्दर हलचल-सी मचा रही थी।

"महाराज, जरा मेरे घर तक चलेंगे ?" आखिर उस आदमी ने अपना मुँह खोला।

"क्यों भाई, क्या काम है ?" महाराज ने दूसरी पूनी जोड़ते हुए पूछा।

"ज़रा काम आ पड़ा है। मेरा साला—वह खोडिया है न, उसके सिर पर थोड़ा कलंक लगा है।"

सिर पर कलंक ! लोगों के रोगों का निदान करनेवाले महाराज समझ गए। उन्होंने पूछा, "खोडिया कौन ?"

"कावीठावाला !"

"अच्छा, जाओ। आज तो नहीं, दो दिन बाद आऊंगा।"

उन्होंने कावीठावाले खोडिया के बहनोई को बिना लंबी बातचीत किये विदा किया। फिर पूनियों का बंडल बांधा, तकुआ उतारा, माल समेटी, चरखा अपनी जगह पर रखा और बड़ोदा का रास्ता पकड़ा।

पुलिस-अधिकारी के पास जाकर खड़े हुए। महाराज को उनकी इस प्रवृत्ति में सदा मदद करनेवाले यही मराठा अधिकारी थे। उनसे उन्होंने कावीठावाले खोडिया की बात कही। वह स्वयं जानते थे कि

खोडिया दो-एक चोरी-लूट आदि में शामिल रहा है। फिर भी उन्होंने साहब को समझाया कि यदि आप खोडिया को बचा सकते हों तो मैं उसे आपके सामने लाकर हाज़िर कर दूं।

"नहीं-नहीं। किसलिए ?" साहब ज़रा दूसरे ही मिज़ाज में आकर बोल उठे, "उससे कहिये कि वह पेटभर लूट-पाट का धंधा कर ले। उसके लिए तैयार हैं ये मेरी बन्दूक और गोलियां !" यह कहकर साहब ने मेज़ पर पड़े अपने रिवॉल्वर पर हाथ रखा।

महाराज जवाब में सिर्फ़ नीची निगाह किये मौन खड़े रहे।

"क्यों, मेरी बात आपके गले नहीं उतरती ?"

थोड़ी देर बाद जब साहब कुछ नरम हुए तो महाराज ने दर्दभरी वाणी में कहा :

"क्या कहूं ? बोलने के लिए अब कुछ बाकी रहा है ?"

"क्यों ?"

"क्यों ? यह किसलिए पूछते हैं ? आपके पास तो बन्दूक और गोलियां हैं।"

फिर उन्होंने जैसे पीपल का पत्ता थोड़ा हिलता है, उतनी ही धीमी आवाज़ में कुछ उत्तेजित होकर कहा :

"अच्छा, आपकी ये बन्दूकें और गोलियां बाबरिये के समय में कहां गई थीं ?"

बाबरिया डाकू के समय पुलिस को जो बदनामी मिली थी, उसका स्मरण होते ही साहब कुछ नरम हुए। महाराज ने फिर कहा :

"वह डाकूगिरी पर उतर आयगा और लोगों पर अत्याचार करने लगेगा, तब आपकी ये बन्दूकें और गोलियां कुछ काम न देंगी। इसलिए मैं आपसे यही कहने आया हूं कि अभी खोडिया में कुछ लाज-शरम बाकी है; अभी वह शरण में आ जाना चाहता है। यही समय है कि हम उसे बचा लें, डाकू बनने से रोक लें।"

"अच्छा तो उसे हाजिर कर दो। कुछ रुपयों का जुरमाना कराकर उसे निपटा देंगे।"

महाराज के फौलादी पैर फिर चल पड़े। इन पैरों की स्वाभाविक

दैनिक गति में आज नई स्फूर्ति दिखाई दे रही थी। उनके अंतर के गहरे उल्लास के कारण यह स्फूर्ति थी। उन्हें विश्वास था कि एक युवक को डाकू बनने से रोककर उसे मानवता के पथ पर चलाया जा सकेगा।

खडोल गांव पहुंचकर ही उनके पैर रुके। कावीठावाले खोडिया के बहनोई का यह गांव था। खुद तो गांव-बाहर बैठे रहे और उसके पास समाचार भेज दिया। रात हो गई थी। क्षण, घंटे तथा पहर बीतते जा रहे थे, परन्तु खोडिये का बहनोई नहीं आया। वह गांव में था, फिर भी दिखाई नहीं दिया। प्रभात होते ही महाराज भारी हृदय लेकर लौट पड़े।

"खड़े रहिये महाराज ! खड़े रहिये।" जब वह बोरसद की सीमा पर पहुंचे तब उन्हें पीछे से यह आवाज़ सुनाई दी। पीछे से एक मोटर भरभराती आ रही थी।

महाराज के पास तक मोटर पहुंचकर रुक गई। अन्दर से खोडिया का बहनोई उतरकर दौड़ता हुआ आया और बोला, "चलिये, मोटर में बैठ जाइये। खोडिया तैयार है।"

"कहां पर ?"

"तीन कोस पर।"

"नहीं, अब तो खा-पीकर ही चलेंगे।"

महाराज ने रसोई बनाई, स्वयं भोजन किया, उसे भी खिलाया और फिर वहां से चल दिए।

(३)

पामोल गांव की सीमा पर एक खेत में एक पेड़ था। उस पर चढ़-कर कोई इधर-उधर देख रहा था। महाराज पहचान गए। वह एक स्त्री थी। महाराज को देखकर वह झट नीचे उतर पड़ी। मोटर खेत पर पहुंची। खेत के बीचोंबीच एक झोंपड़ी थी। महाराज वहां गये। उन्होंने एक जवान को खाट पर सोया पाया। सिर पर लाल साफा था। पास में वही युवा स्त्री खड़ी हुई थी। बारीक निगाह रखनेवाले सरलता से यही अनुमान कर सकते थे कि इस स्त्री ने ही खोडिया को इस प्रकार झूठमूठ सुला दिया है।

महाराज ने गहरी नींद से जगने का बहाना करनेवाले खोडिया से

हलके व्यंग्य में पूछा, "क्यों खोडसंग ठाकोर, आखिर आपसे भेंट हो ही गई। बोलो, अब क्या करना है ?"

"बापूजी, आप जो कहें सो।" उस लुटेरे ने, जिसके सिर पर कंघी से व्यवस्थित की हुई पट्टियां पड़ी हुई थीं, लाल अंगारे-सी आंखों को घुमाकर जवाब दिया।

"मैं तो कहता हूं कि चलो थाने पर हाजिर हो जाओ। जो थोड़ा-बहुत जुरमाना होगा, उसे भरना होगा। तैयार हो ?"

"हां-हां, तैयार हूं। भरूंगा।"

"तो चलो।"

परन्तु खोडिया की दृष्टि उस औरत की दृष्टि से जा मिली। इस एक ही क्षण के दृष्टि-मिलाप ने खोडिया के जीवन को बदल दिया। उस रखेल की दो मोहक आंखों ने खोडिया के मन, प्राण तथा देह के आसपास काला लोहे का-सा गढ़ खड़ा कर दिया। उसने जवाब दिया, "आज तो नहीं, कल आऊंगा, महाराज। कल कावीठे में जरूर हाजिर हो जाऊंगा।"

"अच्छा, कल सुबह कावीठा गांव की सीमा के किसी घर के ओसारे में बैठकर मैं तुम्हारी राह देखूंगा।"

इस प्रकार का वादा करके महाराज विदा हुए।

(४)

"बापू, यहां बैठे किसकी राह देख रहे हैं ?"

"एक आदमी की राह देख रहा हूं।"

कावीठा गांव के किनारे एक घर के ओटले पर महाराज बैठे हैं, और आते-जाते लोगों के नमस्कार का जवाब देते हुए यह जवाब देते जाते हैं। हरेक आते-जाते पालागी करते हुए व्यक्ति के पूछे जाने पर कि यहां क्यों बैठे हैं, उनका दुबला मुंह और चमकती आंखें यही जवाब देतीं :

"हां, एक आदमी की राह देख रहा हूं।"

दोपहर हुई। लोग खेतों पर से लौटने लगे। उन्होंने महाराज को वहीं बैठा देखा तो पूछा :

"फिर-से यहां आ बैठे महाराज !"

"नहीं, सुबह से ही बैठा हूं।"

"अभी भी किसी की राह देखते बैठे हैं ?"

सिर हिलाकर महाराज ने अपनी लज्जा और ग्लानि को छिपाया। वह उठ खड़े हुए और चोर की तरह गांव में दाखिल हुए और खोडिया जिस मोहल्ले में रहता था, वहां पहुंचे। कोई ऐसा न मिला, जिससे वह पूछते। जब कोई मिला भी और उससे उन्होंने पूछा कि खोडिया कहां रहता है, तो वह उसका उत्तर दिये बिना ही आगे बढ़ जाता। एक-दो स्त्रियों से पूछा तो उन्होंने कह दिया, "देख लो, कहीं हो तो। हमें तो पता नहीं, कहां है।"

महाराज ने ऐसे जवाब पहली बार ही सुने थे। वह समझ गए कि खोडिया के नाम से ये ग़रीब लोग दूर रहना चाहते हैं। खोडिया के पापों की परछाईं में फंस जाने का हरएक के मन में गहरा डर समाया हुआ है। यह भी कोई नहीं कहता कि बैठो। कोई यह भी नहीं पूछता कि "कहां से आ रहे हो ? प्यासे हो या भूखे हो ?" सारी बस्ती सूनी पड़ी हुई है। जनपद की ज्योति मानो बुझ गई हो। स्मशान की-सी शान्ति चारों ओर फैली हुई है।

गली में एक खाट पड़ी हुई थी, उसे डालकर महाराज बैठ गए। इतने में पाटणवाडिया कौम का एक आदमी वहां से निकला। उसने कहा :

"अरे, महाराज हैं ? खटिया पर गद्दा क्यों नहीं बिछाया ?"

"मैं गद्दा साथ में नहीं लाया हूं, भाई।" फिर महाराज ने पूछा, "वह खोडिया कहां है ?"

"इसकी हमें तो कोई जानकारी नहीं है, महाराज !"

"अच्छा ! उससे कहना कि मैं आया था !"

बस, इतना ही वह बोल सके। दुःख गहरा था, पर वह अंदर छुपाकर रखने के लिए था, उनकी हालत-उस ग्वाले की भांति थी, जो अपने गो-समुदाय से भागे हुए किसी पशु को खोज रहा हो। वह पशु बड़ा ही रस्सी-तोड़ पशु था। जंगल में बाघ-भेड़िया कहीं उसे मार कर खा न जायं, इसकी उन्हें बड़ी चिन्ता थी।

महाराज का डर ठीक निकला। थोड़े ही दिनों में उन्हें समाचार मिला कि उसकी एक होशियार साहसी पाटीदार से भेंट हुई, और उसने उसे बहकाया है—"कि अरे, इन सफेद टोपीवालों का भरोसा न करना। उससे तो यही अच्छा है कि तुम मेरे साथ साहब के पास चलो। मैं तुम्हें माफी दिला दूंगा।" साहब पुलिस के बड़े अधिकारी थे। खोडिया को लानेवाले उस पाटीदार को उन्होंने अठारह रुपये का साफा दिलवाया था और खोडिया को नाहापा गांव के एक लुटेरे को पकड़ने के काम में लगाकर उसे बहुत बड़ा इनाम देने का लालच दिया था। पुलिस का आश्रय पाकर खोडिया फिर लूट-मार करने लगा। पुलिस का संरक्षण उसे मिल गया था न!

: १० :

नमन हो तस्करपति को

(१)

गांव से दो कोस की दूरी पर एक पीर की दरगाह थी। तालुका के सर फौजदार उस दरगाह पर पीर की मदद लेने के लिए आये थे।

"चल, इधर आ !" फौजदार साहब ने दरगाह पर खुद इकट्ठे किये हुए शंकास्पद व्यक्तियों में से एक को अपने पास बुलाकर उसके हाथ में थोड़े-से चावल दिये और कहा, "चबाना शुरू करो।"

उस व्यक्ति ने कुछ देर तक चावल चबाये। फौजदार ने कहा, "अब उसे थूक दो।"

फौजदार साहब तथा उनके मातहत नीचे झुककर उस व्यक्ति के थूके हुए चावलों की परीक्षा करने लगे। फौजदार ने कहा, "नहीं, यह चोर नहीं है। इसके चावलों में थूक मिला हुआ है। तू जा। अब दूसरा कौन है। चल, यह चावल ले और चबा।"

दूसरे ने भी चावल चबाये और उन्हें थूक डाला। उनका साहब ने निरीक्षण किया और सिर हिलाकर उसे भी निर्दोष घोषित किया।

"चल झाला, अब तू चावल चबा। पीर अपने गुनहगार को अभी पकड़ लेंगे।"

झाला एक पाटणवाडिया था।

उन चिमटी भर चावलों को लेते हुए झाला का हाथ काँप रहा था। चावल मुँह में डालते समय उसके होंठ कांप रहे थे। चावल चबाकर उसने उन्हें थूक दिया। उन थूके हुए चावलों की परीक्षा करने के लिए झुके हुए फौजदार के मुँह पर बिजली की-सी चमक आ गई। उसने अपने

मातहतों से कहा, "देखा न, बिलकुल सूखा है। देखा न ? वाह बेटा ! परीक्षा हो गई। अब दूसरे सब चले जायं। और झाला, तू इधर आ।"

काँपता-थरथराता सिकुड़ता झाला उनके नजदीक पहुँचा। इन चार कदमों में तो मानो उसने पीर के साथ जुगजुग की बातें कर लीं। "या पीर ! क्या आप पुलिस के मुखबिर हैं, जो आप इतनी बड़ी बनावटी बात बना सकते हैं। आप भी क्या इन शेर-चीतों की झूठी लीला में शामिल हैं ? चादर ओढ़कर यहाँ सोते हुए भी आप ऐसे-ऐसे काम करा रहे हैं ?"

फौजदार के मजबूत पंजे के एक तमाचे की चोट खाते ही झाला पाटणवाडिया पीर साहब के ध्यान से जाग्रत हो गया। और कुटिल हँसी के साथ किया गया फौजदार का कुटिल प्रश्न उसे सुनाई दिया, "ला रख, कहाँ है वह चोरी का कपड़ा ?"

"कपड़ा ! कैसा कपड़ा ?" झाला कुछ भी नहीं समझा।

"हाँ, वह तेरे बाप किनखलोड़वाले पाटीदार का कपड़ा !" चालाकी छोड़ और कपड़ा सीधे से निकाल कर दे दे। पीर के पंजे से बचकर तू जायगा कहाँ ?"

"कपड़े के बारे में साहब, मैं कुछ भी नहीं जानता।"

"अच्छा, तब झाला भाई को जरा समझाओ।" फौजदार ने जैसे ही अपने साथियों से यह कहा कि झाला के शरीर पर एक साथ डण्डे, घूंसे, लात और तमाचे बरस पड़े।

फौजदार ने अपनी ओर से एक घूंसा लगाने को जैसे ही हाथ ऊपर उठाया, किसी ने उनका हाथ पकड़ लिया। चौंककर फौजदार ने पीछे की ओर देखा। उनका हाथ पकड़ कर खड़े हुए एक ऊँचे कद के आदमी ने अपने शरीर के कद से विपरीत कोमल तथा धीमे स्वर में इतना ही कहा, "क्यों मारते हो ? मत मारो बेचारे को।"

"रविशंकर महाराज !" अपना हाथ पकड़नेवाले को देखकर चिढ़े हुए फौजदार ने कहा, "क्यों न मारें ? आपको क्या मालूम नहीं किन-खलोड़वाले की इसीने चोरी की है।"

"नहीं।" रविशंकर महाराज ने सजल नेत्रों से कहा, "यह झाला

चोरी नहीं कर सकता।"

"लेकिन यह तो देखो।" फौजदार ने अपने को मिले हुए पीर के सबूत की ओर—झाला के चवाकर थूके हुए चावलों की ओर उँगली से इशारा किया।

"यह देखते हैं ?"

"यह क्या है ?"

"अव भी पूछते हैं कि यह क्या है ? महाराज, यह सूखा, विलकुल विना थूक का, चवाया हुआ चावल है। यही तो पीर का तत्काल दिखाया हुआ परचा है। चोर हो तो उसके चवाये हुए चावल में थूक नहीं होता।"

यह सुनकर महाराज के दुःख में विनोद की झलक दिखाई दी। निर्दोष पीर को भी झूठी साक्षी में दाखिल करनेवाले गायकवाडी हिन्दू फौजदार को देखकर उन्हें हँसी आई। परन्तु इस हँसी को दबाकर उन्होंने कहा, "फौजदार साहव, यह पीर, चावल और थूक का शास्त्र तो मैं नहीं जानता, पर मुझे मनुष्य का, उसकी इन्सानियत का कुछ परिचय है। इस झाले को मैं अच्छी तरह पहचानता हूँ। उसके खेत पर ही मैं रहता हूँ। वह चोर नहीं है। उसे मत मारो। नहीं तो मैं यहाँ से सीधा बड़ोदा जा रहा हूँ।"

"मरने दो तव।" यह कहकर फौजदार पीर को सलाम करके वहाँ से चल दिए। और पीर मारे शर्म के जरा भी हिले-डुले बिना अपनी चादर में मुँह ढाँके सोते रहे।

पाटणवाडिया झाला को लेकर महाराज सोमा के खेतवाले घर की ओर चल दिए। वह किनखलोड गाँव के पाटीदार की कपड़े की गाँठ की चोरी के वारे में सोचते जा रहे थे। आज फौजदार ने पीर का प्रयोग किया, कल पुलिस कोई दूसरा ऐसा ही जंगली तरीका अपनायेगी। आज झाला को पीटा है, तो कल किसी दूसरे पाटणवाडिया को पीटेंगे। पीर पर श्रद्धा रखनेवाले फौजदार की वदली भी हो गई, परन्तु जो नया फौजदार आयगा वह शायद किसी और गन्दी तरकीव का सहारा लेगा। क्या करूँ ? किससे पूछूं ? जो कोई भी यहाँ आता है, वह एक ही नाम

लेता है, और वह है फूला वावेचा का नाम। हरेक पाटणवाडिया की जीभ पर भी फूला वावेचा का ही नाम है। फूला बड़ा भयंकर चोर है। सभी उसे जानते हैं। वह कभी पकड़ा भी नहीं गया। बहुतेरे लोग आकर यह कहते हैं कि फूला के घर की तलाशी ली जाय तो आगे-पीछे का बहुत-सा माल हाथ लगेगा। परन्तु फूला के घर की तलाशी लेना काले नाग की बाँबी में हाथ डालना होगा। ऐसा करने की नये आये हुए फौजदार की जुरंत भी नहीं; और यदि वह ऐसी जुरंत करे भी तो मुझे उसमें क्या दिलचस्पी हो सकती है ? मुझे इससे भला कैसे शान्ति मिल सकती है ? मुझे यदि इस चोरी की और चोरी करनेवाले चोर की मेरी अपनी रीति से जानकारी नहीं मिलती तो मेरा जीना व्यर्थ है।

"महाराज यदि मेरे आगे-आगे चलें तो मैं फूला के घर की तलाशी लेने को तैयार हूँ।" नये फौजदार ने जब यह शर्त रखी तो महाराज ने इन्कार कर दिया। उन्होंने कहा, "नहीं भाई; मेरा यह तरीका नहीं है। इससे मुझे क्या लाभ होगा ? फूला स्वयं जबतक मेरे सामने आकर खड़ा नहीं होता, तबतक मेरी कार्य-पद्धति किसी काम की नहीं।"

"चोरी करनेवाला तो फूला ही है। महाराज, आप मानो या न मानो। फूला के अलावा किसी दूसरे का यह काम नहीं है।" महाराज के कान पर यही एक आवाज पड़ती रही। प्रत्येक की बातों से फूला का जो चित्र अंकित हो रहा था उस पर अधिक-से-अधिक काला रंग चढ़ता जा रहा था। लोगों की दृष्टि में फूला का चित्र ऐसा डरावना बन गया था कि किसी अंधेरी रात में उस पर नज़र पड़ते ही उनका कलेजा फट जा सकता था। सबों की यह दृढ़ मान्यता थी कि जबतक उस प्रदेश में फूला वावेचा मौजूद है, चोरी का यहाँ से मिटना सम्भव नहीं। पर महाराज का मत इससे कुछ भिन्न था।

फूला को उन्होंने अबतक न तो देखा ही था और न उसे परखा था। फूला के पास जाना भी एक बड़ी कठिन समस्या थी। उसकी चर्चा करना भी टेढ़ी खीर थी। फूला से कैसे मिलूं, कहाँ मिलूं, और क्या कारण बता कर मिलूं, महाराज उचित अवसर की तलाश में थे। कपड़े की चोरी का चिन्तन करते हुए महाराज आधी रात तक झाला के खेत

पर ही बैठे रहे।

तीन दिन के बाद एक रात को झाला ने खेत में आकर सोते हुए महाराज को जगाकर कहा, "महाराज, आज रात को तलाशी ली जाने-वाली है, पर फौजदार को भी इसका पता नहीं कि कहाँ और किसकी तलाशी लेने जाना होगा।"

"किसकी तलाशी होगी ?"

"फूला वावेचा के घर की।"

"उसने चोरी की है ?"

"नहीं।"

"तब ?"

"फिर भी चोरी का माल फूला वावेचा के घर से ही निकलने-वाला है।"

"यह कैसे होगा ?" महाराज के अन्तर को आघात लगा।

"पहले तो चोरी का माल फूला के खेत में रखा जायगा और बाद में, फूला को उसकी जानकारी मिले, उससे पहले ही, तुरन्त फौजदार को उसके यहाँ ले जानेवाले हैं।"

"ऐसा किसलिए किया जा रहा है ?"

"इसलिए कि फूला ने जो दूसरी चोरियाँ की हैं, उनका माल भी वह निकाल कर दे दे।"

"माल रखने कौन जानेवाला है ?"

"जिसने यह चोरी की है, वही।"

"कौन ?"

"पाटणवाडिया इछला।"

"अच्छा !" महाराज गम खा गए और उन्होंने शान्ति से पूछा, "माल की गठरी कहाँ है ?"

"हमारे पास है।"

"तब उसे यहाँ ले आओ।"

"क्यों ?"

"अब भी यह पूछते हो ? धिक्कार है तुमको ? फूला कितना भी

बड़ा चोर क्यों न हो, फिर भी क्या उसके पीछे ऐसा षड्यंत्र रचना ठीक है ? तुम्हें शर्म नहीं आती ? ले आओ यहाँ सारा माल !"

झाला, इछला सब भीगी बिल्ली से बन गए। माल अपने कब्जे में करके महाराज फौजदार के पास गये। इछला का नाम दिये बिना सारे षड्यंत्र की बात उसे कह सुनाई। फौजदार ने कहा, "जाने दो तब, मैं ऐसी तलाशी लेना नहीं चाहता।"

कपड़े की गठरी कब्जे में करके एक पाटणवाडिया के घर रखी गई। महाराज ने खुद पाटणवाडियों की जो परिषद् बनाई थी, उसकी कमेटी को बुलाकर कहा :

"किनखलोडवाले की चोरी करनेवाला अपना यह इछला है।"

इछला को बुलाया गया।

इछला ने महाराज के पैर छूकर कहा, "महाराज, मैंने कपड़े की चोरी तो की है, पर किनखलोड की चोरी नहीं की है।"

"तो कहाँकी की है ?"

"अलारसा गाँव की।"

"झूठा है। अलारसा में कोई चोरी ही नहीं हुई है।" सारे परगने में जब कोई पाटणवाडिया गुनाह करता है तो उसकी खबर पुलिस को जब भी पहुँचे, लेकिन महाराज को तो उसका समाचार तुरन्त मिल जाता है।"

"चोरी हुई है महाराज !" इछला ने कहा। पर वह प्रकट नहीं हुई है, क्योंकि उसमें एक प्रकट न करने योग्य बात थी।"

"सच कह रहा है ?"

"विश्वास न हो तो अलारसा जाकर जाँच कर लें।"

कपड़े की गठरी लेकर महाराज रात को ही पहले किनखलोड पहुँचे। जिस पाटीदार का माल चोरी गया था, उसे कपड़ा दिखाकर पूछा, "यह कपड़ा तुम्हारा है ?"

कपड़ा देखकर पाटीदार ने कहा, "यह मेरे जैसा है अवश्य; पर मेरा नहीं है, महाराज !"

वहाँ से गठरी उठाकर वह पहुँचे अलारसा गाँव। मुखिया से

जाकर पूछा, "यहाँ क्या चोरी हुई है ?"

"हाँ, एक घांची के घर से कपड़े की गठरी चोरी गई है। परन्तु सब चुपचाप छिपाया गया है, क्योंकि इसमें एक पेंच है।"

"क्या मतलब ?"

"मतलब यह कि इस घांची ने रेलवे में से चोरी गई कपड़े की यह गठरी खरीदकर रख ली थी।"

इछला ने सच बात कही थी। यह साबित भी हो गई। गठरी लेकर महाराज लौट आये और इछला को बुलवा भेजा और पूछा, "तुमने अलारसा में कैसे चोरी की, यह बताओ।"

इछला ने अथ से इति तक सारी बातें तोते की तरह सुना दीं :

"हम लोग वासणा गये हुए थे। एक पाटीदार के मुहल्ले में छिपकर बैठे थे। उस घर की औरत रात को पेशाब करने के लिए बाहर आई। उसके गले में से सोने की कंठी निकाल कर हम भागे। लेकिन बहुत शोर-गुल मच गया। हमारे पीछे चार पुलिस के सिपाही दौड़े, हमने सोने की कंठी उनके आगे फैंक दी, और भागे। पुलिस लौट गई। परन्तु हमने विचार किया कि जब बाहर निकले ही हैं तो खाली हाथ घर लौटना ठीक नहीं। अपशकुन होगा। सो अलारसा गाँव में गये। एक घांची का घर आया। अन्दर जाकर देखा तो गठरी उसकी घानी पर पड़ी थी। हम उसे ही उठाकर चल दिये।"

सारी बात साफ-साफ़ बता देनेवाला इछला उन्हें बड़ा भला लगा। महाराज ने वह गठरी इछला को ही सौंप दी और दूसरे दिन पाटण-वाडिया के नेताओं में जाकर बैठे। वहाँ सबने उनसे आग्रह किया कि इस चोरी की बात जो भी कुछ हो, परन्तु इस फूला वावेचा को दबाने की आवश्यकता है। उसने बहुत धांधली मचा रखी है। जबतक उसका धन्धा बन्द नहीं होगा, इस परगने में शान्ति नहीं हो सकती।

(३)

फूला को बुलाया गया। पचास साल की उम्र का फूला नेताओं के सामने आ उपस्थित हुआ। और महाराज के पैर छूने वह आगे बढ़ ही रहा था कि सब नेता बोल उठे, "दूर रहो, दूर रहो। महाराज के पैरों को मत छुओ। दूर रहो तुम।"

जात-भाइयों ने भी उसे इतना हलका माना, यह जानकर वह फूला इन शब्दों को सुनकर चुपचाप दूर खड़ा हो गया। महाराज ने उसके काले-स्याह देह को देखा, उसकी मुखमुद्रा पढ़ी और उसकी ताकत की थाह ली। फूला शान्ति से खड़ा हुआ था।

"फूला वावेचा !" महाराज ने उससे कहा, "और तो कुछ नहीं, पर तुम चोरी करते हो, क्या यह बात ठीक है !"

"मैं कहाँ और कब चोरी करता हूँ ?" फूला ने ठण्डा-सा जवाब दिया।

"कब चोरी करते हो ? उस···गाँव में, उस···के घर की और वह···" इस प्रकार महाराज ने नाम देकर फूला की चोरियां गिनानी शुरू कीं तो फूला बीच में ही बोल उठा :

"परन्तु महाराज, आप मेरे घर कब आये ? और आपने कब मुझे उपदेश दिया है। एक बार मेरे घर पधारो और फिर जो कुछ कहना हो, कहो।" चोर की इस दलील से महाराज चुप हो गए। उनके मन में भारी कुतूहल पैदा हुआ।

दूसरे ही दिन महाराज फूला वावेचा के खेत पर, जहाँ उसका घर था, जा पहुँचे। उसके दो पत्नियाँ थीं। वे पल्लू बिछाकर उनके सामने खड़ी हो गईं। उसके पाँच बेटे थे। वे एक के बाद एक आकर महाराज के परों पर गिर पड़े। वह खुद भी आकर चुपचाप बैठ गया। फिर उसने कहा :

"महाराज, ये दो बड़े लड़के तो भले हैं। इन्हें अगर न भी समझाया जाय तो भी ये नहीं बिगड़ेंगे। ये दो जो छोटे हैं, वे पशु (अर्थात् चोरी की विद्या न जाननेवाले गँवार) हैं। परन्तु यह मंझला है, वह मेरे साथ घूमा है, उसे जो कहना हो कहें, उपदेश देना हो, दें।"

फूला के इन शब्दों से महाराज के मन में कुतूहल पैदा हुआ। उन्होंने भी शान्ति पूर्वक फूला से कहा :

"अरे, फूला, मुझे तो अचरज हो रहा है कि तुमने ऐसा कौन-सा पुण्यकार्य किया है, जिसके कारण तुम्हें ये दो पत्नियाँ, पाँच बेटे, ये बेटों की बहुएं, ये खेत, भैंसें और सब प्रकार का सुख और ठाट-बाट

मिला है ?"

फूला ने ज़रा निःसंकोचभाव से कहा, "मैंने तो महाराज आजतक किसी भी परस्त्री पर बुरी निगाह नहीं डाली और मेरे आँगन में जो आया, उसे रोटी दी है।"

क्षणभर को महाराज स्तब्ध रह गए। पाप-पुण्य का शास्त्र उनके मन में मंथन पैदा कर रहा था। थोड़ी देर बाद उन्होंने कहा :

"फौजदार कहते हैं कि तुमने आजतक दो हज़ार के लगभग चोरियाँ की हैं। क्या यह पाप नहीं ?"

"होगा महाराज।" फूला ने दो हज़ार के अंक पर व्यंग्य करते हुए कहा। "फौजदार ने गिनी होंगी। मैंने तो कभी उनकी गिनती रखी नहीं। परन्तु महाराज, चोरी करना क्या कोई पाप है ?"

"पाप नहीं है ?"

"नहीं महाराज, आप ही विचार कर देखें। आपके पास भी दो आँखें हैं, और मेरे पास भी आँखें हैं, फिर भी आपकी रखी हुई चीज़ आप दिनदहाड़े पूरे प्रकाश में भी नहीं देख सकते हैं और हम उन्हें अँधेरे में देख लेते हैं। यह क्या यों ही होता है। इसके पीछे क्या कोई रहस्य नहीं है ?"

"क्या रहस्य है ?"

"यही रहस्य है कि लक्ष्मी हमें पुकारती है।"

"हैं !" महाराज सतर्क हुए। लगा, मानो कोई तत्त्वालोचना शुरू हुई हो।

"हाँ, महाराज, पराये घर में जोर-जुल्म से इकट्ठी की गई लक्ष्मी हमें पुकारती है, वह बाहर फैलना चाहती है। जब वह पुकारने लगती है, तब दूर बैठे हुए भी हमें उसकी पुकार सुनाई देती है। और तब हमारा मन अन्दर से आवाज़ देने लगता है कि 'फूलिया। उठ, चल !' हम जाकर लक्ष्मी को छुड़ाते हैं और उस बँधी हुई, रुँधी हुई लक्ष्मी को बाहर फैलने का मौका देते हैं, और फैला भी देते हैं। उसमें से कुछ मुखिया को मिलता है, कुछ फौजदार को, कुछ बड़े फौजदार को, और हमारे भाग्य में तो बापू, केवल पैरों से काँटे तोड़ने की मज़दूरी ही बच

रहती है !"

महाराज आश्चर्य से स्थिर होकर फूला की ओर ताक रहे थे। फूला ने आगे बोलना जारी रखा, "सुनिये महाराज, एक दिन रात को मैं उस पार[1] चोरी करने गया।

"एक घर में जाकर बड़ा पिटारा तोड़कर गहनों की गठरी बाँधी। पर इतने में घर की औरत जाग गई। उसके मुँह से चीख निकलने ही वाली थी कि मैंने कमर से छुरा निकालकर उसे दिखाया। उसकी चीख वहीं रुक गई। खड़ी-खड़ी वह चुपचाप देखती रही। उस समय न जाने मुझे क्या हो गया कि मैंने गहनों की पुटलिया छोड़कर उसमें से एक के बाद एक गहना निकालकर उस औरत की छाती पर फेंकना शुरू किया। इस प्रकार सारी पुटलिया खाली कर दी और मैं घर से बाहर निकल आया। मैंने अपने-आपसे कहा, 'फूलिया, सुन, यह लक्ष्मी तो उसी की होगी ! उसने तुझे पुकारा ही नहीं होगा ! तूने गलत सुना, तू घर भूल गया फूलिया।'

"इस प्रकार महाराज हमारे तो पैर ही हमें चेता देते हैं, कह देते हैं। जिसके हक की लक्ष्मी है उसके यहाँ हमारे पैर जाते ही नहीं। ईश्वर ने हमारी सृष्टि तो इसी बुराई को निकालने के लिए की है। जैसे सुनार, लुहार और भंगी की उसने सृष्टि की है, उसी प्रकार हमारी भी उसने सृष्टि की है, फिर भी यदि आप कहते हैं तो मैं चोरी करना छोड़ देता हूँ।"

महाराज कहते हैं कि जब फूला का बोलना बन्द हुआ, मुझे यजुर्वेद के इस मंत्र का स्मरण हो आया :

स्तेनेभ्यो नमः। तस्करेभ्यो नमः। तस्कराणां पतये नमः।

चोरों को नमस्कार हो ! तस्करों को नमस्कार हो। तस्करों के स्वामी को नमन हो।

(४)

फूला वावेचा की स्मृति से स्निग्ध महाराज से यह भी जानकारी मिली कि उसी दिन से फूला ने चोरी करना छोड़ दिया था। पर उसकी

१. मही नदी के उस किनारे पर के किसी गाँव में।

मृत्यु बहुत ही करुण हुई। उसकी पुत्री की शादी बोरसद में की गई थी। जँवाई उसे खूब मारता-पीटता था। एक बार पति की मार से परेशान हो लड़की बाप के घर पर भाग आई। उसके पीछे शराब के नशे में चूर उसका दामाद लड़ने के लिए आ पहुँचा। फूला ने कहा, "मेरी लड़की को तू मारता-पीटता है। जा, नहीं भेजता उसे !"

जँवाई ने कहा, "तुम चाहे अपनी लड़की भंगी को दे देना, परन्तु मेरा लड़का तो मुझे दे दो।"

गाली-गलौज मची। जँवाई ने छुरा मारकर ससुर का खून किया। और बाप का बदला लेने के लिए फूला का मझला लड़का देसला बाहर आया। बाप का चोरी का हुनर उसने अच्छी तरह सीख लिया था। उसने उसी ढंग को अपनाया था।

साले-बहनोई का यह वैर मिटाने का प्रयत्न करते हुए महाराज ने देसला को एक दिन मिलने के लिए अपने यहाँ बुलाया। नवाखल के कोटर में महाराज बैठे हुए थे। देसला आया, शराब के नशे में चूर। कमान पर तीर चढ़ाये हुए। महाराज की ओर ताकता हुआ चला आ रहा है। आँखें लाल सुर्ख हैं, आकर मदोन्मत्त स्वर में बोला :

"क्या है ? कहिये !"

महाराज ने जरा भी विचलित हुए बिना कहा, "अरे देसला, तेरी यह दशा ? तू शराब पीकर मेरे सामने आया है। और तीर-कमान मेरे ऊपर तान रहा है ? दो चाँटे लगाकर यह सब मैं तुझसे छीन सकता हूँ। परन्तु जा, तेरे साथ क्या बात करूँ ? जा, चला जा यहाँ से।"

शेर-चीते-सी अपनी विकराल आँखें नीची करके देसला वहाँ से चला गया। कुछ दिनों बाद जब वह एक लूट में फँस गया और पकड़ा गया, तब भागी हुई भेड़ों के गडरिये की तरह महाराज ने भादरण की जेल की ऊपर की मंजिल में उसे मिलने के लिए बुलाया और पूछा, "क्यों देसला, पहचानता है ?"

देसला ने सिर हिलाकर कहा :

"नहीं !"

"मुझे नहीं पहचानता ?"

"नहीं !"

"हाँ, क्यों पहचानेगा ? उस दिन तेरे घर पर जब तेरे बाप के पास मैं गया था, तब तू कैसा था ? फिर उस दिन नवाखल के कोटर में जब तू मुझे मिलने आया, तब कैसा था ? और आज क्या बन गया है ? आज तो तू बहककर बड़ा डाकू बन गया है ? मुझे कैसे पहचानेगा ? पर यदि तूने मुझे पहले पहचाना होता तो आज तेरी यह दशा नहीं होती ।"

बिना उत्तर दिये ही देसला चुपचाप चला गया । उसे ७०-८० साल की सजा हुई । कुछ दिनों बाद फिर उसे मिलने के लिए महाराज बड़ोदा की बड़ी जेल में गये । मुलाकात होने पर उन्होंने पूछा :

"अरे उस दिन भादरण की जेल में तो तू मुझे पहचानता ही नहीं था ?"

देसला ने कहा, "महाराज, मैंने पहचान तो लिया था, फिर भी, इन्कार कर दिया था ।"

"क्यों ?"

"हम चोर-लुटेरे किसी को भी पहचानने से इन्कार ही करते हैं, नहीं तो वह जोखिम में पड़ जा सकता है ।"

चोरी का तत्त्ववेत्ता फूला वावेचा का लड़का देसला महाराज को अपने मित्र के पुत्र-सा प्यारा लगा । वह उसे बचा न सके, इसी ग्लानि के साथ वह बडोदा की जेल से लौट आये ।

इसके बाद जेल में ही किसी रोग से देसला की मृत्यु हो गई ।

: ११ :

पसीना कहां बहाया था ?

बाबर देवा आदि की लूटपाट के कारण, इन लुटेरों को खेड़ा जिले के लोग ही आश्रय दे रहे हैं, ऐसा उन पर आक्षेप लगाकर जिले की सारी बस्ती पर प्युनिटिव टैक्स लगाया गया था, जो वहां 'हैडिया वेरा'[१] के नाम से प्रसिद्ध है।

इस अन्यायी कर के विरुद्ध कर न देने की लड़ाई शुरू हुई। मही-कांठे का प्रदेश महाराज संभाल रहे थे। रत्ती-भर भी किसी की चीज या मवेशी जब्ती में न चला जाय, इसके लिए वह बहुत ही सावधान रहते थे।

एक दिन कालू गांव में एक गरासिया भाई[२] मिले। उसके कान में सोने की मुंदरी थी। मुंदरी देखकर महाराज ने उस बारैया को टोका। "क्यों हेमता ठाकोर ? कान में यह मुंदरी पहनकर क्यों घूम रहे हो ? जब्तीवाले देखेंगे तो उतरवा लेंगे।"

गरासिया हेमता भाई ने मुस्कराकर जरा शरमाते हुए कहा, "इसके लिए मैंने कोई अपना पसीना थोड़े ही बहाया है।"

"तो यह मुंदरी कहां से आई ? क्या आकाश से बरस पड़ी ?"

उत्तर में उस गरासिया की जीभ पानी की धार-सी चलने लगी। धारिया (एक हथियार) का सहारा लेकर उसने अपने सिर पर का बड़ा-सा साफ़ा ठीक करते हुए बात कहना आरम्भ किया।

"महाराज ! यह बात तो यों हुई कि एक दिन रात को मैं···के घर

१. देखिए पृष्ठ संख्या २२।
२. राजपूतों की एक जाति।

जा पहुंचा। उसने एक प्रसिद्ध बड़े आदमी का, तथा महीकांठे के एक गांव का नाम लिया। वहां वह मकान पर नई मंजिल बना रहे थे। इमारत का काम रुका हुआ देखकर मैंने पूछा, "साहब, बंगला अधूरा क्यों पड़ा है ?"

उन्होंने कहा, "हिमता, तुम ठीक समय पर आये हो। बंगला अधूरा रहा है, वह पूरा करना है। लेकिन रुपया नहीं है। कहो, अभी तुम कहीं गये हो या नहीं ?"

मैंने कहा, "नहीं साहब, अब तो मैं ऐसे कामों पर जाता नहीं हूं।"

इस पर वह अपनी आवाज को थोड़ा गरम करके बोले, "जाना होगा। देखते नहीं हो, मेरा मकान अधूरा पड़ा है ?"

मैं विचार में पड़ गया। इतने में अंदर का द्वार खुला और उसमें से एक बूढ़ा आदमी बाहर निकला। मैंने उसे पहचान लिया। वह निकट के एक गांव का ब्राह्मण था। बाहर आकर मुझसे कहने लगा, "राजपूत हो न ?" मैंने कहा, हूं तो ! और यह कहते-कहते महाराज, मेरे शरीर में भी तेजी आ गई। वह ब्राह्मण कहने लगा, "राजपूत हो तो फिर ऐसा ढीला जवाब क्यों दे रहे हो ?"

मैंने कहा, "अच्छी बात है, तो चलो।" उन्होंने वहाँ रात को मुझे अच्छी तरह जिमाया। उसके बाद गाढ़ा अन्धेरा होने पर वह साहब और वह बूढ़ा ब्राह्मण मुझे मही के तट पर ले गए। एक नाव वहां खड़ी थी, उसमें हम तीनों बैठे। पार जाकर साहब ने मुझे तथा ब्राह्मण को नीचे उतार दिया। ब्राह्मण मुझे गांव में ले गया। एक लवाणा (लुहाणा) का घर आया। घर बन्द था और चारों ओर अंधेरा फैला हुआ था। घर से बाहर एक खाट पर बिछौना बिछा हुआ था, लेकिन उस पर कोई सोया हुआ नहीं था। लुहाणे का चाल-चलन अच्छा नहीं था, इसलिए कहीं बाहर गया हुआ था। ब्राह्मण ने मुझे खाट दिखाई और कहा, "जाओ ठाकोर, उसके सिरहाने पर चाबी है, वह लो और घर खोलो। घर में दरवाज़े के बाईं ओर एक आला है, उसे खोलकर उसमें जो कुछ है, ले लो। उस आले के ऊपर एक बड़ा-सा बक्सा है, उसमें भी जो-कुछ मिले, वह भी ले लो। दूसरी कहीं भी जगह टटोलने की ज़रूरत नहीं। जाओ !"

मुझे तो महाराज ! ब्राह्मण के कहे अनुसार काम कर लेने में हुक्का पीने जितनी ही देर तो लगी। आले में से और बक्से में से जो चीजें मिलीं उनकी पुटलियां बांधकर मैं बाहर निकला और नदी-किनारे चला गया। दियासलाई जलाई। मेरा संकेत देखकर नाव, जो दूर खड़ी थी, नदी के किनारे आ पहुंची; और नाव नदी-किनारे पहुंची भी नहीं थी कि नाव पर से आवाज़ आई, "क्यों शेर है या लोमड़ी ?" यह आवाज़ साहब की थी। मैंने उत्तर दिया, शेर !

इस पर सामने से···साहब ने खुश होकर कहा, "अच्छा, अरे मल्लाह चल ! किनारे पर से हेमता भाई को नाव पर ले आएं।"

मल्लाह ने आकर मुझे ले लिया। नाव पीछे की ओर खेई जाने लगी। नाव में साहब ने मेरे लिए शराब और चबेना तैयार रखा था। मुझे आग्रह करके अपने हाथ से ढेरों शराब पिलाई और चबेना खिलाया। मेरे पास जो पुटलिया थी, उसमें से सब-कुछ उन्होंने ले लिया और मेरी मेहनत के बदले में एक हुक्के पर मढ़ी जाय, उतनी चांदी मुझे दी। परन्तु मैं तो बड़ा पक्का था, महाराज ! मैंने यह मुंदरी पहले से ही अपनी अंटी में चढ़ा ली थी। यही है वह मुंदरी। अब सरकारवाले इसको ले जायंगे तो भी क्या ? इसके लिए मैंने पसीना कहां बहाया था ?

इतना कहकर हेमता वारैया धारिया कंधे पर रखकर मुस्कराता हुआ चला गया।

: १२ :

रोटी तैयार रखना !

(१)

जोशीकुआ गांव की धरती को यदि जीभ होती तो वह चीख़ उठती। मोती बारैया उस धरती का पुत्र था। खेत जोतकर खाता था, परन्तु उसकी पत्नी का दूसरे एक बारैया के साथ प्रेम हो गया। वह दूसरा बारैया जोशीकुआ ग्राम का चौकीदार था।

ख़ैर ! यदि औरत दूसरे से प्रेम करते हुए घर में पड़ी रहती तो मोती इतना बुरा नहीं मानता, परन्तु वह तो उस चौकीदार के घर जा बैठी !

उस दूसरे प्रेमी का घर भी जोशीकुआ ग्राम के किसी दूसरी बस्ती में होता तो वह नज़र से दूर रहती और मोती बारैया उसे भी सहन कर लेता। परन्तु उस चौकीदार का घर भी उसी बस्ती में था, जिसमें मोती रहता था और वह भी मोती के घर के सामने ही।

सामने के उस घर में दोनों जने प्रेम करते रहते तो भी मोती अपने मन को समझा लेता, परन्तु बात बहुत आग़े बढ़ गई थी। बिन घरनी-वाले अपने घर से मोती अपने खेत पर जाता और खेत से सीधा लौटकर अपनी रोटी अपने हाथ से पकाकर खाता था। परन्तु यह भी चौकीदार सहन न कर सका। सरकार का सत्ताधारी जो था ! वह मोती को रोज डराता-धमकाता रहता था। चौकीदार की धमकी को भी मोती सहन कर लेता, पर चौकीदार उसे जो डराता-धमकाता था, उसमें उसकी औरत भी उसका साथ देती थी। इससे मोती का हृदय बहुत खिन्न होता था, उसे बहुत बुरा लगता था। जो कसर बाकी बची थी, वह इस

प्रकार पूरी हुई कि उस चौकीदार ने मोती का नाम हाजिरी में दाखिल करा दिया; और अपने इस पराक्रम पर वह अपनी मूंछों पर ताव देकर घूमता रहता था।

इस दशा में मोती को अकेले रहना अच्छा नहीं लगता था। उसका जी अंदर-ही-अंदर घुट रहा था और खेत के काम को भी वह अकेला पूरा नहीं कर पाता था। उसने फिर से शादी कर ली। उसके नये संसार को भी उस चौकीदार तथा उसकी पहली औरत ने सामने के घर में बैठकर परेशान करना शुरू कर दिया।

एक दिन ठीक दोपहर की वेला में मोती अपना खेत जोतकर घर लौटा। साथ में दो मूली भी लाया था। उन्हें औरत को देकर उसने कहा, "मुझे बड़ी भूख लगी है। तू रोटी बना दे। मैं तो मूली के साथ खा लूंगा।"

"हां, बैठो। अभी बनाये देती हूं।"

यह कहकर उसकी पत्नी चूल्हा जलाकर और तवा चढ़ाकर आटा गूंथने बैठी। और भूखा मोती चूल्हे की ओर मुंह किये बैठा ताक रहा था। इसी समय गांव का एक किसान दौड़ता हुआ आया और कहने लगा, "मोती, ओ मोती भाई, तू घर पर ही है न ?"

"हां, क्यों, क्या है भाई ?" कहता हुआ मोती ओसारे में पहुंचा। उससे भूख सहन नहीं हो रही थी। आनेवाला उसे ज़हर-सा कड़ुवा लगा।

"उठ भाई, झट उठ, और चल ! मेरी भैंसें भाग गई हैं, मेरी पकड़ में नहीं आ रही हैं और अब मैं उनतक पहुंच भी नहीं सकूंगा। वे तो जोरों से भागी जा रही हैं। तू जो उन्हें नहीं लौटा लायगा तो वे चली जायंगी। किसी के हाथ में पड़ जायंगी। मेरा सत्यानाश हो जायगा। तू जल्दी से दौड़ जा।"

"पर···भाई," मोती खीजकर बोला, "भूख के मारे मैं बेहाल हो रहा हूं। मैं बिना कुछ खाये-पीये नहीं जा सकूंगा।"

"ऐसा भी कहीं होता है, मोती !" किसान को मोती की भूख की कोई कल्पना नहीं थी। वह बहुत उतावली करने लगा, "मोती भइया, तू चला जा, नहीं तो मेरी भैंसें एकदम हाथ से ही कहीं निकल न जायं !"

मोती उठा, उसने भाला हाथ में लिया। पत्नी से कहा, "तू रोटी बनाकर तैयार रख, मैं अभी आता हूं।"

"हां, जाओ, पर जल्दी आना।"

भूखा मोती भाला लेकर दौड़ता हुआ गांव के बाहर भैंसों के पीछे जाने लगा। सामने से दो आदमी गांव की ओर आते हुए दिखाई दिये। मोती दौड़ता जा रहा था। उसे उन लोगों को जानने-पहचानने का अवकाश नहीं था, उनसे मिलने का भी उसे कोई उत्साह नहीं था, उत्सुकता भी नहीं थी। वह तो भैंसों के ध्यान में दौड़ता चला जा रहा था ! पर सामने आते हुए दो आदमियों में से एक के मुंह से गालियां निकलती हुई उसने सुनीं। गालियां उसके मुंह से एक के बाद एक निकलती चली जा रही थीं। और वह भी ऐसी-वैसी गालियां नहीं, गंदी-से-गंदी गालियां वह दे रहा था।

तीव्र क्षुधाग्नि की भी परवा न करनेवाले मोती के पैरों की गति इन गालियों को सुनकर धीमी पड़ी। गालियां देनेवाला सरकारी सत्ता का प्रतिनिधि मोती की पहली पत्नी का यार, वह चौकीदार था, जो शराब के नशे में चूर था।

भूख की आग में वैर के घी की आहुति पड़ी और आजतक मोती ने जो समता कायम रखी थी, वह टूट गई। एक ही झपाटे में मोती ने दौड़कर चौकीदार की छाती में अपना भाला घुसेड़ दिया।

चौकीदार की नीचे गिरी हुई देह के पास मोती थोड़ी देर तक खड़ा हुआ देखता रहा। गजब हो गया ! रोटी नहीं खाई, पत्नी राह देख रही होगी। कैसी मीठी-मीठी मूलियां ले आया था। क्या पता था कि सामने से यह चौकीदार चला आ रहा है। मुआ, न जाने कहां जाकर शराब ढाल आया ! शराब न पी होती तब भी वह गालियां तो देता ही, परन्तु मेरे हाथ में भाला देखकर वह कुछ मर्यादा में रहता, और आखिर कुछ न करता तो भाग तो जाता ही। पर, यह तो बहुत बुरा हुआ ! बस, उसके लिए अब और कोई दूसरा मार्ग नहीं बचा था। वह भाग गया।

घर पर चूल्हे में आग अच्छी तरह जल उठी थी। पत्नी ने एक रोटी बेलकर तवे पर डाल भी दी थी और दूसरी रोटी का आटा मसल रही

थी। उसी समय गांव बाहर हुई इस घटना का समाचार किसी ने उसे दिया। वह जिस स्थिति में थी उसी स्थिति में उठ खड़ी हुई और घर पर सांकल चढ़ाकर भागी। आटे सने हाथ धोने को भी वह नहीं रुकी।

पुलिस ने आकर जब घर खोलकर देखा तो उस समय रोटी चूल्हे पर तवे में पड़ी थी और मूलियां कुम्हलाई हुई पड़ी थीं। रोटी तथा मूली के टुकड़े वहीं पड़े हुए थे, क्योंकि उनके पैर नहीं थे। वे मोती बारैया की भूख की परस्पर चर्चा करते हुए मानो पुलिस को देखकर चुप हो गए हों!

(२)

बारह-तेरह दिन बाद वडोदा स्टेशन पर रविशंकर महाराज ट्रेन के आने की राह देख रहे थे। ट्रेन आई और अंदर से एक पुलिस अधिकारी नीचे उतरे। महाराज ने उनसे राम-राम कहकर पूछा, "क्यों? आप उसे अबतक पकड़ते क्यों नहीं हैं?"

"किसको?"

"चौकीदार का खून करनेवाले जोशीकुआवाले को?"

"कैसे और कहाँ पकड़ें? वह मिलता कहाँ है?"

"इसे पहचानते हो?" महाराज ने अपने साथ के एक आदमी की ओर इशारा करके पूछा।

"नहीं।"

"वही है, जो आपको मिल नहीं रहा है।"

पुलिस-अधिकारी का मुंह आश्चर्य से खुला-का-खुला रह गया। भागकर गायब हो जानेवाला, बारह दिन हुए पकड़ा न जानेवाला, सारे पुलिस-विभाग को धोखा देनेवाला, भुलावे में डालनेवाला, दिन-दहाड़े, भर दुपहरी में खून करनेवाला, बिना हथकड़ी और चौकी-पहरे के बिना, अपने सामने शांति से खड़ा था। निस्तेज चेहरे से अधिकारी ने पूछा, "कहाँ मिला यह?"

"मैंने नहीं ढूंढ़ा, वह स्वयं ही मुझे ढूंढ़ता हुआ मेरे पास आया है।" महाराज ने कहा।

"कहाँ?"

"जोशीकुआ में जो नया मोहल्ला बसाया गया है, वहाँ मेरे ठहरने के स्थान पर। मैंने कहा, 'चलो बड़ोदा, वहाँ तुम्हें पुलिस को सौंप दूंगा।' उसने मंज़ूर किया। रात में ही हम वहाँ से चल दिये। मही-पार उतरकर हम आये। आप घर पर नहीं थे इसलिए स्टेशन पर उसे सौंप देने के लिए आपके पास आये हैं।"

"तो अब ?"

"अब वापस पेटलाद चलें, वहीं उसे सुपुर्द करूंगा, यहाँ नहीं।"

"अच्छा, चलो।"

बड़े पुलिस-अधिकारी ने पेटलाद लेजाकर मोती को भरपेट खाना खिलाया। फिर महाराज आखिरी बार मोती से मिले। मोती ने कहा :

"हाँ, महाराज, वकील करके अपना बचाव करूँ तो कैसा रहेगा ?"

"तेरे सामने दोनों रास्ते खुले हुए हैं, मोती ! एक मेरा और दूसरा वकील का। मेरा रास्ता अपराध स्वीकार करने का है। इस रास्ते से तू एकदम तो छूट नहीं जायगा। एक-दो, पाँच वर्ष या आजन्म कैद की भी सजा हो सकती है। पर फाँसी की सजा नहीं होगी। वकील के रास्ते से या तो फाँसी की सजा होगी, या बिलकुल निर्दोष होकर छूट भी सकता है। तुम जो ठीक समझो, वह रास्ता ले सकते हो।"

यह कहकर महाराज चले गए। "मोती का मारिये-पीटियेगा नहीं।" वह पुलिस-अधिकारी को इतना कहकर चले गए।

मोती ने वकील का मार्ग पसन्द किया और इस मार्ग से उसे केवल डेढ़ साल की कैद की सजा हुई। बचाव इस प्रकार पेश किया था कि चौकीदार जहाँ खड़ा था, वहाँ एक टीला था। मोती उसके नीचे खड़ा था। चौकीदार मोती पर आक्रमण करने दौड़ा, उस समय अपनी रक्षा के लिए मोती ने अपना भाला जो आगे कर रखा था, वह चौकीदार की छाती में घुस गया।

मोती आज जीवित है। मोती ने वकील का मार्ग ग्रहण किया, इसका महाराज को कोई दुःख नहीं। मोती बच गया इस बात से उन्हें प्रसन्नता है। महाराज के वर्णन में बार-बार एक चित्र उभरता रहता है।

पुलिस ने आकर घर में देखा तो चूल्हे पर तवे में रोटी ज्यों-की-त्यों पड़ी हुयी है और दो मूलियाँ कुम्हलायी हुई पड़ी हैं।

: १३ :

बाबरिया का बाप

चरोतर के पाटणवाडियों के सगे-सम्बन्धी मही के उस पार सांपरा गाँव में रहते थे। उन्होंने चरोतरवालों को सन्देशा भेजा :

"महाराज, क्या हमारे गाँव नहीं आयेंगे ?"

"क्यों नहीं आयेंगे ?" यह वापसी सन्देशा भेजकर चरोतरवाले एक बार महाराज को सांपरा ले गए। सांपरावालों ने उनसे अपने दिल की बात कही, हमारे गाँव में हाजिरी रखी गई है, उसे किसी प्रकार आप समाप्त करा दें।

महाराज वहाँ महीजी नाम के एक पाटणवाडिया के घर ठहरे थे। थोड़ी देर वहाँ बैठकर और इधर-उधर की बातें करके महाराज वहाँ से चले आए। बाद में उन्होंने सांपरा तथा उसके पास के दूसरे दो गाँवों की हाजिरी बन्द करवा दी। कुछ दिनों बाद फिर एक बार वह मही-पार सांपरा गये। महाराज से मिलने के लिए महीजी की पत्नी बाहर आई। उस समय उसके सारे रंगढंग बदल गए थे। उसके चेहरे पर एक अपूर्व कांति थी। उसने महाराज का चरणस्पर्श करके कहा, "महाराज, आपका चेला अब सुधर गया है।" इतना कहकर वह घर के भीतर शरम के मारे छिपे हुए महीजी को बाहर ले आई।

महीजी ने अभी उनके पैर छुए ही थे कि महाराज ने उससे पूछा, "क्या यह सच कह रही है ?"

महीजी कहने लगा, "हाँ महाराज, अभीतक मैं जानवर बना हुआ था। पर अब पूछो इसीसे।"

"अच्छा किया, महीजी !"

पत्नी कहने लगी, "अब अपने चेले को कुछ दो महाराज !"

"क्या दूं ?"

"इसे कुछ सीख दो।"

थोड़ी देर में महाराज की समझ में आया कि ये लोग उनको कोई चमत्कारी पुरुष मानते हैं। किसी प्रकार के सिद्धि-मन्त्र की आशा वे करते हैं। वह बोले, "मैं क्या दे सकता हूं ? मेरे पास कोई सिद्धि या मन्त्र थोड़े ही पड़ा है ?"

"नहीं महाराज", महीजी की औरत ने हठ करके कहा, "आपको देना ही होगा। आप प्रतापी पुरुष हैं। जो भी देना चाहें, दे सकते हैं।"

बहुत आग्रह किये जाने पर महाराज ने अन्त में अपनी एक माला निकालकर दी और कहा, "यह ले, मेरे गुरुजी की दी हुई है। तू नहा-धोकर घी का दिया जलाकर यह माला फेरना और रामनाम लेना। यह पतित-पावन है।"

इसके डेढ़-दो साल बाद जब महाराज सांपरा गये तब महीजी के घर रहे। महीजी की पत्नी के कपड़ों की तड़क-भड़क और उसके मुंह पर की चमक-दमक बढ़ गई थी। उसने ओसारे में खाट डाल दी। महाराज के बैठने पर उनसे कहा, "बावरिया के बापू अभी आते हैं।"

ओसारे में बैठे-बैठे घर के द्वार में से दृष्टि घरके पीछे के आँगन में पहुँच जाती थी। वहाँ उन्हें आँगन के पीछे बाड़ के पास कुछ औरतों के कपड़े दिखाई दिये। मुँह तो उनके दिखाई देते नहीं थे, पर महीजी बाड़ के पास जाकर कुछ पुटलियां-सी उनसे लेता और थोड़ी देर बाद वह पुटलिया वापस देता था, ऐसा कुछ आभास उन्हें मिला। उन्हें आश्चर्य हुआ। उनमें क्या हो सकता है ? महीजी इतनी देर से वहाँ क्या कर रहा होगा ? वह आ क्यों नहीं रहा है ?

बहुत देर के बाद महीजी आया। वह आनन्द में था। उसके बाद जब महाराज नहाने के लिए पिछवाड़े आँगन में गये तो वहाँ असंख्य मक्खियाँ भिनभिनाती हुई दिखाई दीं और एक कोने में बदबूदार मिठाई के लड्डू देखे। नहाकर महाराज जब आये और निश्चित बैठे, तब महीजी ने बात करना आरम्भ किया।

"अब तो बापू, आपके प्रताप से हमारे यहाँ बड़ी मौज है। कुत्ते का काम नहीं करना पड़ता। आपकी दी हुई माला मुझे बहुत फली है।"

"ऐसी क्या बात है?"

"अब तो व्यापार कर रहा हूँ।"

"किस चीज का?"

"लड्डुओं का। सब ठीक चल रहा है। बापू, दो रुपया रोज पड़ जाता है। आपके प्रताप से अब तो मौज कर रहे हैं मौज!"

"लड्डुओं का व्यापार! लड्डू लेते कौन हैं?"

"बहुतेरे ले जाते हैं। पुरुष चोरी का माल लेकर आते हैं। बच्चे खेत से चोरी करके लाते हैं और मुझको देते हैं। औरतें भी लेने के लिए आती हैं।"

"तुम बिक्री कहाँ करते हो? क्या कहीं दूकान लगाई है?"

"नहीं, महाराज, दूकान तो अकेली चल नहीं सकती। यहाँ पीछे के आँगन में ही बेचता हूँ।"

"पीछे के आँगन में औरतें किस प्रकार लेने आती हैं?"

"पीछे की बाड़ पर से आकर ले लेती हैं। गांव बाहर जब कुएँ से पानी भरने वे जाती हैं, तब बाड़ पर से अनाज की पुटलिया मुझे पकड़ा देती हैं और मैं उन्हें उसी (पुटलिया) में लड्डू बाँधकर दे देता हूँ।"

"अच्छा, यह बात है!"

इतना ही कहकर महाराज रुक गए। उन्हें दुःख तो बहुत हुआ, पर बड़ी मुश्किल से चोरी छोड़कर धंधे से लगे हुए महीजी को वह क्या कहते। एक दुपहरी वहाँ रहकर और खिचड़ी बना-खाकर स्टेशन पर वापस जाने के लिए वह तैयार हुए।

"बावरिया के बापू!" महीजी की पत्नी ने कहा, "तुम भी साथ में जाओ और महाराज को 'टिकस' निकलवा दो।"

"हाँ, जा रहा हूँ। चलिये, महाराज!"

"तुम क्यों टिकट दिलवाओगे, महीजी? मैं अपने-आप ही ले लूंगा।" यह कहकर महाराज चुपचाप बाहर जाने लगे।

"मेरा कारबार अब अच्छा चल रहा है।" यह कहता हुआ महीजी

भी महाराज के साथ चलने लगा।

"नहीं, तुम लौट जाओ।"

"लेकिन मुझे स्टेशन पर कुछ काम है।"

"क्या ?"

"लड्डू लेने हैं ?"

इसके बाद लड्डूओं के बारे में बात चल पड़ी। महाराज ने पूछा :

"हाँ, महीजी, लड्डू लेने कौन आते हैं ?"

"सब पुरुष, स्त्रियाँ और बच्चे भी।"

"वे क्या घर पर जाकर खाते हैं ?"

"नहीं, बाड़ के पीछे चुपचाप चोरी से वहीं खा लेते हैं।"

"घर ले जाकर वे किसीको भी नहीं देते ?"

"नहीं, जी नहीं, अपने बच्चों को भी नहीं।"

"इसका क्या कारण ?"

"कारण आप नहीं समझे ? क्योंकि वे अनाज घर में से चोरी करके पुटलिया में बाँध लाती हैं।"

"हाँ, महीजी," महाराज ने थोड़ा रुककर, जैसे गले में लकड़ी जैसा कुछ अटका था, उसे निगलने का प्रयत्न करते हुए पूछा, "यदि तेरी औरत ऐसा करे तो ?"

"कैसे करेगी ?"

"घर में से अनाज चोरी करके ले जाय और उसके लड्डू लेकर तुझे तथा अपने बाबरिया को छोड़कर खाय तो ?"

"तो उसका लाठी से मार-मार कर कचूमर न निकाल दूंगा।" यह कहते हुए महीजी ने हाथ में पकड़ी लाठी ऊँची उठाई।

"और यदि बाबरिया ऐसा करे तो ?"

"तो उसका भी कचूमर निकाल दूंगा।"

"और ये गाँव की स्त्रियाँ ले जाती हैं, उन्हें क्या करोगे !"

"वे तो अपनी आप समझकर लेने आती हैं।"

"बड़ा पाप लग रहा है, महीजी, तुझे बड़ा पाप लग रहा है। यह बदबूदार सड़ी हुई मिठाई ! उसे भी गाँव के लोग चुरा-छिपाकर खाते

हैं। स्त्री पति को छोड़कर खाती है और माँ अपने पेट के बच्चों से छुपाकर खाती हैं ? महीजी, इससे तो पृथ्वी रसातल को चली जायगी ! इस पाप से बड़ा अनिष्ट होता है।"

महाराज का कलेजा मानो बिलोया जा रहा था। उनके मन में विचार आया कि इससे तो महीजी का चोर बना रहना ही अच्छा था। महीजी ने कहा :

"तो मैं यह काम बन्द कर दूंगा, पर इससे उसमें कुछ भी फरक होनेवाला नहीं है।"

"क्यों ?"

"एक लवाणा और एक पाटीदार भी गाँव में इसी प्रकार मिठाई बेचते हैं।"

महाराज को महीजी की बात जँची। और उनके मन में प्रश्न उठा—गाँव में पहले-पहल ऐसा भ्रष्टाचार किसने दाखिल किया होगा ? और यह सार्वजनिक अनीति कैसे चल रही है ? व्यक्ति मात्र अपनी ही फिक्र करता है और इस वृत्ति की प्रबलता के कारण ही तो ऐसा चल रहा है ? सार्वजनिक अनीति का कोई विरोध नहीं करता, न उसे रोकने का प्रयत्न करता है, क्योंकि सब व्यक्ति अपनी-अपनी दृष्टि से ही विचार करते हैं कि "जाने भी दो। भैंस के सींग भैंस को ही भारी हैं। हम इस झमेले में क्यों पड़ें ?"

स्वार्थ भी कितना भयंकर होता है ! इस प्रकार दुःखी मन लेकर वह रेल में बैठ गए।

: १४ :

शनिया का बेटा

महीकांठा के रास गाँव में महाराज को एक बार यह समाचार मिला कि शनिया का लड़का पागल कुत्ते के काटने से बड़ी लम्बी बीमारी में पड़ा है और काटने की जगह का घाव पककर बदबू देने लगा है।

शनिया के घर जाकर महाराज ने देखा कि वह छोटा बालक एक फटी गुदड़ी पर पड़ा है और उसका घाव सड़ गया है। उसके पास कोई जा नहीं सकता है; क्योंकि उसके सड़े हुए घाव से असह्य बदबू आ रही है।

महाराज ने लड़के के बाप से कहा, "शनिया चल, इसे आणंद अस्पताल में ले चलें।"

"बापू, मैं कैसे चल सकता हूँ!"

"क्यों? क्या बात है?"

"बच्चे अनाज के बिना मर जायंगे। खेत में जानेवाला कोई नहीं है।"

"तेरी घरवाली है न?"

"वह तो जचकी में है!"

इसका यह अर्थ था कि शनिया स्त्री और दूसरे बच्चों की रक्षा के लिए मजदूरी करता रहेगा, और लड़के का रोग से सड़ा हुआ हाड़-पिंजर धीरे-धीरे अन्तिम श्वास छोड़कर खत्म हो जाय, तब जाकर उसे छुट्टी मिले। महाराज ने कहा, "तुम्हें अनाज दिलवा दूं, तब तो तुम चलोगे?"

"चलूंगा।"

आधा मन धान खरीदकर महाराज ने शनिया के घर भिजवा दिया

और फिर लड़के के बदबूदार शरीर को जैसे-तैसे रेल में चढ़ाया। दूसरे मुसाफिर वहाँ से हट गए। बदबू ऐसी थी कि जीवित नरक का आभास करा रही थी।

चलती हुई गाड़ी में महाराज लड़के पर से मक्खियां उड़ाते हुए उसे अकेले ही सम्भाल रहे थे। लड़के पर बाप का ध्यान नहीं था। रास गाँव की सरहद पर से ही रेल जाती है। स्टेशन भी है। पर जन्म-धारण करने के बाद शनिया कभी किसी दिन भी रेल-गाड़ी में नहीं बैठा था। रेल में बैठने का उसका यह पहला ही मौक़ा था। इसलिए आनन्द उसमें समा नहीं रहा था। खिड़की में से पेड़ों को पीछे दौड़ते हुए देखकर वह छोटे बालक की तरह दाँत निकाल रहा था, प्रसन्न हो रहा था। एक बार तो महाराज ने उसको उलहना भी दिया कि "तू इसकी मक्खियाँ तो उड़ा", परन्तु शनिया उस समय पिता नहीं था, पति नहीं था, कुटुंब की रोटी कमानेवाला भी नहीं था। वह बालक बन गया था, उसने अपने जीवन के एक प्रकार से अनियमित निष्प्राण-संग्राम में आज पहली बार ही रोमांच का अनुभव किया था।

आणंद पर वे उतर गये। लड़के को उठाया। झोली का अगला सिरा शनिया से उठवाया, पिछला महाराज ने उठाया। शनिया बोझ नहीं सम्भाल पा रहा था। महाराज ने उससे कहा कि सम्भाल कर उठाओ। शनिया ने जवाब दिया:

"इस मरे में बोझा बहुत है!"

इस वाक्य को सुनकर महाराज मौन हो रहे।

आणंद के अस्पताल में बताया गया कि वहाँ रोज का एक रुपया लगेगा। यह सुनकर महाराज ने रोगी को फिर झोली में डालकर उठाया और स्टेशन पर पहुँचा दिया। वह स्वयं बैठे-बैठे उस पर से अपनी पिछोड़ी से मक्खियाँ उड़ा रहे थे। शनिया कुछ समझ नहीं रहा था। वह महाराज के पास चुपचाप बैठा था। गाड़ी आने में अभी देरी थी। उनसे थोड़ी दूरी पर एक सफेद कपड़ेवाले अनजाने भाई खड़े-खड़े यह देख रहे थे, और आश्चर्य कर रहे थे कि इस नीच कौम के बालक को यह ब्राह्मण-जैसे दीखनेवाले भाई क्यों हवा डुला रहे हैं? इतने में गाड़ी

आ पहुँची। महाराज ने झोली उठाकर गाड़ी में रखी कि वह भाई, जो यह सब देख रहे थे, दौड़ते हुए आ पहुँचे और पूछने लगे, "आप कौन हैं और यह लड़का किसका है?" महाराज ने सारा क़िस्सा कह सुनाया। उस आदमी ने उसी समय अपनी जेब में हाथ डालकर नक़द और रेज़गी सब मिलाकर तीन-चार रुपये महाराज के हाथ पर धर दिये। महाराज ने बहुत मना किया, पर वह भाई न माने। उन्होंने आग्रह करके रुपये दिये और उनका उपयोग उस लड़के के लिए करने का अनुरोध करते हुए चले गए।

शनिया को अपने लड़के में कोई विशेष दिलचस्पी नहीं थी। वह तो साथ में आया था, क्योंकि महाराज से वह इन्कार नहीं कर सकता था। उनके साथ वह बड़ोदा जा रहा था। महाराज के डर से वह गाड़ी की खिड़की से बाहर पेड़ों के दौड़ने का तमाशा उनकी निगाह चुरा कर देख लेता था और बीच-बीच में लड़के की मक्खियाँ उड़ाने का दिखावा भी करता जाता था।

गाड़ी का वेग उसे आनन्द दे रहा था, अन्दर मृतप्राय लड़का भले ही क्यों न पड़ा हो! रेल के पहियों पर विहार करने की यह मौज भी अनोखी थी। रोज-बरोज का निष्प्राण जीवन मानो हवा पर सवारी कर रहा था। शनिया मन-ही-मन थिरक रहा था।

बड़ोदा के बड़े अस्पताल में डॉक्टर ने लड़के की जाँच करके महाराज से कहा, "यदि यह आज की रात निकाल लगा तो सम्भव है बच जाय, परन्तु आज की रात निकालना सम्भव नहीं। ज़हर खून में फैल गया है।"

शनिया को तो इसका कुछ भी खयाल नहीं था। उसे इन सब बातों की परवा भी नहीं थी। उसे इन सब बातों का कुछ भी ज्ञान या समझ ही न थी। उसे तो घर में पड़ी हुई ज़च्चा और आधे मन धान के भरोसे छोड़े हुए बालकों की कभी-कभी याद आ जाती थी।

लड़के ने रात निकाल दी। डॉक्टर ने कहा, "अब कोई डर नहीं है।" महाराज ने शनिया से कहा, "शनिया, तू अब घर चला जा। तेरी जोत का समय है, जा। मैं यहाँ रहूँगा। ठीक होने पर लड़के को लेकर आ जाऊँगा।"

शनिया उठ खड़ा हुआ। उसे रेल में चढ़ाने के लिए महाराज उसके साथ गये। लड़के से कुछ भी कहे बिना, अच्छी तरह उसकी ओर देखे बिना ही वह अस्पताल के कमरे से बाहर निकलने लगा।

परन्तु दरवाजे से बाहर जाकर यकायक वह खड़ा हो गया और पीछे घूमकर लड़के की खाट की ओर देखने लगा।

"क्यों रे!" महाराज ने पूछा, "वहाँ खड़ा क्यों है अब?"

शनिया शरमा कर मुस्कराया और फिर बड़ी कठिनाई से बोला:

"जाने का मन नहीं हो रहा है बापू!"

"क्यों?"

"दादा, यह लड़का है न! मेरे सब लड़कों से ज्यादा समझदार है।"

"कैसे?"

"दादा, बात ऐसी है कि जब घर में अनाज नहीं होता उस दिन सब बच्चे तो खाना न मिलने के कारण रो-रोकर परेशान कर देते हैं। पर यह भूखा ही चुपचाप पड़ा रहता है। कुछ भी शोर नहीं मचाता। हाँ, दादा, खाने को कुछ भी न हो तब भी वह रोता नहीं। इसलिए यह मुझे ज्यादा समझदार दिखाई देता है और इसी कारण आज मेरा जी जाने को नहीं हो रहा है।" इतना कहकर फिर से मुस्कराकर शनिया खड़ा हो गया। फिर कहीं कोई अनुचित बात वह कह न बैठा हो, यह खयाल आते ही लजाता हुआ स्टेशन की ओर मुड़ गया।

बीस दिन बाद लड़के को लेकर महाराज लौट आये। रास्ते में उन्होंने कहा, "तू मेरे साथ रहेगा। मैं तुझे पेट-भर खिलाऊँगा, पिलाऊँगा और पढ़ाऊँगा।"

लड़के ने कहा, "अच्छा।"

गाँव पहुँचते ही लड़का महाराज के पास से दौड़कर अपने बाप से चिपट गया और अपने घर के अन्दर घुस गया।

उसे पेट-भर खाने-पीने और पढ़ने की अपेक्षा अपने बाप के पास अन्न न हो, उस दिन समझदार बनकर रहना और खाने के लिए क्लेश न करना ही अधिक पसन्द था।

महाराज ने कहा, "शनिया ! तू अपना लड़का मुझे सौंप दे, उसकी सार-सम्भाल मैं करूँगा।"

"दादा, वह नहीं जायगा। इसके बदले में उसे किसी पाटीदार के यहाँ नौकरी पर लगा दो न, जिससे वह कमाने लगे।"

कंगालियत की यह कथा महाराज को अपने पेट में पचानी पड़ी।

: १५ :

बहुत, बहुत दूर देखता हूं

महाराज यह घटना अक्सर लोगों को सुनाते हैं।

पाँच कच्चे मकान एक साथ बने हुए थे। बीच में पक्का बना हुआ एक मन्दिर था। उसके पास एक घास की झोंपड़ी थी।

व्यारा गाँव से दस-बारह मील चलकर जब हम उस रानीपरज क्षेत्र के घाटा गांव में पहुंचे तो उस समय दुपहरी हो गई थी।

मेरे साथ के रानीपरज-मार्गदर्शक ने उन पाँच घरों का मन्दिर-वाला गांव दिखाकर कहा, "यहीं पर भगत रहते हैं।"

मैंने वहाँ जाकर पूछा, "भगत कहां हैं ?"

उत्तर मिला, "वह तो खेत पर गये हुए हैं।"

खेत नजदीक ही थे। वहाँ पहुंचे। मोट चल रहा था और एक मनुष्य वहीं लकड़ी पर दोनों हाथ टिकाये खड़ा था।

वह बस एक अंगोछा पहने हुए था। बिलकुल सूखा हुआ शरीर, काजल-सा काला वर्ण, बिना दातों का मुंह और बहुत ही वृद्ध।

साथी ने पहचान कराई, "आप ही हैं भगत।"

"आप ही हैं भगत !" मुझे आश्चर्य हुआ। १९११ में इटोला में 'आर्य-धर्म-परिषद्' की बैठक में जब स्वामी नित्यानन्दजी गुरुकुल के लिए चन्दा इकट्ठा कर रहे थे तब एक भाई ने उठकर कहा था कि लिख लीजिये मेरी ओर से प्रति वर्ष १२५ मन धान। उस समय मैंने आश्चर्यचकित होकर पूछा था, "कौन है यह ?" तब मुझे यह जानकारी मिली थी कि यह भाई व्यारा तालुका के शुद्ध आदिवासी-ग्रामीण हैं, नाम उनका अमरसिंह है, बाप भगत हैं और उनके घर पर अन्न-छत्र चलता है।"

उसके बाद १९२९ में शराबबन्दी के आन्दोलन में व्यारा तालुके में हम घूम रहे थे। डोसवाड़ा गांव में सभा रखी गई थी। उसमें रेशमी साफ़ावाले एक सुंदर युवक ने बहुत अच्छा भाषण दिया था। मैंने पूछा कि यह कौन है ? जानकारी मिली कि "यह एक रानीपरज का विद्यार्थी है, और हमारे यहां एक भगत हैं, उनके पौत्र हैं। उनके घर अन्न-छत्र चलता है।"

तभी से भगत के दर्शनों की इच्छा थी। उस दिन जाकर उनके दर्शन किये। काजल-सी काली और अत्यंत सूखी देह, एक अंगोछा-भर वस्त्र, पोपला मुंह, लकड़ी पर हाथ टिकाकर झुका हुआ शरीर।

मैंने नमस्कार किया। उन्होंने भी उत्तर में नमस्कार किया। उनका मुंह हँसता ही रहता था। मुंह पर से एक क्षण के लिए भी हास्य दूर नहीं होता था।

कुशल-मंगल के बाद परिचय बढ़ने पर मैंने पूछा :

"भगत, क्या उम्र होगी ?"

"उम्र ?" हँसते हुए उस श्यामल सूखे और पोपले मुंह से उत्तर मिला, "उम्र की बात तो किसे मालूम ! पर, मैं बहुत लम्बा, बहुत दूर देख रहा हूं। अंग्रेज़ सरकार का राज्य नहीं था, तब से मैं हूं। चलो, घर चलें।"

चलते-चलते मैंने पूछा, "शराब पीते हो ?"

"नहीं, पर जब आपके जैसा मैं जवान था तब पीता था।" और उनके मुंह पर हास्य तो बिखरा ही रहा।

"तुम्हारे पिता पीते थे ?"

"हां, वह पीते थे। पर बाद में उन्होंने पीना छोड़ दिया था। एक साधु के कहने से उन्होंने उसे तिलांजलि दे दी। पर मुझसे वह कहते, 'बेटा, शराब बहुत बुरी है, नहीं पीनी चाहिए। पर तुम पीना।' बापू ने पीने के लिए कहा, इसलिए मैंने भी उसे छोड़ दिया।"

"बापू ने पीने को क्यों कहा ?" मैंने आश्चर्य से पूछा।

भगत ने कहा :

"उन्होंने इसलिए कहा, कि मैं उनका इकलौता बेटा था। मैं पीना

छोड़ दूं तो उन्हें यह अच्छा नहीं लगता था। पर इसी वजह से मैंने पीना भी छोड़ दिया।"

मनुष्य की निगूढ़, निर्मल और सरल गति पर मैं विचार कर रहा था कि इतने में घर आ गया और भगत ने अपनी सतत मुस्कराहट के साथ मुझसे कहा, "यह हमारा घर है। डाकोर से नासिक जानेवालों का विश्राम-स्थल। झुंड-के-झुंड लोग इस मार्ग से आते-जाते हैं। मेरे बापू तो नहीं, पर मेरी मां उन सबको आटा या चावल देती थी। इस झगड़े में मेरे बापू कभी पड़े नहीं—कौन आया और कौन खा-पीकर चला गया। उससे उन्हें कोई सरोकार ही नहीं था।

फिर हँसते हुए उनका पोपला मुंह कहने लगा, "एक बार मेरे पिता को तांबे का एक पैसा मिला। जन्म लेने के बाद उन्होंने कभी पैसा नहीं देखा था, इसलिए उनके आश्चर्य का ठिकाना न था। उसे हाथ में लेकर वह घूमते रहते थे। इतने में एक साधु वहां आ पहुंचे। बापू ने उस पैसे का क्या करना, इस दुविधा से मुक्त होने के विचार से वह पैसा साधु को दे दिया। और साधु ने हमारे एक छप्पर की ओर हाथ बढ़ाकर उस पर से सूखे घास की एक चुटकी उठाकर बापू से कहा, "बेटा, शराब न पीना, तेरा भला होगा, तुझे धन मिलेगा।"

"धन मिला ?" मैं बीच में ही उतावली से पूछ बैठा। उन्होंने हँसते हुए उत्तर दिया :

"मिला होगा। मुझे कुछ भी नहीं मालूम। परन्तु अनाज बहुत मिला। धान बहुत पका। फिर मां मर गई। तब बापू कहने लगे कि तेरी मां के पीछे उसका अन्न-छत्र तो चालू रहना ही चाहिए और उन्होंने मृत मां का काम संभाल लिया। उसके बाद थोड़े वर्षों के बाद वह भी मर गए। तब मुझे ऐसा लगा कि पिताजी का चालू किया हुआ मां का काम मुझे भी चालू रखना चाहिए।"

थोड़ी देर रुककर जैसे कोई अदृश्य किताब पढ़ रहा हो, इस प्रकार उसने फिर कहना शुरू किया :

"हमारे यहां ऐसी परंपरा है कि अनाज बाहर आंगन में मिट्टी की बड़ी-सी कोठी बनाकर उसमें भरकर रखते हैं। उसे घर में भरकर रखने

का रिवाज नहीं। ऐसे में छप्पनियां-अकाल पड़ा। मेरा लड़का अमरसिंग कहने लगा, 'बापू, अनाज को छिपा दें।' मैंने कहा, 'अरे, अनाज कहीं छिपाया जाता है। ईश्वर ने अनाज तो खाने के लिए दिया है, उसे छिपाना नहीं चाहिए। छिपायेंगे तो परमेश्वर फिर नहीं देगा।' उसने कहा, 'तो लोग उसे ले जायंगे।' मैंने कहा, 'ले क्यों जायंगे ?' वह कहने लगा, 'खाने के लिए।' मैंने कहा, 'अमरसिंग ! खाने के लिए ही तो अनाज है। अनाज का और दूसरा क्या उपयोग है ? जितनी उन लोगों को ज़रूरत हो उतना उन लोगों को खाने को दे दो।"

अनाज का सच्चा तत्त्वज्ञान समझकर उसकी चर्चा करनेवाला कोई दार्शनिक मुझे इस बुढ़ापे में नहीं दिखाई दिया। मैंने पूछा, "फिर क्या हुआ ?"

"उसके बाद तो अच्छा मेह बरसा। धान की फसल बहुत अच्छी हुई। परन्तु फसल आने के डेढ़-दो महीने पूर्व हमारा अनाज समाप्त हो गया। एक दिन हमारे घर में सिर्फ एक जून खाने भर को सेम बचे थे। और कुछ भी नहीं था। अमरसिंग की बहू ने चूल्हे पर पानी चढ़ाया। सेम उसमें डालने को तैयार ही थी कि उसी समय बच्चे बाहर से दौड़कर आये और कहने लगे कि जंगल में चार फकीर बैठे हैं। जंगल हमारे घर के पास ही था।

"फकीर हैं," यह सुनकर मैंने तुरन्त बहू से कहा, "बहू ! सेम अब मत पकाओ।" पोपला मुंह फिर हँसा और आगे कहने लगा :

"जितने सेम थे, वे सब फकीरों को दे दिये। उन्होंने उसे पकाकर खाया। हम सब भूखे पड़े रहे। परन्तु बारिश होने लगी, इसलिए फकीर भी ठहर गए, जा न सके। पर सारी रात मेरे मन में यह विचार चलता रहा कि सुबह उठकर फकीरों को खाने के लिए क्या देंगे ?"

"मैंने अमरसिंग से पूछा कि 'अब दूसरी बार के लिए फकीरों को क्या देंगे ?' लड़का बोला, 'बापू ! चलो ब्यारा चलें। वहां से अनाज उधार लेकर आयेंगे।' मैंने कहा, 'हमें कौन अनाज देगा ?' लड़का बोला, "देंगे, चलो तो।"

"हमारी गाड़ी ब्यारा की सीमा पर पहुंची। एक सेठ सामने से आते

दिखाई दिये और वह हमसे मिले। मैं तो उन्हें पहचानता नहीं था, पर उन्होंने मुझे पहचान लिया और आश्चर्य से बोले, 'अरे भगत, तुम यहां कहां ?' क्योंकि मैं कहीं भी, व्यारा तक भी, अपने गांव से बाहर नहीं गया था। मैंने कहा, 'अनाज उधार लेने आया हूं।' वह कहने लगा, 'जितना चाहिए उतना ले जाओ न, चलो ! तुम्हें अनाज चाहिए तो कौन नहीं देगा ?' "

"सेठ ने गाड़ी को अपनी दूकान की ओर हंकवाया। दूकान पर जाकर मैंने कहा, 'कलशी सोलह कच्चे मन यानी आठ मन सादे चावल और एक मन ऊंचे किस्म के चावल दो।' "

"जो मांगा, सेठ ने दिया और गाड़ी में भर लिया। इसके बाद मैंने लड़के से कहा, 'अमरसिंग, तू घर जा ! मैं यहां सेठ का काम करने के लिए ठहर जाता हूं। अपनी फसल पकने पर तू चावल लेकर यहां आ जाना और मुझे ले जाना।' अमरसिंग गाड़ी लेकर चलने लगा तो सेठ की नज़र मेरी ओर गई। मुझे बैठा देखकर सेठ ने कहा, 'अरे, तुम क्यों ठहरे हो ?' "

"मैंने कहा, 'आपका काम करने के लिए।' "

" 'कैसा काम ?' "

" 'क्यों, आपसे अनाज लिया, वह जबतक मैं नहीं लौटाता तबतक आपका काम करने के लिए मुझे यहां रहना चाहिए न ?' "

" 'अरे भगत, तुम यह क्या कह रहे हो ? तुम से भी कहीं काम लिया जा सकता है ? और मैंने तुम्हें उधार कहां दिया है ? तुमने तो बहुतों को दिया है।' "

"उन्होंने मुझे गाड़ी के ही साथ विदा कर दिया। मैं घर गया। जब फसल तैयार हुई और वनिये का सारा अनाज चुका दिया तब गांव के लोग सब मिलकर कहने लगे, 'भगत, तुमने अकाल के दिनों में लोगों को अनाज दिया है, इसलिए तुम अपनी धरम की धजा चढ़ाओ।' "

लोगों के शब्दों को याद करके भगत मेरी ओर देखकर हँसे और कहने लगा, "मेरी धरम की धजा भी कहीं चढ़ाई जा सकती है ? भला कौन-सा दान दिया था, जिसकी धरम की धजा चढ़ाई जाय ? हमारे

खाने से जो अनाज बचा था, उसका हमारे लिए भला क्या उपयोग था ? यदि लोग उसका उपयोग न करते तो उसका क्या होता ? बचा हुआ अनाज खाने के लिए दिया, इसके लिए भी भला कोई धरम की धजा होती है ? हमें तो अनाज की कमी कभी नहीं पड़ी ।"

फिर मेरी ओर देखकर आगे कहने लगे, और यह कहते हुए उनके मुंह पर हँसी नहीं थी :

"परन्तु अब कमी आने लगी है। हमारे अमरसंग का बेटा, इन दिनों कहीं दूर-दूर पढ़ने के लिए गया है ।" यह कहकर कोई दूर का अगम्य स्थान दिखाने के लिए अपना हाथ लंबा कर उन्होंने इशारा किया और कहा, "और वह अकेला ही हमारे सारे कुटुंब के जितना अनाज खा जाता है ।"

पहले तो मैं उनकी बात समझा नहीं; पर बाद में मैं समझ गया कि भगत का पौत्र कविवर रवीन्द्रनाथ के शान्तिनिकेतन में पढ़ रहा है और वहां की पढ़ाई के लिए जो खर्च की बड़ी रकम देनी पड़ती है, उसके लिए घर के अनाज का एक बहुत बड़ा भाग बेच देना पड़ता है । उसीको लक्ष्य करके भगत यह कह रहे थे, "वह अकेला ही हमारे सारे कुटुंब के जितना अनाज खा जाता है ।"

आधुनिक शिक्षा पर यह एक तीखा व्यंग्य था । पर भगत व्यंग्य में नहीं बोल रहे थे । उनके कहने का मर्म केवल इतना ही था कि उनके कुटुंब-जीवन में कुछ ऐसा हो रहा है, चल रहा है, जो वह स्वयं समझ नहीं रहे थे ।

भगत फिर हँसते हुए कहने लगे, "और अब तो रेलगाड़ी आ गई है, इसलिए डाकोर से नासिक जानेवाले साधु तो इधर आते नहीं, पर 'धगड़े' आते हैं ।" धगड़े यानी पुलिस !

और भगत ने अन्त में ये शब्द कहे, "और वे भी यहां खाते हैं !"

हमारी बात पूरी हुई और मुझे भगत के घर पर रात को रहना पड़ा, क्योंकि अपने घर पर आये हुए किसीको भी वह बिना भोजन कराये जाने नहीं देते । मैं एक ही बार भोजन करता हूं, इसलिए शाम को खा नहीं सकता था, इसलिए जा भी नहीं सकता था । दूसरे दिन

भोजन करके मैं वहां से चला। तब से आज तक, अपने मन में एक वाक्य गुनगुनाया करता हूं।

"मैं बहुत...लम्बा देखता हूं। अंग्रेज सरकार का राज्य नहीं था, उसके पहले मैं था।"

उस दिन से मैं उस काजल-से काले, सूखे हाड़-पिंजर-से, एक गमछे-भर कपड़ेवाले, निरन्तर हँसते रहनेवाले, ग्रामीण आदिवासी का 'कलियुग का ऋषि' कहकर परिचय देता आया हूं।

'कलियुग का ऋषि' वह इस अर्थ में हैं कि गीता में जिसे अनासक्ति-योग कहा गया है, उससे सवाया आचरण मुझे उस मनुष्य में दिखाई दिया है। अपनी आवश्यकताओं के प्रति उदासीन होने पर भी वह कार्य करने में बहुत दिलचस्पी लेते थे और प्रयत्नशील भी थे। अपने खाने जितना अनाज तो वह डेढ़-दो बीघे खेत में से ही आसानी से पैदा कर लेते थे, पर वह तो जमीन का रकबा बढ़ाते ही चले जाते थे और जो अधिक अनाज पैदा होता, वह लोगों को देते जाते थे। जमीन बढ़ाने पर पैदावार बढ़ी, पर उनकी अपनी आवश्यकता नहीं बढ़ी थी। इस प्रकार के निष्काम कर्मयोग का आचरण करनेवाले वह योगी ही थे।

: १६ :

जी'-बा[1]

जीवी अब कोई बच्ची नहीं थी। वह सब जानती थी। जिस खेत में वह काम कर रही थी, उसीसे लगे हुए खेत में सामने के बनेजड़ा गांव की हद में मथुर भी मजदूरी करने आता था। सिर पर रंगीन साफा लपेटे हुए मथुर को वह दूर से ही पहचान लेती थी। क्या मथुर भी उसे इसी प्रकार नहीं पहचान लेता होगा ?

जीवी तो वैसे भी पहचानी जा सकती थी। गोरी, ऊंची-पूरी और सलोनी ! मही-माता का भरा-पूरा प्रवाही रूप उसे मिला था। जीवी के नैहर का गांव वटादरा मही नदी से तीन कोस दूर था, फिर भी वह उसकी तटवासिनी कही जा सकती थी। मही के तट पर रहनेवाली और पाटणवाडिया की पुत्री ! ठाकुरों में भी पाटणवाडिया सबसे ताकतवर कौम है। पाटणवाडिया यों तो परदेशी ही कहलायेंगे, क्योंकि माही-तटवासी बारैया कौम उन्हें अपने से हलके मानती है। इस प्रकार जीवी बारैयों की दृष्टि में नीची कौम में पैदा हुई थी।

जब उसका मथुर के साथ विवाह हुआ, वह तीन वर्ष की थी। अब सोलह-सत्रह की हो गई है, तो भी जीवी वटादरा में अपने बाप के घर ही रहती है। सामने ही उसकी ससुराल—बनेजड़ा के झोंपड़े दिखाई देते हैं और दोनों गांवों की सीमाएं एक-दूसरे से जुड़ी हुई हैं। इस ओर से जीवी गांव की सीमा में खेतों में काम पर तो जाती, परन्तु वह ससुराल नहीं जाती थी।

---

१. गुजराती में 'बा' का अर्थ मां होता है। जीवी के प्रति सम्मान तथा श्रद्धा व्यक्त करने के लिए लोगों ने उसे जी'बा नाम दिया था।

"अरे जीवी !"

जीवी गठरी बांध रही थी। उसने चौंककर ऊपर देखा और बुलाने-वाले को पहचानकर कहा, "आओ लखा पटेल !" जीवी ने सत्कार तो किया, पर वह अचकचाकर चारों ओर देखने लगी। सौभाग्य से खेत में काम करनेवाले दूसरे सब लोग कुछ दूर थे।

लखा पटेल के नाम से परिचित सामने के गांव बनेजड़ा के पाटीदार युवक लक्ष्मीदास ने कुछ दीन तथा नम्र वाणी से पूछा, "जीवी, तू ससुराल क्यों नहीं जाती ?"

कुछ देर के लिए जीवी व्याकुल हो गई। लखा पटेल भी घबरा रहे थे, फिर भी उन्होंने हिम्मत करके आगे कहा :

"मुझे खास तौर पर यही पूछने भेजा गया है।"

"किसने, तुम्हारे भाई-बंध ने ?" उलटकर प्रश्न करती हुई जीवी का मुंह कानों के मूल तक लाल हो गया।

लखा पटेल ने सिर हिलाकर 'हां' कहा और सामने बनेजड़ा की हद की ओर दृष्टि से इशारा किया। नीचे झुककर हंसिया चलाता हुआ मथुर दिखाई पड़ा। इस ओर वह देख नहीं रहा था, शायद जानबूझकर ही वह ऐसा कर रहा था।

"हटाओ भी, मुझे नहीं जाना है।" कहकर जीवी जवाब टाल गई और घास की गठरी पर पैर रखकर इस संकट की स्थिति से बचने का प्रयत्न करने लगी।

"कुछ कारण तो होगा न जीवी ! क्या तेरे मां-बाप मना करते हैं ?"

"मां-बाप भला क्यों मना करेंगे ? वे बेचारे तो रोज जाने को कहते हैं।"

"तो क्या तू ही जाना नहीं चाहती ? कुछ कारण तो होगा ? क्या मथुर के मां-बाप पसन्द नहीं हैं ?"

"पसन्द क्यों न होंगे ?" जीवी ने अपनी उड़ती हुई ओढ़नी को दांतों तले दबाया।

"तो क्या मेरा भाई-बंध तुझे पसंद नहीं ?"

"ऐसा भी कहीं होता है ?"

"तो क्या वजह है ?"

"अरे लखा पटेल !" जीवी में कुछ हिम्मत आई और उसने कहा, "अपने भाई-वंध का कहीं दूसरी जगह ब्याह करा दो न !"

"इसके लिए तो उसके मां-बाप ने उसे बहुत-बहुत समझाया, परन्तु वही मना करता है, नहीं तो आजतक एक बार तो क्या, पांच बार उसका ब्याह करा दिया होता !"

"क्यों मना करता है ?"

"राम जाने ! कहता है, जीवी के बिना किसी से भी ब्याह नहीं करूंगा।"

"तो क्या जन्म-भर इसी तरह रहेगा ?"

"हां, हो सकता है। यह तो ठीक, परन्तु तेरे मां-बाप भी उसे 'छोड़-चिट्ठी' लिखवाकर तुझे दूसरी जगह क्यों नहीं बैठा देते ?"

"जाओ न मेरे भाई," जीवी बहुत शरमा गई, "वे तो बहुत कहते हैं, परन्तु मुझे ही दूसरी जगह नहीं जाना है।"

"तो फिर तू अपने मन की बात बता न जीवी ! तुझे क्या अड़चन है ?" जैसा भी तू कहेगी, वह करने को तैयार है। सिर्फ तू अपने मन की बात कह दे !"

"और तो कुछ भी नहीं है, लखा पटेल ! परन्तु..."

"परन्तु क्या ?"

"वह चोरी कर..."

"चोरी ! पाटणवाडिया तो चोरी करते ही हैं, इसमें तुझे क्या अड़चन हो सकती है ? चोरी नहीं करेगा तो खायेगा क्या ?"

बात सच्ची थी। मही कंठा तो चोरी करनेवाले गांवों से ही बसा हुआ था। ठाकुरों के गांव चोरी करने में भयंकर ख्याति प्राप्त किये हुए थे। उनमें पाटणवाडिया तो सबके सिरमौर थे। उनके घर कोई मेहमान बनकर जाना भी पसन्द नहीं करता था। चोरी को न तो वह ऐब मानते थे और न उन्हें उसका डर था। औरत कहेगी और मर्द चोरी करेगा। मर्द चोरी करके लायेगा तो औरत उसे छिपाकर रखेगी। चोरी उनका धन्धा कहो तो धन्धा, और कारीगरी मानो तो कारीगरी।

कुछ देर तक विचार करके जीवी ने साफ-साफ कहा, "मुझसे यह नहीं देखा जायगा ! वह पकड़े जायं, पुलिस घर आवे । जांच करे और उन्हें बांधकर मारते-मारते ले जाय, यह मुझसे नहीं सहा जायगा । मुझे ससुराल नहीं जाना है ।"

पाटणवाडिया की पुत्री जीवी को यह ज्ञान कैसे हो सकता था कि चोरी करना पाप है या अनीति । पाप और पुण्य के भेद से वह दूर थी और अबोध थी । चोरी में कुशल पुरुष की तो पाटणवाडिया कौम में अच्छी ख्याति होती है, यह भी वह जानती थी । चोरी करनेवाला बड़ा वीर माना जाता था, परंतु उसकी दुर्गति देखने के लिए वह तैयार न थी ।

मथुर का बन्धु लखा पटेल लौट गया और दूसरे दिन फिर उसी खेत पर आकर अकेली जीवी से मिला । उसने कहा, "जीवी, मथुर कहता है कि वह चोरी नहीं करेगा । अब तो तू चलेगी न ?"

"नहीं, उसके बाप के घर नहीं !"

"क्यों ?"

"उसके काका वगैरा तो प्रसिद्ध हैं । वे चोरी किये बिना रह नहीं सकते ! वह चोरी का माल रखें, घर पर पुलिस आये, उसको मारे-बांधे, घर की जांच करे, मुझसे यह भी नहीं देखा जायगा ।"

"तब ?"

"वह अलग रहे !"

"अच्छा अलग रहेगा ।"

"नहीं, ऐसे नहीं । वह पाटणवाडिया की बस्ती से निकलकर किसी पाटीदार अथवा ब्राह्मण-वैश्य की बस्ती के पड़ोस में घर ले ।"

"मंजूर है जीवी ! मैं उसे अपने पड़ौस में ही घर दिला दूंगा ।"

"तो दिला दो । मैं सीधी इसी नये घर में ही जाऊंगी, नहीं तो नहीं आती । उनसे कहना, अपने बाप के घर से कुछ भी न लावें । मैं ही सब ले आऊंगी ।"

और एक दिन जीवी अपने बाप के घर से गाड़ी में बैठकर बनेजड़ा आई । वह सीधी पाटीदार बस्ती में लिये गए अपने पति के घर गई ।

गाड़ी के पीछे एक भैंस बंधी थी, उसे खोलकर उसने गली में बांधा। बाप ने आठ मन नाज बांध दिया था। उसे घर के एक कोने में रखा। परन्तु उसे खाने के काम में उसने नहीं लिया।

दूसरे दिन से सुबह ही, "उठो, खेत में जाने का समय हुआ," कहकर जीवी मथुर को जगाती। जल्दी उठकर रोटियां लेकर मथुर के साथ खेत में जाती। खेत पर दोनों मजूरी करते। दोपहरी में मथुर को प्रेम-पूर्वक खाना खिलाती और खुद खाती। फिर दोनों काम में लग जाते। शाम को पति को साथ लेकर ही वह घर लौटती। एक पल के लिए भी उसे अकेला नहीं छोड़ती थी। घर आकर पानी गरम करके मथुर के पैर धोती। रोटी बनाकर उसे जिमाती और बिस्तर पर बैठकर उसे आराम से सोने को कहती। फिर वह गांव में जाती और दूसरे दिन के लिए खेत की मजदूरी ढूंढ़कर आती। परन्तु वह मजदूरी पर वहीं जाती, जहां दोनों को एक साथ मजदूरी मिलती। दोनों कभी अलग नहीं होते। दोनों खेत की मजदूरी करते। जीवी बाप की दी हुई भैंस का दूध बिलोती और उसका घी बेचकर रुपया कमाती।

मां जैसे बालक को संभालती है, उसी तरह मथुर को वह कभी अलग नहीं होने देती। अलग होने पर कहीं मथुर का मन चोरी की ओर खिंच न जाय, यह भय उसे सदा बना रहता।

मौसम पूरा हुआ। खेत की मजदूरी बंद हो गई। अब क्या करें? उसका निश्चय था कि ससुराल तथा नैहर का कुछ भी स्वीकार नहीं करना है, एक दाना भी घर में नहीं लाना है। उस दाने को खाने से कहीं बुद्धि में फिर से चोरी का प्रवेश हो गया तो क्या होगा!

जेठ का महीना आया। जीवी ने अपनी बचत को गिना। उससे एक बैल खरीदा जा सकता था। जीवी ने एक बैल लिया और फिर गांव में तलाश करके मथुर से कहा, "एक किसान के साथ हमने साझीदारी की है। एक बैल उसका, एक हमारा। गाड़ी उसकी, और हमारी ओर से तुम स्वयं। खेत जोतना शुरू कर दो।"

मथुर तो बहुत विचार करनेवाला न था। उसे विचार करने की आवश्यकता भी न थी। खाट पर पड़ा-पड़ा वह तम्बाकू पीता रहा।

मथुर तथा जीवी ने मिलकर उस मौसम में खेत जोता, बोया और उससे अपने हिस्से का काफी अनाज प्राप्त कर लिया। सालभर की जरूरत से जो अधिक बचत हुई, उससे एक दूसरा बैल खरीदा और एक गाड़ी भी बना ली।

फसल का मौसम समाप्त हुआ। अब मथुर, बैल तथा गाड़ी खाली पड़े थे। उनका यह खाली रहना जीवी को खलने लगा। उसने चारों ओर नजर घुमाई और फुरसत के समय में करने योग्य उसे एक अच्छा काम सूझ पड़ा। पेटलाद वहां से सात कोस है। गांव की खरीद-फरोख्त पेटलाद में होती थी, इसलिए व्यापारियों से भाड़ा मिल सकता था। लेकिन मथुर को अकेले पेटलाद भेजने में कितनी जोखिम थी, इसका भी जीवी ने विचार कर लिया। पर इतने दिनों में मथुर पर उसको विश्वास हो गया था, क्योंकि जीवी द्वारा निश्चित मर्यादाओं का उसने मूक रहकर आनन्द से पालन कर दिखाया था।

'एक बार छूट देकर देखूं तो सही! परखूं भी तो! उसे अकेला छोड़कर देखना चाहिए। इस तरह कब्जे में रखने से भी क्या फायदा? उसको गुलाम की तरह रहकर जीने से भी क्या रस मिलेगा?'

इस प्रकार विचार कर उसी रात को गांव के एक व्यापारी से उसने भाड़ा तय किया और फिर उसकी जानकारी मथुर को दी। वह तो जीवी जो कहे, उसे करने में बड़ा आत्मानन्द पा रहा था। उसने 'हां' कह दिया। "परन्तु देखो पेटलाद जाकर बाजार की कोई चीज खाना-पीना मत, समझे।" जीवी ने हिदायत की और रात को जगकर मोटे-मोटे पुए बनाये।

प्रातःकाल जल्दी उठकर उसने मथुर को जगाया; उसे रोटी खिलाई और तैयार पुओं का कलेवा साथ बांधा और चेतावनी देते हुए कहा, "यह अपनी चिलम तथा तम्बाकू भी लेते जाओ, वहां से कुछ भी न खरीदना।"

उसने खुद ही बैल जोते, और जब मथुर गाड़ी पर चढ़कर चलने लगा तो गांव के छोर तक उसे पहुँचाने साथ गई और ताकीद की, "संभलकर रहना और समय पर आ जाना।"

शाम को जीवी फिर गांव के छोर पर जाकर खड़ी हो गई। गाड़ी पेटलाद से आ पहुंची और मथुर को सकुशल देखकर उसने संतोष की सांस ली।

"अब तुम घर जाओ। गरम पानी रखा है, नहा लेना। तबतक मैं गाड़ी लेकर आती हूं।" इस प्रकार मथुर को घर भेजकर, खुद व्यापारी की बखार पर गाड़ी खाली करके गाड़ी हांकती हुई घर पहुंची। बैलों को बांधा, चारा डाला। मथुर नहाकर तैयार था, उसे जिमाकर सुला दिया।

जीवी को पेटलाद का गाड़ी-भाड़ा खूब मिलने लगा। हरएक व्यापारी को जीवी की गाड़ी भाड़े से लेना पसन्द था। मथुर को गाड़ी लेकर भेजने में जीवी ने जो क्रम पहली खेप में शुरू किया था, उसीको उसने वर्षों जारी रखा।

चोरी, लूट और खून के लिए, कई पाटणवाडिया और पाटीदार जान खो बैठे थे, जेल में डाले गए थे, उनके घर का सत्यानाश हुआ था। कई पाटणवाडियों के घरों में रुदन होता था और अश्रुधारा बहती थी। उस समय वनेजड़ा गांव में एक मथुर के आंगन में जीवी ने आठ भैंसें इकट्ठी की थीं और चरोतर प्रदेश की सोने-जैसी तीस बीघा जमीन अपनी कर रखी थी। जीवी के द्वार पर कभी पीली पगड़ीवाला (पुलिस) दिखाई नहीं दिया। जीवी के पति मथुर को कभी किसी पुलिस ने नहीं बांधा, न मारा। और न उसने उसे थाना दिखाया। जीवी का मथुर स्वच्छ बिस्तर पर बैठा-बैठा मौज कर रहा था।

जीवी ने मथुर को चार बालकों की ईश्वरप्रदत्त भेंट दी थी। जीवी अब प्रौढ़ हो गई थी। जीवी को गांव के लोग—पाटणवाडिया, पाटीदार तथा लुहाणा सब—"जी' बा" कहकर पुकारते थे और कहते कि "जी-बा को हमने दिन में कभी गांव में नहीं देखा। दिन के उदय से अस्त तक खेत पर ही रहती है।"

—

एक बार गुजरात में बाढ़ का संकट उपस्थित हुआ। तट पर के गांवों में सब घर गिर पड़े। लोगों के पास खाने को एक मुट्ठी अन्न भी नहीं रहा था। उन दिनों जीवी के आंगन में रविशंकर महाराज आकर खड़े

हुए। जीवी ने महाराज के पैर छुए। वह 'वटादरावाले महाराज' कहलाते थे। जीवी के नैहर के गांव वटादरा की महाराज पर बड़ी प्रीति थी।

'जी-बा' घूंघट खींचकर दूर खड़ी हुई। प्रौढ़ वय की जीवी से रविशंकर महाराज ने कहा, "तू तो मेरी बहन है। तू भी अब मुझसे परदा करेगी?"

"आप तो दादा हमारे मां-बाप हैं," जीवी ने कहा, "परन्तु परदा किया सो किया, अब जीवन के आखिरी दिनों में उसे कैसे छोड़ूं?" ऊंची-पूरी, गोरी और प्रौढ़ जीवी परदे के अंदर, मूर्तिमान महीमाता-सी लग रही थी।

"जी-बा," दादा ने कहा, "अनाज दोगी?"

"अरे महाराज, अनाज है कहां? मेरे पास कितना होगा?" कहती हुई वह उठी और अपने घर में से महाराज को ढेर-सारा अनाज निकाल दिया और इस जीवन-मरण के अवसर पर लोगों को बचाने में उसने मूक सहायता दी।

एक दिन मथुर का शरीरान्त हो गया। जीवी अपने अन्तर में कितनी रोई होगी, कैसे-कैसे स्मरणों को याद करके उसने आंसू बहाये होंगे, उसकी किसीको जानकारी नहीं। परन्तु लोगों के और जीवी के मन में मथुर के पीछे कोई पुण्य-कार्य करने की इच्छा थी। इस सम्बन्ध में अधिक जानकारी या ज्ञान न होने के कारण गांव के लोगों को ही इकट्ठा करके उसने सलाह ली।

"जी-बा," गांव के लोगों ने सादा-सा और उन्हें परिचित-सा मार्ग बताया, "परवड़ी[1] बनाओ न!"

गांव के पक्षियों की 'परवड़ी' के लिए 'जी-बा' ने अपनी सबसे अच्छी जमीन में से चार बीघा जमीन अर्पित कर दी।

जीवी...'जी-बा' अभी जीवित है। पचपन वर्ष की आयु, गौर वर्ण, रूपवती, ऊंची-कद्दावर तथा लज्जाशील 'जी-बा' आज भी घूंघट निकालकर अपने बड़ों से परदा करती है।

१. गुजरात में पक्षियों को दाना डालने के लिए जगह-जगह पक्के स्तूपाकार स्थान बनाये जाते हैं, वे 'परवड़ी' कहलाते हैं।

: १७ :

बाबर देवा

(१)

युवकगण उसे 'भगत' के नाम से पुकारते थे। 'भगत' को ढूंढना हो तो भजन-मण्डली में जाकर उससे मिलना चाहिए। जहां भजन हो वहां 'भगत' अवश्य पहुंच जाते थे।

परन्तु एक दिन ऐसा आया कि भगत से मिलने के लिए भजन-मण्डली में नहीं, जेल में जाना पड़ा।

"अरे भगत !" पेटलाद-जेल के जेलर ने इस युवक कैदी को समाचार दिया, "तेरी मां-हेता तुझसे मिलने आई है।"

मां-बेटे को मुलाकात में लगे देखकर सन्तरी आपस में बातें करने लगे, "औरतें तो बहुत देखीं, पर यह हेता तो बहुत भयंकर है। ऐसा रूप किसीका भी नहीं देखा !"

"लड़का तो बेचारा उसकी मां के सामने बच्चा लगता है। भजन गाते-गाते उसने ज़रा चोरी का स्वाद चखा तो सही, पर उसमें ताकत तो कुछ दिखाई देती नहीं है।"

"नहीं जी नहीं ! इसकी मां को तो देखो। दिन में भी उसे देखकर डरके मारे कलेजा फट जायगा !"

इस बीच हवालात की मोटी छड़ों के पीछे खड़ा-खड़ा यह 'भगत' अपनी मां से यह कहकर चुप हो गया, "तू अब जा मां, और कल मेरे लिए सेवैंयां बनाकर तैयार रखना। मैं सेवैंयां खाने आ पहुंचूंगा।"

"तुझे जो ठीक जंचे सो कर, पर मुखिया का त्रास अब मुझसे सहा नहीं जा रहा है, बेटा बाबरिया !"

इतना कहकर मां चली गई। पेटलाद की हवालात में शांति छा गई। गायकवाडी गांव कणिया के पाटीदार के घर पर चोरी करने के कारण भगत पकड़ा गया था और जेल में बैठा-बैठा भजन की पंक्ति धीरे-धीरे गुनगुना रहा था :

"काया मेली ना जाये मारा हंसला।
काया मेली ना जाये रे हां-जी हां।"

अर्थात् मेरे हंस (जीव) काया छोड़ी नहीं जा सकती है, काया छोड़ना बड़ा कठिन है।

दूसरे दिन होली का त्योहार था। शाम को गांव की सीमा पर होली जलाई गई, उस समय पेटलाद से तीन कोस दूर गोरेल गांव के पाटणवाडिया-वास के एक घर के दरवाजे पर एक आवाज सुनाई दी, "क्यों मां सेवैंयां तैयार हैं न ! झट से ला दे, अभी खा लेता हूं। पुलिस मेरे पीछे चली आ रही है।"

मां हेता सेवैंयों की खीर तैयार करके ही बैठी थी। "आई बेटा," कहकर उसने तुरन्त थाली में सेवैंयां परोसीं। झटपट सेवैंयां खाकर वह जवान धारिया हाथ में लेकर और कमर में छुरी खोंसकर बाहर निकल गया। शाम को पांच बजे वह पेटलाद की जेल में से भागा था।

उसी दिन रात में गोरेल गांव के बीच बाजार में गांव के मुखिया को उसने जानसे मार डाला। फिर वह जाकर कहां छिपा है, इसकी किसी-ने तलाश भी नहीं की। १९१९ का वर्ष था, चरोतर-जैसा धाराला-कौम से परिपूर्ण प्रदेश। मही-वात्रक नदी के गहरे बड़े कोटरों में साड़े पांच फुट का मनुष्य आसानी से छिपा रहे तो इसमें क्या आश्चर्य !

सरकार ने बावरिया की मां को अदालत में लाकर खड़ा किया। मजिस्ट्रेट की अदालत में यह भयानक हेता बोल उठी, "अभी तो एक चीता ही छोड़ा है, उसमें इतने घबरा गए। जब मैं अपने पांच 'शीलंकों'[1] को छोड़ूंगी तब क्या करोगे ?"

---

१. 'शी-लंका' अर्थात् सिंह जैसी कटिवाले बेटे।

(२)

कुछ महीने बीते थे और इसी गोरेल गांव में इसी भगत ने एक आदमी को, उसके घर जाकर उसके शरीर में तलवार भोंककर, उसे घसीटता हुआ गांव की सीमा पर मार डाला। लोगों को जानकारी मिली कि भतीजे ने अपने सगे काका को मार डाला है।

एक तो चोरी, फिर जेल तोड़कर भागना और तीसरे ये दो खून—इन चार अपराधों ने चरोतर के सारे प्रदेश को बड़े चक्कर में डाल दिया। खेड़ा जिला की तथा बड़ोदा राज्य की पुलिस चारों ओर दौड़ पड़ी। इन्हीं दिनों की बात है। एक दिन जोगण गांव में एक पाटण-वाडिया अपने घर पर बैठा था। उसकी गोद में एक छोटा बालक खेल रहा था। सामने ही उस बालक की मां—उस आदमी की पत्नी—कुछ काम कर रही थी। तभी बालक को खिलानेवाला आदमी भय के मारे "अरे बाप रे!" चीखकर सुन्न हो गया। औरत ने गलियारे में मुड़कर देखा तो एक जवान खड़ा है, और उसके हाथ में भरी हुई बन्दूक है।

"बच्चे को ले ले, बुआ!" बंदूकधारी युवक ने शांत शब्दों में स्त्री से कहा।

परंतु बुआ कुछ समझी नहीं। "अरे भगत!" इतना ही कहकर वह बंदूकधारी अपने भतीजे की ओर देखती रह गई।

"फूफा की गोद में से बच्चे को ले ले बुआ!" बंदूकधारी ने पुनः आंखें निकालकर कहा। पर बुआ तो मारे डर के सुन्न हो गई थी। पति की गोद से बच्चे को न ले सकी।

"ठांय" करती हुई बंदूक छूटी। गोद में बालक था, फिर भी गोली पुरुष को ही लगी। पुरुष गिर पड़ा, बालक बच गया था। बंदूकधारी भाग गया। अपने फूफा की जान लेनेवाला यह 'भगत' बाबर देवा था।

तीसरा खून, और बाबर देवा प्रसिद्ध डाकू हो गया। भजन-मंडलियों में भाग लेनेवाला एक कंगाल पाटणवाडिया जवान 'डाकू बाबर देवा' भयंकर नाम से पहचाना जाने लगा। बाबर देवा की टोली बन गई। लूटमार तथा खून से सारे प्रदेश की हवा भयग्रस्त हो गई। यह प्रदेश अलग-सा पड़ गया और चरोतर की धरती पर एक तूफान-सा आ गया।

पुलिस की मुखबिरी करने की शंका-मात्र से बावरिया ने अपने सगे काका तथा फूफा को जान से मार डाला था। इस खबर से भय के मारे लोगों के शरीर ढीले पड़ गए। बाबर देवा के माता-पिता तथा तीन जवान भाइयों को पुलिस ने पकड़कर बीजापुर के क्रिमीनल सेटलमेंट में भेज दिया। उनकी जमीनें जब्त कर लीं। उनके सब मकान गिरा दिए। कहा जाता है कि उसमें से सच्चे मोती निकले थे। बाकी बचे बाबर के दो छोटे भाई। वे नाबालिग थे। उनकी तलाश में पुलिस थी, पर उनका पता उसे न मिला। उन्हें किसीने छिपा रखा था।

बावरिया के सभी सगे-सम्बन्धी पकड़ लिये गए। उसकी एक बहन थी। वह झारोला गांव में ब्याही गई थी। उसे भी पकड़ने की कोशिश की गई। परंतु वह झारोले में नहीं थी। कहां गई होगी ? धीरे-धीरे जानकारी मिली कि बावरिया के गिरोह में एक औरत भी लूट करती दिखाई देती है। वह उसकी झारोलावाली बहन ही थी।

बाबर को डाकूगिरी करते-करते एक साल बीत गया। बहन के बारे में कुछ बातें उड़ने लगी थीं। ये बातें भाई के कानों में भी पहुंची।

"अरे भगत !" बाबर के साथी पाटणवाडिया जगा उमठे ने एक बार जंगल के निवास-स्थान पर बाबर को अकेला पाकर कहा, "तू तो इस तरह इधर-उधर घूम रहा है, पर..."

"पर क्या ?" जगा की कांपती जीभ को देखकर बाबर ने पूछा।

"कुछ नहीं।"

"नहीं, पेट में जो भी बात हो, वह कह डाल।"

"तो ले कह देता हूं। उसे पेट में रखने से क्या लाभ ? तू तो इस तरह घूमता रहता है, पर तेरी बहन तो मुसलमान के घर बैठने को तैयार है।"

बात साफ हो गई। उसकी बहन की एक मुसलमान सिपाही के साथ दोस्ती हो गई थी। वासना अंधी होती है। आज अपने को सौंपा। किसी दिन सगे भाई को सौंप देने में वह देरी या विचार नहीं करेगी।

बात सच थी या गलत, परंतु बाबर के मन में शंका घर कर गई कि किसी दिन बहन दगा करेगी।

झारोला से एक मील दूर चूवा गांव के एक खेत में एक दिन बाबर विश्राम कर रहा था। बहन आई और भाई के पास बैठी इधर-उधर की बातें करने लगी। बात करते-करते वह बाबर के पास पड़ी हुई उसकी बन्दूक हाथ में लेकर उसे ध्यान पूर्वक देखने लगी। भाई के मन में जो शंका थी, वह एकदम पक्की हो गई।

"बन्दूक को ऐसे नहीं देखते हैं, यों देखते हैं—यों !" यह कहते-कहते बहन के हाथ से बंदूक छीनकर उसने बहन के माथे की ओर तानी और उसका घोड़ा दबा दिया। बहन की खोपड़ी चूर-चूर हो गई।

(३)

बामणवाड़ा गांव की सीमा पर बाबर चुपचाप बैठा है। किसी की राह देख रहा है। अंतर में अधीरता है, पर वह उसे बाहर प्रकट होने नहीं दे रहा है।

आखिर आनेवाला दिखाई दिया।

वह था झूलंद का चौकीदार। बाबर ने अपने दो निराधार भाइयों की रक्षा का भार उसको सौंपा था। इन दो बालकों को छिपाकर उनकी रक्षा करने के बदले में बाबर लूट करके उसे खर्च की रकम देता रहता था। उसको आता देखकर बाबरिया के माथे की सलवटें फड़कने लगीं।

चौकीदार आकर बैठा। उसका मुंह उतरा हुआ था। चेहरे पर तेज नहीं था। जीभ एक अक्षर भी न बोल सकी। बाबर ने कहा :

"क्यों, बच्चों को आखिर सौंप दिया न ?"

"क्या करूं, भगत ?" चौकीदार पैरों पड़कर कहने लगा। "मुझ पर पुलिस ने दबाव डालने में कुछ बाकी नहीं रखा था। आखिर उन्हें सौंप देना पड़ा।"

"कहां जाकर सौंपा है ? चलो, वह जगह दिखाओ।" आगे चौकीदार और उसके पीछे बाबर। गांव की सीमा पर खेत था। खेत में फसल खड़ी थी।

"मैंने इस फसल के अन्दर उनको छिपाया था। यहां से निकालकर दोनों सौंप दिए।"

बाबर ने चारों ओर दृष्टि दौड़ाई। सामने ही एक पेड़ खड़ा था।

चौकीदार को उस पेड़ के पास वह ले गया। वहां उसे खड़ा करके पेड़ को छाती से लगाकर और दोनों हाथ के पंजे एक दूसरे के साथ भिड़ाने को उसने कहा। उसके बाद एक लम्बी कील निकालकर चौकीदार की पीठ में उसे लगाकर पत्थर से उसे ठोककर पेड़ के साथ जड़ दिया। और फिर एक के बाद एक करके छः गोलियां छोड़कर उसे वहीं भून दिया।

(४)

बाबर की ब्याहता पत्नी डाकूगिरी में उसके साथ थी। वह पकड़ी गई और उसे सज़ा हो गई। उसके बाद डाकूगिरी करते-करते बाबर ने नई औरत की। वह भी डाकूगिरी में उसका साथ देने लगी। आदमियों की हत्या करने में बाबर का हाथ अच्छा सध गया था। जबतक उसके भाइयों को सेटलमेंट में बन्द नहीं किया गया था, तबतक वह उनसे मिलकर पूछताछ कर लेता था कि कोई उन्हें सताता तो नहीं, या किसीको मारना-मूरना तो नहीं है। भाई मना करते तो ठीक था, किसी से बैर निकालना होता या मुखाबिरी की भनक पड़ती तो उसे खतम कर दिया जाता। परन्तु जेल में गई हुई पत्नी के भाई बाबर मोती ने बहनोई को एक बड़ा क्रूर कार्य करने को सौंप दिया।

"बाबर ! तू यदि घोरीभाई को ठिकाने लगा दे, तभी मैं कणजट में फिर से रहने के लिए जा सकूंगा।"

"लगा देंगे उसे ठिकाने।" बाबर ने कह दिया।

घोरीभाई एक श्रीमन्त पाटीदार थे। कणजट उसके सुसराल का गांव। ससुर लावारिस मर गए। जंवाई घोरीभाई कणजट में ससुर की सारी जायदाद का प्रबन्ध करने के लिए आकर रहने लगा। एक स्त्री के कारण बाबर मोती के साथ उसका वैर हो गया। न जाने कैसे उस स्त्री का दिल विवाहित पाटणवाडिया बाबर मोती पर लट्टू हो गया। फुन्देदार म्यान के अंदर कमर में छुरी बांधनेवाले बाबर मोती के साथ, पिता और पति का वैभव छोड़कर, वह युवती चली आई थी। दोनों जाकर एक दूसरे गांव में रहते थे। बरसों बीत गए थे। घोरीभाई के डर से कणजट छोड़कर बाहर गये हुए मोती के लिए कणजट वापस लौटने और वहां रहने का एक ही मार्ग था। अपने बहनोई द्वारा घोरीभाई को ठिकाने

लगाया जाय। तभी वह कणजट में जाकर रह सकता था।

दिन का समय था। ससुर के खेत में घोरीभाई निराई का काम करा रहा था और मजदूरों के सिर पर जमकर खड़ा था कि किसी ने आकर यह चेतावनी दी, "घोरीभाई, भागो, वह तुम्हारा खून करनेवाला है।"

"कौन ?" ज़रा भी घबराये बिना इस भारी-भरकम कायावाले निर्भय पाटीदार ने पूछा।

"बाबर देवा। बाबर मोती का बहकाया हुआ, वह चला आ रहा है। भागो !"

"आने भी दो। ये कोली-कमीने क्या मारेंगे ? इन कोलियों को समझता क्या हूं ? नाली के कीड़े इनसे अच्छे होते हैं।"

यह कहकर वह जवांमर्द पाटीदार वहां खेत में ही खड़ा रहा। बाबरदेवा पास आ पहुंचा। दोनों एक दूसरे को गालियां देने लगे। बाबरदेवा ने बंदूक छोड़ दी। पहली गोली लगी, पर घोरीभाई ज्यों-का-त्यों खड़ा रहा। दूसरी गोली छाती में जा लगी, फिर भी घोरीभाई गिरा नहीं। अन्त में बाबर ने आकर उसे बंदूक के कुंदे से धक्का दिया, तब जाकर वह गिरा।

(५)

मनुष्य को मारने की क्रूर युक्तियों को आजमाने में कुशल 'भगत' ने हाहाकार मचा रखा था। फिर उसके साथ जाकर मिला अलिया। अलिया बोरसद का था। २२ वर्ष का वह जवान था। मुसलमान था, पर उसका पहनावा किसान का ही था। सबकी तरह अलिया भी काछ बांधता था और सिर पर साफा लपेटता था। उसका बाप किसान था। पिता के मरने पर उसने अपनी जमीन छनाभाई वकील को बेच दी। परन्तु जमीन पर खड़े आम के पेड़ों के बारे में कोई सफाई नहीं की गई थी। अलिया मानता था कि आम के पेड़ मेरे ही हैं। छनाभाई वकील उससे कहते थे कि पागल मत बन।

"नहीं, छना काका। इन पेड़ों के आम तो मैं ही खाऊंगा। मैं आपसे कहे देता हूं।"

"अरे जा, बड़ा आया है आम खानेवाला।"

"तो देख लेना, छना काका!"

वैसाख का महीना आया। केरियों के भार से आम झुक रहे थे। आमों के गुच्छों को देखकर अलिया अपने होंठ चूसने लगा। परन्तु छना काका आम उतरवाने लगे थे। अलिया मुंह में आये हुए पानी को अधिक देर तक रोक नहीं सका। छना काका का खून करके वह भाग खड़ा हुआ। दो वर्ष तक वह छिपा रहा। फिर आकर बावर के साथ मिल गया।

लूट-पाट करने के बाद जब भी मौका मिलता, अलिया के कदम बाबरिया की अनुमति लेकर...गांव की ओर मुड़ जाते थे। उस गांव की सीमा पर एक खेत था। खेत में कुंआ था और कुएं पर एंजिन से पंप चलता था। ऐसी हरियाली भरे सुन्दर एकान्त स्थान पर एक मकान था। मकान में एक स्त्री अलिया की राह देखती रहती थी। वह अलिया की जवान पत्नी थी। उस स्त्री को शरण देनेवाला उस मकान तथा खेत का मालिक अलिया की लूटों से धनवान बन रहा था; ऐसा भी एक अनुमान लगाया जा रहा था।

अलिया के इस आश्रयदाता को एक दिन ज़िले के एक अधिकारी के सामने खड़ा होना पड़ा। उसे उसकी जमीन-जायदाद जब्त करने और जेल में बंद कर देने की धमकी दी गई।

"हां, साहब।" मालिक ने हाथ जोड़कर कहा, "वह अलिया की औरत ही है और मेरे घर का काम करती है। शायद वह भी कभी-कदास आया करता होगा। मैं उसे पकड़वा दूंगा। पर इस वजह से बाबरिया की आंख में मैं आ जाऊंगा। इससे अच्छा यह नहीं होगा कि अलिया खुद बाबरिया को ही पकड़वा दे? तब क्या आप अलिया को छोड़ नहीं देंगे?"

यह बात साहब को पसन्द आ गई। थोड़े ही दिनों में उस आश्रयदाता के द्वारा छुपे तौर से अलिया ज़िले के हाकिम के सिपुर्द कर दिया गया।

इस प्रकार सौंप दिये जाने पर भी अलिया चार नये साथीदारों की टोली लेकर घूम रहा है। नई-नई बन्दूकें लेकर छोटी-बड़ी लूट-मार भी

कर लता है ।

फिर भी ज़िले की पुलिस उसे रोक नहीं रही है; गायकवाड़ी अधिकारी उसे पकड़ते नहीं है और पड़ोस के देशी राज्य भी उसको हाथ नहीं लगाते हैं ! क्या बात है ?

कई बातें हवा में बहती सुनाई देती हैं। अलिया के नये साथी पुलिसवाले हैं । उसकी नई बन्दूकें इस या उस लायसेन्सदार गृहस्थ की हैं । उसे कोई पकड़े नहीं, इस सम्बन्ध में एक गश्ती चिट्ठी निकल चुकी है । अधिकारियों में भीतर-ही-भीतर ऐसी भी एक सुलह हो गई है कि वह छोटी-मोटी लूट भी करता रहेगा, क्योंकि यदि वह ऐसा नहीं करता है तो बाबर चौकन्ना हो जायगा । अलिया पुलिस के साथ मिल गया है, इसकी ज़रा भी शंका बाबर को नहीं होनी चाहिए । ऐसी-ऐसी अफ़वाहें भी चल रही थीं ।

एक दिन शाम को कणजट गांव में छुपे वेश में एक राजस्थानी अधिकारी आये । वह एक पाटणवाडिया के घर पहुंचे और उसके कान में कहा, "बाबर मोती, तू जल्दी से अपने बहनोई के पास चला जा और उसे चेता दे कि ज़िले में उसको पकड़ने की तैयारियां की जा रही हैं ।

"कौन पकड़ावेगा ?"

"अलिया ।"

"अच्छा !" कहकर बाबर मोती रात में चल पड़ा ।

और राजस्थानी अधिकारी गहरा सन्तोष अनुभव करते हुए गांव बाहर चले गए । उन्हें इस बात का सन्तोष था कि बाबरिया को पकड़ने का यश अब उस जिलेवालों को मिलने से रहा !

मतलब यह कि, प्रजा जिसके कारण त्राहि-त्राहि पुकार रही है, उस डाकू को जल्दी-से-जल्दी पकड़ लेने का नहीं, पर बाबर को पकड़ने का यश प्रथम किसे मिलता है । इसीकी स्पर्द्धा का अब यह प्रश्न बन गया था !

लूट-मार करता हुआ और अपनी नई बन्दूकें घुमाता हुआ तथा नये साथियों का रक्षण प्राप्त करता हुआ, अलिया भी उसके बाद उसी रात को कणजट में उसी बाबर मोती के घर पहुंचा । घर पर तो वह था नहीं । उसकी औरत थी । अलिया ने उससे पूछा, "भाभी, इस समय

भगत कहां हैं ?"

"भाई, इसकी तो मुझे कुछ भी खबर नहीं है। अभी हाल में तो उनके कुछ भी समाचार नहीं मिले हैं।"

स्त्री ने इस सिफ़्त से यह बात कही कि अलिया को ज़रा भी शंका नहीं हुई और वह बाबर की गंध कहीं दूसरी जगह से पाने के लिए चला गया।

"अब।" फौजदार ने पूछा, "अलिया, अब इस बाबर को कहां ढूंढ़ें !"

"एक दूसरी जगह और है !"

"कौन-सी ?"

"...के पाटीदार...भाई के यहां।"

"...भाई ! कहता क्या है ? यह कैसे हो सकता है ?"

"हो सकता है। बाबरिया को उसीने बन्दूक दी है।"

इस डाकूगिरी में कैसे-कैसे सद्गृहस्थ मिले हुए थे, इसका इतिहास दबा हुआ है !

"कहां रहते हैं...भाई ?"

"अपने खेत पर।"

"चलो, चलें।"

पुलिस पहुंची तो बाबर को बन्दूक देनेवाले उन गृहस्थ के राम चल बसे ! बचने का एक ही उपाय था। बाबर को अपने खेत पर बुलाकर पकड़वा देना। उन्होंने यह स्वीकार किया।

इस गृहस्थ ने सात दिन तक डाकू को फंसाने का प्रयत्न किया, पर वह फंदे में नहीं आया। बाबर मोती ने उसे अलिये के फंदे से चेता दिया था।

अलिया तथा फौजदार वापस बोरसद लौट आये। अपराध करने का जो गुप्त अधिकार अलिया को प्राप्त था, उसका उस पर नशा-सा चढ़ा हुआ था ! नई बन्दूकोंवाला अलिया अब खुला खेलने लगा। बोरसद के भरे बाज़ार में उसने अपने एक विरोधी मुसलमान को जान से मार डाला और दूसरे एक की नाक काट ली।

इतना करने पर भी अलिया सही-सलामत था ! किसी मूर्ख अधिकारी के थोड़ा-सा गुनाह करते रहने के आश्वासन का वह लाभ उठा रहा था ! देश के नेता खुल्लमखुल्ला आह्वान कर रहे थे कि ऐसी अलियाशाही का त्रास फैलानेवाले को फांसी पर लटका देना चाहिए। अलिया को दिया गया अभय-दान अब जाहिर हो गया था। अलिया को काबू में किये बिना अब कोई चारा नहीं था।

"अलिया !" एक दिन अलिया के नये चार साथियों में से एक ने उसे चेता दिया, "अब तुम्हें पकड़ लिया जायगा ! खबरदार रहना !"

"अच्छा, यह बात है ! तो चलो, आज आखिरी बार एक लूट ही कर लें। उसके बाद पकड़े जाने पर क्या करना होगा, यह भी देख लेंगे।"

इसके बाद आखिरी मौज कर लेने के लिए अलिया चारों साथियों के साथ एक गांव की सीमा पर एक बरगद के पेड़ के नीचे पहुंचा। पांचों ने चबेना खाया, शराब पी। साथी नशे में लेट गए। इन सोते हुए चारों की बन्दूकें लेकर अलिया भाग गया। पर उत्तरसंडा की सीमा पर एक खेत में घेरकर पुलिस ने उसे पकड़ लिया। उसे फांसी दी गई। उसकी लाश को बोरसद ले जाने दिया गया। वहां उसे दफनाकर मुसलमानों ने उसपर कब्र बनवाई। आज वह अलिया पीर बना है और उसकी कब्र पूजी जाती है !

(६)

"कहो क्या समाचार है ?"

"बोलो...भाई कैसे आना हुआ ?"

"भगत तो, अभी महीकांठे से इस पार अपने तालुके में आये हुए हैं न ? मेरे घर पर उनकी पद-रज पड़े, ऐसा कोई प्रबन्ध नहीं कर सकते क्या ?"

"अरे, क्यों नहीं ? जरूर हो जायगा।"

"तो ले आइए। मैं भगत के दर्शन करना चाहता हूं।"

भगत, अर्थात् बाबर देवा। खेड़ा जिला छोड़कर मही नदी पार करके, फिलहाल वह भडोंच जिले में आया हुआ था। उसकी पद-रज अपने घर

पर डलवाने के लिए आतुर यह भाई एक पाटीदार थे। भड़ोंच जिले के पादरा तालुका के एक गांव के वह एक महत्त्वपूर्ण व्यक्ति थे। उनका दो-मंजिला मकान था, और भगत की पद-रज अपने घर पर पड़े, इसलिए जिस भाई से उन्होंने बिनती की थी, वह भाई पाटणवाडिया थे। यह पाटणवाड़िया तथा उसका भाई दोनों पादरा तालुका में भगत के मित्र थे। वे भगत के साथ घूमते थे, उन्हें छिपाते थे, खिलाते-पिलाते थे।

एक रात उस मित्र ने जलालपुर गांव के उस पाटीदार नेता के आंगन में लाकर भगत को खड़ा कर दिया। अपने मकान की ऊपर की मंजिल पर ठहराकर बैठाकर उस नेता ने भगत को भोजन कराया और फिर सन्तुष्ट मेहमान से प्रार्थना की, "क्या मेरा एक काम नहीं कर देंगे भगतजी ?"

"हां, जरूर कर दूंगा।" बन्दूकधारी बाबर ने कृपा दिखाई।

"उसके लिए भगत, मैं आपको पांच सौ रुपया दूंगा।"

"कहो क्या काम है ?"

"मेरे गांव के...भाई मेरे प्रतिद्वन्द्वी नेता हैं। यह कांटा मेरे रास्ते से दूर कर दो।"

बाबर को लेकर आनेवाला पाटणवाडिया मित्र स्तब्ध रह गया। परन्तु बाबर ने सिर हिलाकर अपनी स्वीकृति दे दी, "अच्छी बात है। कांटा दूर हो जायगा। पर मेरा भी एक काम कर लेने की शर्त है।"

"कहो।"

भट फौजदार ने मुझे पकड़ने का बीड़ा उठाया है। उसे मैं खत्म करना चाहता हूं। अपने यहां उसे बुलवा लो।"

"अच्छी बात है।" उस नेता ने सौदे का विचार करके उत्तर दिया, "यह तो हो जायगा, पर उसे मेरे घर में मत मारना।"

"अच्छी बात है। आपके घर से निकलने के बाद उसे मारूंगा। लेकिन उसे यहां बुलाना जरूर होगा।"

"जरूर, बुलवा दूंगा।"

इस प्रकार दो अति क्रूर खूनों का आपस में सौदा हुआ। बाबर ने जाने की अनुमति मांगी।

रास्ते में पाटणवाडिया मित्र ने बाबर को समझाया।

"अरे बावरिया, तू भी निरा मूर्ख ही है। उसका वह प्रतिस्पर्द्धी भी तो हमारे लिए काम का है। उसे मारने की स्वीकृति तूने क्या समझकर दी ?"

"लेकिन उस भट फौजदार को जो मैं खत्म करना चाहता हूं। उसका भी तो कोई रास्ता निकालना चाहिए न ?"

"यदि भट को ही खत्म करना हो तो चल हमीं लोग डबका जाकर उसे मार आयें।"

"डबका जाकर ?"

"हां, हां, थाने में जाकर ही मारेंगे।"

"तेरी ऐसी राय है तो चल, वहीं चलते हैं।"

"चल फिर।"

दोनों मित्र रात-रात में ही डबका गांव के पुलिस थाने पर पहुंच गए। कचहरी में लालटेन जल रही थी। एक अधिकारी बैठा-बैठा कुछ लिख रहा था। बाबर ने बन्दूक छोड़ी, लिखनेवाला अधिकारी जमीन पर गिर पड़ा। खूनी भाग गए। पुलिस उनके पीछे दौड़ी। गोलियों की बौछार होने लगी। पुलिस की एक गोली बाबर के पैर में लगी। लेकिन अंधेरे के कारण बच गया। उसको उठाकर उसके साथी जलालपुर में छोटा नाम के एक लुहाणे के घर ले गए। पादरे से डाक्टर बुलाया गया। उसने बाबर के पैर में से गोली निकाली। तीन महीने तक बाबर अपने मित्र छोटे लुहाणे के घर पर छिपा रहा। वहां पड़े-पड़े उसे समाचार मिले कि डबका के पुलिस थाने में जिसे जान से मार डाला था, वह भट फौजदार नहीं था, परन्तु बेचारा नया आया हुआ एक जमादार था। भट फौजदार तो उस रात को गांवों में चौकी करने के लिए घूम रहा था।

इस खून के कारण बाबर का पाटणवाडिया मित्र पकड़ा गया और उसे बत्तीस साल की सजा हुई। बाबर छोटे लुहाणा के आश्रय में सही-सलामत बना रहा। छोटे की औरत मणि को बाबर ने बहन बना लिया। तीन महीने के बाद स्वस्थ होने पर बाबर टुंडाव गांव गया। वहां एक पाटीदार मुखिया का घर उसका आश्रय-स्थान था। मुखिया स्वयं तो

भगत था, पर उसके दो बेटे बावर 'भगत' के पक्के भक्त थे।

बत्तीस साल की सजा पानेवाले बावर के पाटणवाडिया मित्र के भाई-बंध ने एक रात टुंडाव आकर बावर से कहा; "भगत, मेरा भाई तो तेरे पाप से गया। अब वह जेल से जिन्दा बाहर निकलनेवाला नहीं है। लेकिन अब उसकी लड़कियों का क्या होगा ?"

"क्या कह रहे हो...भाई ?"

"कहता हूं कि अब उसकी लड़कियों के शादी-ब्याह का क्या इन्तजाम होगा ?"

"देख भाई।" बावर उकसावे में आ गया,..."भाई की बेटियां मेरी बेटी हैं। मैं उनका ब्याह करूंगा। तुम अपनी जाति में से उनके लिए अच्छे-से-अच्छा वर ढूंढ लाओ। एक से लेकर लाख तक का जो खर्च होगा वह मैं दूंगा।"

बावर से यह वादा कराकर वह पाटणवाडिया पहुंचा बड़ोदे के पुलिस कमिश्नर के पास। भाई की बेटियों के ब्याह की बात तो बहाना था। यह तो बावर को पकड़ा देने का एक षड्यंत्र था। बावर अजेय बना हुआ था। उसका पता नहीं लग रहा था। उसके ठौर-ठिकाने का पता सीसवा-गांव के एक पाटणवाडिया से बड़ी मुश्किल से मिला था। यह पाटणवाडिया अच्छा निशानेबाज था। चोरी करते हुए वह पकड़ा गया था। पुलिस के आदमी को खून करके वह जेल से भाग छूटा और बावर की टोली में जा मिला। फिर वह सीसवा के एक दरजी के घर में पकड़ा गया। उसीसे से यह सुराग मिला कि बावर देवा के साथीदार कौन-कौन हैं। इसी मुखबिरी के आधार पर उस पाटणवाडिया की गरदन पकड़कर पुलिस-कमिश्नर ने यह फन्दा तैयार किया था। एक गोल घेरा बनाकर उसमें घी का दीपक जला पुलिस ने पाटणवाडिया से कहा,"दीया उठा और वचन दे कि तू बावरिया को पकड़वा देगा।"

गोल घेरा, दीया, यह सब पुलिस के लेखे तो एक खेल था। परन्तु उस पाटणवाडिया के मन में तो वह दीया और गोल घेरा बड़ी पवित्र वस्तु थे। दबाव में आकर उसने दीया उठा लिया था। उसके बाद वह अपनी भतीजियों के विवाह की बात बनाकर बावर के पास पहुंचा था।

पुलिस के साथ सलाह-मशविरा करके वह पाटणवाडिया वापस बाबर के पास पहुंचा और उससे कहा, "लड़कियों के लिए हमने अच्छे घर-वर खोज लिये हैं। पर दो हजार रुपये की जरूरत होगी।"

"अच्छा। यह लो मैं छोटू के नाम दो हजार की चिट्ठी लिखे देता हूं।" चिट्ठी लेकर वह फिर पुलिस के पास पहुंचा और लौटकर वापस बाबर के पास आया और कहने लगा, "छोटिया कहता है कि मैं दूसरों को रुपया नहीं दूंगा। बावरिया खुद यहां आकर रुपये ले जाय। ठीक दिन और ठीक समय पर आओगे तो उस समय रुपया तैयार रहेगा। घर में हर समय जोखिम नहीं रखना चाहता। पादरा गांव के साहूकार के यहां से रुपया लाना होगा। अगर तुम समय पर नहीं आये तो उसे रुपया साहूकार को वापस पहुंचाना होगा। घर में वह जोखिम रखना नहीं चाहता।"

"अच्छा।" वावर ने पाटणवाडिया मित्र की मार्फत निश्चित दिन और समय की सूचना भिजवा दी। वह मित्र भला छोटू लुहाणा के यहां क्यों जाने लगा? वह पहुंचा सीधा बड़ोदा।

उसके बाद बाबर के निश्चित किए दिन को बड़ोदा के विश्वामित्री स्टेशन से पादरा तक जानेवाली ट्रालीट्रेन पादरा न रुककर आगे बढ़ी। भोज स्टेशन तथा मोभा स्टेशन के बीच एक स्थान पर उसकी गति धीमी हुई और उसके एक डिब्बे में से सूर्यास्त के बाद होनेवाले प्रथम अंधकार में कई मनुष्य उतर पड़े। इन उतरनेवालों में से एक दक्षिणी भाई डिब्बे में फिर से बैठ जाने के बदले सबके साथ चलने को तैयार हो गए। उनसे कहा गया:

"आप क्यों आ रहे हैं?"

"साहब, मुझे भी आप अपने साथ ले चलें। मुझे भी थोड़ा यश मिल जायगा।"

'यश मिलने' की बात से उस गिरोह में कुछ अव्यक्त हास्य-सी झलक झलकी। और "अच्छा, भाई चलो," यह कहकर टोली का नेता सबको लेकर खेतों के बीचोंबीच सीधा आगे बढ़ने लगा। ज़रा-सी देर में सारा गिरोह अदृश्य हो गया।

ये थे बड़ोदा के पुलिस कमिश्नर और उनके पचीस-पचास साथी, सब पूरे हथियारों से लैस, चुनीदा और परखे हुए सिपाही।

और वह यश प्राप्त करने की लालसा रखनेवाला रेलवे का मराठा फौजदार। बिना आज्ञा के वह उसमें शामिल हुआ, क्योंकि उसे यश प्राप्त करना था।

किसीको कुछ पता भी न चला और यह टोली जलालपुर गांव जा पहुंची। वहां वह अपना व्यूह रचकर इंतजार करने लगी।

छोटिया लुहाणा के घर में एक दीया टिमटिमा रहा था। द्वार अंदर से बंद थे। द्वार के ठीक सामने अंदर एक हिंडोला था, जिस पर रोज की तरह आज एक मनुष्य बैठा झूल रहा था। पर उसने स्त्री का वेश धारण किया हुआ था। छोटिया की पत्नी मणि का यह नित्य का बैठने का स्थान था।

"मणि बहन!" गहरी अंधेरी रात में बाहर से दरवाजे पर धीरे-से एक स्वर सुनाई दिया।

"मणि बहन," दरवाजा खोलो।

द्वार खुला। खोलनेवाला स्त्री-वेशी मनुष्य पीठ फेरकर जल्दी से लौट गया।

दरवाजा खुलवानेवाले दो जने थे। उनमें से पहला, जिसने दरवाजा खोलने को कहा था, दाखिल हुआ। परन्तु अंदर जाते ही तुरन्त ठिठका और उसने अपने पैर बाहर निकालकर अपने साथीदार से कहा, "अरे, मालूम होता है दगा हुआ!"

"अरे यहां दगा कैसा? चल अंदर झटसे।" यह कहकर उस साथी ने पीछे से जोर का धक्का दिया। धक्के से वह शख्स दरवाजे में लड़खड़ाकर गिर पड़ा। वह उठकर खड़ा हो, उससे पहले दरवाजे के दोनों पल्लों के पीछे छिपे दो आदमी उस पर टूट पड़े और उसे अपनी बांहों में कसकर पकड़ लिया। गिरनेवाला इतना बलवान था कि हाथापाई होने लगी, और एक तूफान-सा खड़ा हो गया।

इतने में सीढ़ी पर से कोई दौड़कर उतरने लगा। हड़बड़ी में वह सीढ़ी पर से फिसलकर नीचे आ पड़ा। इतने में अंदर के कमरों में छिपे हुए

लोग भी दौड़कर वहां आ पहुंचे।

दरवाजे में दो आदमियों की बाहों में फंस जानेवाला व्यक्ति था बाबर देवा। और सीढ़ी पर से उतरते-उतरते डर के मारे गिर पड़नेवाले थे, बड़ौदा के पुलिस कमिश्नर। कमरों में से दौड़कर आनेवाले पुलिस के लोग थे। सब घबराये हुए थे, परन्तु सबने मिलकर बाबर को दबोच लिया।

बाबर को जिसने बाहर से धक्का देकर अन्दर धकेला था, पुलिस उसके पीछे दौड़ी। बाबर का वह मित्र भागता हुआ चबूतरे के पास से होकर निकला। चबूतरे पर नाकेबन्दी करके खड़ा हुआ आदमी इस भागते हुए आदमी को डाकू समझकर उसके पीछे दौड़ा। पर पीछे से दौड़ते हुए पुलिस के आदमी ने अंधेरे में उस आदमी को ही डाकू समझकर बंदूक दाग दी। गोली लगते ही उसके प्राण वहीं निकल गए।

पुलिस ने आकर जब देखा उसके मुंह से चीख निकल पड़ी, "अरे, यह तो हमारे साथ के रेल्वे फौजदार हैं!"

मना करने पर भी यश प्राप्त करने की इच्छा से जो इस टुकड़ी में शामिल हुआ था, यह वही रेलवे का मराठा फौजदार था।

× × ×

जलालपुर की सीमा पर उस समय दो आदमी गाड़ी लेकर बैठे हुए थे। गांव में बन्दूकों के छूटने की आवाज उन्होंने सुनी। लोगों की आवाज और शोर भी सुना। वे समझ गए। गाड़ी जोतकर वे भाग गए। टुंडाव गांव से बाबर को गाड़ी में यहां लानेवाले ये दो पाटीदार भाई थे, जिनके भगत पिता टुंडाव गांव के मुखिया थे।

टुंडाव में घर पहुंचकर उन्होंने, घर पर राह देख रही युवती से कहा, "चलो, भाभी!"

स्त्री ने पूछा, "कहां?"

"कावी।"

"क्यों?"

"बाबर भाई ने कहा है कि हम यहां रोक लिये गए हैं, इसलिए तुम्हें अब कावी पहुंचा देना है।"

रातों-रात उस स्त्री को—बाबर की पत्नी को—ये दोनों वहां से ले गए और सुबह दोनों जने घर वापस लौट आए। उसके बाद वह औरत कहां गई, काबी पहुंची या नहीं, जीवित रही या उसकी मृत्यु हो गई, इसका आजतक किसी को पता नहीं चला।

इन दोनों भाइयों के भगत पिता को बाबर के पकड़े जाने के समाचार मिल चुके थे। बाबर की पत्नी के इस प्रकार एकाएक अदृश्य हो जाने से, वह और भी अधिक डर गया। उसके दोनों बेटे तो सवेरा होने के पहले ही घर से भाग निकले।

सुबह हुई। पुलिस दौड़ती हुई वहां पहुंची। तलाशी लेने के लिए पुलिस ने घर में प्रवेश किया तो सबसे पहले उसकी नज़र पड़ी भगत पिता के रस्सी से लटकते हुए मुरदे पर ! बाप ने अपने बेटों की करतूतों के कारण खुद फांसी लगा ली थी।

× × ×

'मैंने जिसे बहन बनाया, उस मणि ने क्या मेरे साथ दगा किया !' बाबर की इस शंका का तुरन्त समाधान हो गया। पुलिस ने छोटे और मणि को पड़ोस के एक घर में बन्द कर रखा था। हिंडोले पर बैठकर मणि का पार्ट अदा करनेवाला और दरवाज़ा खोलनेवाला पुलिस का आदमी था।

एड़ी से चोटी तक शस्त्रधारी पुलिस के बड़े अफसर जिसे पकड़ते समय सीढ़ी पर से फिसलकर गिर पड़े थे, जिसका नाम सुनकर बड़े-बड़े नाम धारियों के भी प्राण सूख जाते थे, उसी बाबर देवा को १९२४ में जब फांसी पर लटकाने के लिए ले जाया गया, तब वह जोर-जोर से रोने लगा।

यह देखकर डाकू डालभा उस समय बोल उठा, "बड़ा नामर्द है रे तू तो ! अरे, जब दूसरों को कत्ल करते थे, खून करते थे, तब क्या यह नहीं जानते थे कि एक दिन हमें भी फांसी पर चढ़ना होगा ? जब यह सब जानता था, तब आज औरतों की तरह रोने क्यों बैठा है ?"

पर अपने साथी का यह ताना भी बाबर के खून को गरमा न सका। वह तो वहीं निढाल होकर जमीन पर पड़ा रहा।

उसको पकड़कर उठाया गया और जोर-जबरदस्ती से फांसी का रस्सा उसके गले में डाला गया और उसे फांसी दी गई।[1]

---

१. खेडा तथा भडोंच जिले में १९१८ से १९२४ तक जो भयानक डाकेजनी चली थी, उसकी यह कथा श्री रविशंकर महाराज की कही हुई बातों के आधार पर मैंने तैयार की है। कितने ही जीवित या मृत पात्रों के नाम तथा स्थलों का मैंने यहां उल्लेख नहीं किया है।
—लेखक



खण्ड २

पांच दिन की जंगम विद्यापीठ

[पिछले पृष्ठों में जो कुछ लिखा गया है, वह सब श्री रविशंकर महाराज के श्रीमुख से जो बातें सुनीं, उन्हींके आधार पर लिखी गई मेरी रचना है। उसी प्रकार के मानव-पात्रों की कल्पना कर ली। वह भूमि, वे गांव, वे खेत, नहरें और कोटरों को भी मैंने अपनी कल्पना-शक्ति के द्वारा ही यहां उपस्थित किया।

शंका हुई—कहीं यह अवास्तविक बात तो नहीं होगी? इस भूमि और इस भूमि की संतानों को प्रत्यक्ष देखना चाहिए। महीकांठा मैंने कभी देखा नहीं था। महाराज से विनती की, "यह प्रदेश हमें दिखाइये।" उन्होंने निमन्त्रण दिया। 'भारती साहित्य संघ' के संचालक श्री ईश्वर लाल दवे तथा मैं महाराज के साथ हो लिये। प्रथम मुकाम बोचासण में किया गया।]

१ : : कलेजा जल रहा है !

बोचासण आश्रम में महाराज ने डाकू बाबा देवा के भाई रामादेवा से हमारी भेंट कराई। यह भी जानकारी मिली कि उसकी मां हेता अभी ज़िन्दा है। "देखो, वह ढोर चरा रही है।"

यह रामादेवा आज किसान बना हुआ है। बाबर की डाकूगिरी के समय में वह सारे कुटुम्ब के साथ जेल में गया था। उसके बाद सारा कुटुम्ब बीजापुर सेटलमेन्ट में रखा गया था। उनकी जमीन सरकार ने जब्त कर ली थी। आज फिर से ये भाई किसान बने हैं और दूसरों की जमीनों को जोत रहे हैं। रामा रविशंकर दादा से विनती कर रहा था :

"देखिये महाराज, हमारी जमीनें हमें वापिस मिलें, इसके लिए कुछ करो न ! हमारे कलेजे (छाती दिखाकर) भीतर से जल रहे हैं।" बालक की तरह वह इस प्रकार कुछ-न-कुछ कहता रहा और शेर-चीते जैसे पाटणवाडियों को अपने कब्जे में रखनेवाले कलाधर रविशंकर महाराज यह सब सुनते जा रहे थे। उनके मुँह पर हल्की-सी मुस्कान मात्र दिखाई दे रही थी।

मैंने पूछा, "तुम्हारे कोई बेटा है क्या ?"

उसने कहा, "हाँ, है क्यों नहीं ! जवान है। देखने में वह दूसरा बावरिया ही लगता है। वही चेहरा-मोहरा !" इतना कहते-कहते चमकती हुई काली देहवाला यह आदमी गर्व से मुस्कराने लगा।

बाबर देवा का गोरेल गाँव यहाँ से एकाध कोस दूर होगा। केवल एक ही चोरी की थी उसने, और इतने ही छोटे बीजारोपण से भयंकर विषवृक्ष बरगद की तरह बढ़कर फैल गया। कैसे-कैसे कितने और जीवन बरबाद हुए। मैं इन सब बातों पर विचार कर रहा था और बाबर के भाई रामा की कितनी ही बातों में इस जाति के उच्च प्रकार के शील को

देखता जा रहा था। वह कहने लगा, "साहब, हमारे पास दस रोटियां हों और घर पर अस्सी मेहमान आ जायं तो भी सब पेट भरकर, तृप्त होकर ही उठेंगे। सब मेहमान अपने मेजमान की इज्जत को बट्टा न लगे, इसके लिए इतने सावधान रहते हैं कि रसोई कम पड़ जाय और कोई भूखा रह जाय तब भी वे ऐसा महसूस नहीं होने देते कि भूखे रह गए हैं।

"किसी के यहां भोजन चल रहा हो, भोजन करनेवालों में से परोसने-वालों को कोई यदि यह कह दे कि 'नहीं, अब कुछ नहीं चाहिए' और हाथ धोने को खड़ा हो जाय तो दूसरे सब यह समझ जायंगे कि भोजन कराने-वाले के यहां कोई कठिनाई है। सब भोजन करनेवाले एक-एक करके शांतिपूर्वक उठ जायंगे; जैसे भोजन करके तृप्त हो गए हों। यही नहीं, बाद में भी किसी से यह नहीं कहेंगे कि किस कारण वे भूखे उठ खड़े हुए थे।"

गुजरात की चोर-डाकू मानी जानेवाली प्राणवान कौम की ऐसी-ऐसी खूबियों का अवलोकन करता हुआ मैं महाराज के साथ आगे बढ़ा जा रहा हूं। मही के किनारे की ओर हम जा रहे हैं। मैं मही के कोटरों को देखना चाहता था, मगरों को देखना चाहता था। उस पानी को भी एक बार देखना चाहता था, जो न कोई तीर्थ है, न बहुत निर्मल, यहाँ-तक कि उस पानी से स्नान भी नहीं किया जा सकता, फिर भी उसके नाम से ली गई शपथ महीवासियों पर गीता की शपथ के समान ही परिणामकारी होती है।

'ले सौगन्ध मही की।' 'पी मही का पानी।' किसी बड़े-से-बड़े अपराध को भी मनवाने का यह मन्त्र है।

सन्देहास्पद व्यक्ति ने यदि अपराध किया होगा तो वह कभी मही की सौगन्ध नहीं खायगा। मही के जल का अंजलि-पान कभी नहीं करेगा। अपराध स्वीकार कर लेगा, जेल जाने के लिए, फांसी पर लटकने के लिए तैयार हो जायगा, पर मही की मर्यादा का कभी लोप नहीं करेगा। इसीलिए सरकारी दफ्तरों में भी मही के पानी से भरी कलसी रखी जाती है।

रामादेवा का 'कलेजा जला जा रहा है, कलेजा।' इस वाक्य को मन में रखकर मैं बोचासण में सोया था।

२ : : कठोर सेवक नहीं है

उस गुजरात युनिवर्सिटी के कर्णधारों से मेरी यह सिफारिश है कि युनिवर्सिटी के प्रत्येक विद्यार्थी को स्नातक की उपाधि देने से पहले उसके लिए यह अनिवार्य शर्त होनी चाहिए कि गुजरात के विशेष प्रदेशों में से किसी एक का पर्यटन उसे कर लेना लाजिमी होगा।

मैंने तो अपनी २९ साल पुरानी बी० ए० की उपाधि को इस प्रवास से पक्का बनाया है। गुजरात के सदा के परिव्राजक तथा निरन्तर गतिशील लोकसेवक महाराज रविशंकर दादा ने केवल चार दिन का यह छोटा-सा प्रवास मुझसे करवाया। चरोतर[1] के मही‌कांठा प्रदेश के केवल पन्द्रह गांवों को चारों ओर से दिखाया। जिस प्रकार एक छोटे से आईने में महाकाय आकाश समाया हुआ-सा दिखाई देता है; सीप-सी छोटी आंख असंख्य जीवों से भरी विशाल दुनिया को अपनी दृष्टि से आवृत्त कर लेती है, महाराज हमारे ऐसे ही नयन थे। उन्होंने इस छोटे से परिभ्रमण में मुझे सचराचर का दर्शन करा दिया। केवल मानव ही नहीं, परन्तु मिट्टी के स्तर और पपड़ी, वनस्पति के हर प्रकार के वृक्ष, पशु-पक्षी और आकाश के नक्षत्रों तक की पहचान उन्होंने कराई। सबसे बड़ी बात तो यह थी कि इतने सालों से उन्होंने जो अनुभव-पुंज एकत्र कर रखा था उसकी विस्तृत सीमा में भी मुझे उन्होंने कोमल एवं सुखद-सावधानी के साथ घुमाया।

यह तो मैं जानता था कि महाराज केवल अपने अंग पर के वस्त्र तथा एक अतिरिक्त छोटी धोती पहनकर पैदल परिभ्रमण करनेवाले परिव्राजक हैं। मैं यह समझता था कि मुझे भी प्रवास में इन्हीं का अनुसरण करना होगा। इसलिए केवल डेढ़ जोड़ी कपड़े लेकर ही मैं चला था और पैरों को ज़रा सहलाकर और पुराने दिनों की याद दिलाकर उनका उत्साह भी बढ़ाता था। परन्तु महाराज ने मेरे लिए अपने खजाने में थोड़ा-सा आश्चर्य भी छिपा रखा था। मेरे साथी ने मुझे अभय करके कहा कि महाराज इतने कठोर तथा शुष्क लोक-सेवक नहीं

१. एक प्रकार का कांटेदार पौधा।

हैं जो आप इतने सहम रहे हैं। वह हमारी शक्ति-मर्यादाओं को समझनेवाले और उसके अनुसार ममतापूर्वक हमारी सब त्रुटियों को निभा लेनेवाले हैं। यह बात सच साबित हुई। पहले कभी वाहन का उपयोग न करनेवाले व्रती महाराज ने हमारे लिए बोचासण-आश्रम की, दूध-से सफेद, दो बैलोंवाली छोटी गाड़ी जुतवाई।

३ : : 'निर्मूली' यानी अंग्रेज सरकार

प्रवास का आरम्भ किया तब से लेकर, अहमदाबाद स्टेशन पर हम अलग हुए तबतक, महाराज मेरे लिए एक प्रकार का जंगम-अध्यापन-वर्ग निरन्तर चलाते रहे। पहला गांव अभी आने को था, पर मार्ग में वृक्ष तो खड़े ही थे। नये प्रदेश का सच्चा परिचय तो उसकी वनौषधि की पहचान के बिना अधूरा ही रहता है। मैं उनसे पूछता जाता था, 'दादा, यह क्या है ?" और वह कहते जाते थे "इसे कांकर कहते हैं। खेत तथा बाग-बाड़ी के चारों ओर इसके पौधे गढ़-कोट की तरह बढ़ जाते हैं। इसकी बाड़ में से कोई आरपार जा नहीं सकता।"

"यह क्या है ?"

"यह चीतल[1] है। इसके मूल को घिसकर शरीर पर लगाने से फफोले उठ आते हैं।"

"अच्छा ! तब तो कुछ रोगों पर आवश्यक फफोले उठाने की सुविधा कुदरत ने ही बना रखी है !"

"यह सफेद आक है। इसके मूल में से गणेश आकृति की गांठ निकलती है।"

"इस वृक्ष पर फैली पड़ी सोने के तार जैसी असंख्य चमकनेवाली टहनियों की बेल को लोग अमरबेल कहते हैं। संस्कृत में इसको 'निर्मूली'

१. एक प्रकार का कांटेदार पौधा।

कहते हैं, अर्थात् इसके जड़ नहीं होती। पृथ्वी पर उगने की उसे आवश्यकता नहीं। इसका एक टुकड़ा लेकर किसी एक वृक्ष पर डाल दो, वह सीधा वृक्ष से ही पोषण प्राप्त कर इतनी अधिक फैल जाती है। इसीलिए लोगों को समझाने के लिए मैं अंग्रेज सरकार का निर्मूली अथवा अमरवेल के नाम से परिचय देता हूं।"

४ : : पैरों में भी आँखें होती हैं

महाराज की यह उपमा कितनी सार्थक है, इस पर मैं अभी विचार ही कर रहा था कि एक गांव आ गया। महाराज कहने लगे, यह झारोला है, बाबर देवा की बहन का गांव। यह बहन उसके साथ डकैती में शामिल थी। पर उस पर शक होने से बाबर ने बन्दूक की गोली से उसे जान से मार डाला था। चलो, गांव में चलें।

गांव की सीमा पर ही पाटणवाडियों का मुहल्ला था। महाराज हमें वहां ले गए। गोबर में लिपटी भैंसें पड़ी थीं। (महीकांठा के प्रदेश में सार्वजनिक चरागाह नहीं होते। भैंसें लगभग सभी घरों में खूंटे से ही बंधी रहती हैं।) कचरा पड़ा हुआ था और बीच में एक खाट बिछी थी।

"पधारिये महाराज! कहां से आ रहे हैं? कितने बरसों के बाद आना हुआ आपका?"

"मैं जेल में था। इस कारण नहीं आ सका।"

"महाराज, गांधी महात्मा कहां हैं?"

"जेल में?"

"अरे ओ, ज़रा गद्दा तो ले आ। बैठिये न महाराज!"

"नहीं, हम बैठेंगे नहीं।"

"क्यों, नहीं क्यों बैठेंगे?"

"उधर कांठे में जाना है न!"

"अरे वाह ! रुकेंगे नहीं ? दूध भी नहीं लेंगे ? इस तरह आना भा कहीं आना होता है ? जल्दी हो तो भले पधारो, पर लौटते हुए यहां ज़रूर पधारें। जय जय महाराज !"

बाहर निकल आने पर महाराज ने कहा, "ये मेरे यजमान हैं। इन्हीं के यहां मैं ठहरता हूं और वह गद्दी देखी न ! उसी पर मैं सो रहता हूं। इनका बरामदा देखा है न ! उसी में कहीं पर ईंटों का या पत्थर का चूल्हा बनाकर भगोनी में खिचड़ी पका लेता हूं और भोजन कर लेता हूं। आज तो मैं यहां बहुत वर्षों के बाद आया हूं। परन्तु जब मैं यहां काम करता था तब रातदिन चलता ही रहता था। बीच-बीच में हरेक गांव में जाकर इन लोगों के मुहल्ले में पहुंचकर इनके बाल-बच्चे तथा स्त्रियों की कुशलता के समाचार पूछकर दूसरे गांव चला जाता था। वह जो मुझसे बात कर रहा था वह बाबर का बहनोई है। उसने अपनी औरत को छोड़ दिया है, क्योंकि वह बदचलन हो गई थी।"

कान महाराज के ये शब्द सुन रहे थे। पर उस समय कल्पना पीछे की ओर दौड़ रही थी, उस गंदी गद्दी की ओर, मच्छर और जंतुओं से भरी हुई गली की ओर। महाराज का वह बिस्तर, रसोईघर और उनकी बैठक की ओर, जहां दो मुट्ठी खिचड़ी एक बार पकाकर बिना घी के, और कभी-कभी तो नमक और हल्दी के बिना ही, वह खा लेते थे। चौबीस घंटे में एक ही बार आहार लेते थे, और एक ही बार जलपान करते थे। उसके बाद बस चलना-ही-चलना उनका होता था ! धूप में, सर्दी में, बारिश में, प्रकाश में या अंधकार में निरंतर चलना ही उन्हें पसन्द था। वह कहते हैं कि अंधेरी रात में चलने में मुझे अधिक-से-अधिक और सच्चा आनन्द मिलता है। कोई देखता नहीं और सम्पूर्ण अकेलापन रहता है। चलते-चलते आंखों में नींद आने लगे तब भी पैर तो चलते ही रहते हैं। मैं कभी रास्ता नहीं भूलता। मही के कैसे भी विकट कोटरों में से क्यों न चल रहा होऊं, मेरे पैर तो सच्चे मार्ग पर ही चलते रहते हैं। इसीलिए मैं लोगों से कहता हूं कि मनुष्य के पैरों में भी आंखें होती हैं, दृष्टि होती है।"

५ : : स्वप्न में लक्ष्मी आती है

गुजरात की चमकती हुई आंख-सा रास गांव आ पहुंचा। गांव के बाहर 'गांधी आश्रम' है। स्वच्छ दवाखाना है। खुली जमीन है और खेत हैं। कुएं से यंत्र द्वारा पानी खींचा जाता है और खेतों में दिया जाता है, नई जमीन साफ की जा रही है। कटी हुई लकड़ी व्यवस्थित ढेरों में रखी गई है। जमीन की नपाई चल रही है और शुभमुहूर्त्त में वहां स्व० कस्तूरबा स्मारक अस्पताल की नींव रखने की तैयारी हो रही है।

महाराज ने कहा, "अकेले इस गांव ने कस्तूरबा स्मारक-निधि में इक्कीस हजार रुपये भरे हैं। मुसलमानों ने, कोली-मोची ने, ढेढ-भंगी ने सभी ने इसमें कुछ-न-कुछ दिया है। रास गांव की यही विशेषता है। राष्ट्रीय आन्दोलन में यह गांव १९२२ से आगे रहा है। १९३० के संग्राम में महसूल न देने के कारण यहां की हजारों बीघा जमीन जब्त की गई और सरकारी अधिकारी आया। वह हमारे इन भोले गरासियों से (बारैया ठाकुरों से) कहने लगा, 'लक्ष्मी सपने में आकर मुझसे यह कह गई है कि मैंने ही गांधीजी को उल्टी बुद्धि सुझाई है, क्योंकि मैं गरासिया लोगों को ऊंचा उठाना चाहती हूं। इसलिए मेरे गरासिया भाई, ले लो जमीन', यह कहकर पानी के मोल उनसे जमीन खरीदवाई। लोग शांत रहे। गांधी-अर्विन समझौता हुआ, उसमें यह जमीन वापस नहीं लौटाई। अन्त में कांग्रेस सरकार के सत्ता प्राप्त करने के बाद ही यह जमीन वापस मिली। और क्योंकि बल्लभभाई ने कहा था, 'जमीन तो ढोल-नगारे बजाती हुई लौट आयगी।' इसलिए जमीन उसके पुराने मालिकों को सौंपते समय हमने यहां ढोल-नगारे बजाये थे।"

६ : : बूढ़ा मोती

हमारे यहां मोती भाई नाम के बूढ़े थे। अब तो वह नहीं रहे। पर सन् ३० के संग्राम में दूसरे कई लोगों को सरकार ने पकड़ा, पर उन्हें नहीं पकड़ा। एक दिन वह पत्रिका पढ़ते हुए पकड़े गए। पुलिस के बड़े अधिकारी को उनका बुढ़ापा देखकर दया आई। उन पर से मुकदमा उठा लेने की गरज से उन्होंने उनसे पूछा, "क्यों बूढ़े, यह पत्रिका तो तुम्हें किसी ने बाहर से भेजी थी न ?" बूढ़े ने जवाब दिया, "क्या कहते हो भेजी किसने ? मुझे पत्रिका कौन भेजेगा ? मैं तो इसका नियमित ग्राहक बना हूं। मैं अभी कोई नया इस काम में शामिल हुआ हूं ? मैं तो १९२२ से सत्याग्रही हूं।" इस प्रकार अपराध स्वीकार कर वह जेल में गये। बाहर आने पर उनकी जमीन तो छीन ही ली गई थी, वह खुद वृद्ध और जराजीर्ण भी हो गए थे। हम लोगों ने उनकी सहायता करने की बात कही तो वह क्रोध करके बोल उठे, "अब मैं सहायता स्वीकार करूंगा ? मैं दूसरे के पैसे से अपना निर्वाह करूंगा ? मुझे जानते हो ? मैं राणा प्रताप का वंशज हूं।" ईश्वर जाने उन्होंने किस प्रकार से अपने को राणा प्रताप का वंशज बताया, परन्तु पूरी बेहाली की अवस्था में भी बूढ़े मोती के अरमानों से उसकी खानदानी कुलीनता प्रमाणित हो रही थी। अच्छे खानदानी लोगों ने उनके यहां अपनी कन्याएं ब्याहीं और उनकी कन्याएं ऊंचे खानदानी कुटुम्बों में ब्याही गईं।

रास को गुजरात की लाल आंख बनानेवाले एक सत्पुरुष का यह इतिहास महाराज से पहली ही बार सुन रहा था। महाराज के साथ हम आगे बढ़े जा रहे थे और महाराज श्री आशा भाई की मूक-यातनाओं का वर्णन कर रहे थे। आशा भाई ने अपने कितने ही बलिदानों से गांवों को प्रेरणा देकर पानी चढ़ाया था, जमीनें गईं तब तो उन्होंने गांव की गालियां भी खाई थीं। पर आज वह गांव के सबसे अधिक प्रिय जन थे। वह हंसते रहते थे और कस्तूरबा स्मारक की झोली चालीस हजार तक पहुंची थी, फिर भी उसे गांव-गांव घुमाते हुए वह घूम रहे थे।

× × ×

दूसरा गांव आने तक मानो दम निकला जाता था, ऐसे चरोतर-महीकांठा के गाऊ (कोस) हैं। काठियावाड़ी गाऊ से उलटे ये गुजराती गाऊ होते हैं, डेढ़-डेढ़ मील का गाऊ होता है यहां; और बीच-बीच में पास-पास ही पेड़ों के झुरमुटों में गांव होते हैं। जगह-जगह पर कुएं हैं। कूक, कूक, कूक आवाज़ करते हुए एंजिन चलते रहते हैं। दिन-रात पंप पानी खींचते रहते हैं। आधे बीघे जमीन से भी किसान निहाल हो रहता है। कैंथ, खीरनी और शरीफों के पेड़ों से इनके खेतों की बाड़ें बनती हैं। ऐसी यहां की चारुतरा वसुंधरा है। फिर उसे तेल का बे-हिसाब साधन मिल गया है। तब यह जमीन सोना क्यों नहीं उगलेगी ? यों तो सौराष्ट्र की धरती में भी निकल सकता है, पर वहां के उद्यमी किसानों को तेल कौन देगा ? अधिक अनाज वोओ, नहीं बोओगे तो पीठ की चमड़ी उधेड़ देंगे ! चाहे जो कहो पर वोओ ज़रूर। पर बैल नाम के जो दो अस्थि-पिंजर पिछले पैरों को घसीटते जा रहे हैं, उनसे अधिक अनाज भला बुवाया कैसे जा सकता है !

७ : : 'चोर और साहूकार की' लीलाभूमि

रास छोड़ा, अमीआद भी पार किया, और कणभा आया, जिसके साथ एक सबल संस्मरण जुड़ा हुआ है। सीमा के नजदीक का एक खेत दिखाते हुए महाराज ने कहा, "यह वही खेत है जिसमें से गोकुल पाटण-वाडिया ने चुराये हुए घी के डिब्बे निकालकर दिये थे। चोर कौन, साहूकार कौन' वाले प्रकरण में यह किस्सा पिछले पृष्ठों में दिया गया है। चोरी नहीं करना, और अगर चोरी हो जाय तो पुलिस में उसकी फरियाद भी न करो। चोरी और चोर को महाराज पकड़ेंगे। इस प्रकार का लोगों से साथ इकरारनामा करके जब महाराज यहां जन-सेवा का काम करने के लिए बैठ गए थे, उस समय की यह बात है।

कणभा के एक लुहाणे के घी के दो डिब्बे चोरी गए थे। महाराज ने यहां बैठकर मौन-तप आरम्भ किया था। उनसे खाना नहीं खाया गया। तीन दिन तक महाराज ने निर्जल उपवास किया। गांव के मुसलमान मुखिया दाजी किसान ने लोगों से कहा, "कोई भी खाना खाने घर नहीं जायगा।" और रात को सब के सो जाने पर चोर—गोकुल ने स्वयं चुपचाप महाराज के पैर का अंगूठा दबाकर उन्हें जगाया और अपने पीछे-पीछे अंधेरे में ही खेतों में ले गया। एक जगह पर जाकर उसने डिब्बों को खटखटाकर इशारा किया। महाराज स्वयं उन डिब्बों को उठाकर रात को ही लुहाणा के पास ले गए। पर उसमें एक डिब्बा तो घी का था और दूसरा तेल का निकला।

दूसरे दिन भी महाराज का अनशन चालू रहा। शाम को गोकुल ने महाराज को अपने घर बुलाकर चोरी का स्वीकार किया। फौजदार को ४० रुपये रिश्वत देने के लिए एक डिब्बा बेच देने की बात भी स्वीकार की। अपनी भैंस के घी से लुहाणा की हानि पूरी करने का वचन दिया। फिर महाराज के उपवास छुड़ाने के लिए पाव खजूर की आवश्यकता हुई तो इसी लुहाणा ने उसकी दो आना कीमत मांगने की बेहयाई दिखाई।

८ : : मुसलमान किसान दाजी

यह कणभा गांव इस प्रकार के एक लाक्षणिक प्रसंग की लीलाभूमि थी और मैं उसके तीनों पात्रों को देखना चाहता था। "जो होनी थी सो हो गई, पर आप इतना करेंगे," यह मैं नहीं जानता था, महाराज!" यह कह कर अपनी चोरी को स्वीकार करनेवाला गोकुल, पचास-साठ रुपये का अपना माल लेकर लौट आया, फिर भी खजूर के दो आने सबके सामने मुंह खोलकर मांगने में न हिचकिचानेवाला लुहाणा और उसका तिरस्कार

करनेवाला मुसलमान किसान दाजी, इन तीनों को मैं देखना चाहता था।

वड़ी-बड़ी मूंछोंवाले दाजी किसान को, हाथ में हुक्का लिये उसी मंदिर में, जहाँ महाराज ने उपवास किया था। हर्ष से भरा हुआ महाराज को पालागन करता हुआ और आनन्द में खोया-सा मैंने देखा।

गांव को देखकर, वहाँ के आदमियों और स्थान को देखकर महाराज को भी स्वत: नए-नए प्रसंगों का स्मरण हो आता था! इन प्रसंगों का एक ही लक्ष्य था और वह यह कि इन लोगों के भीतर, उनकी प्रकृति के स्तरों में ऐसा कौन-सा मंगल तत्व पड़ा हुआ है, जिससे आर्कषित होकर वह उनके प्रेम में डूबे हुए हैं। उदाहरण के तौर पर, यहां एक जीवा जेशंग नाम का पाटणवाडिया था। उसने तथा दाजी ने मिलकर एक विदेश में रहनेवाले ब्राह्मण के एक पुराने आम के पेड़ पर कब्जा कर लिया था। ब्राह्मण उनसे उसका कब्जा वापस मांग रहा था, पर वे उसे देने को तैयार नहीं थे। उस पर उनका कब्जा है, ऐसा वे सिद्ध कर बैठे थे। फिर यह किस्सा मेरे समक्ष आया। मैंने आकर पूछा, "अरे, जीवा और दाजी, क्या यह सच है?" कुछ देर के बाद जीवा दाजी से कहने लगा, "अरे दाजी, हम लोग सत्याग्रह में जो शामिल हो गए हैं। अब झूठ कैसे बोल सकेंगे?" दाजी ने कहा, "नहीं, झूठ तो नहीं बोल सकते।" और तुरत महाराज से कहा, "महाराज, सत्याग्रही झूठ तो बोल नहीं सकता। यह आम हमारा नहीं है, वह तो उस ब्राह्मण का ही है।" इतना कहकर उसका कब्जा उस ब्राह्मण को सौंप दिया। वे पाप-पुण्य की लंबी-लंबी चर्चा में नहीं पड़े और न उन्होंने प्रायश्चित्त का दंभी प्रदर्शन ही किया। जो अंतर में जगा उसे सच माना और उसका आचरण किया।

९ : : इच्छा बा

"ए भैया !"

"क्या है, इच्छा बा ?"

'ऐसा कहीं होता है भैया ! केवल खिचड़ी बनाने को ही कहा। यह क्या मेरे जी को अच्छा लगता है ?"

"भैया, अरे भैया !" बोलने का यह ढंग और लहजा आज भी मेरे कानों से दूर नहीं हुआ है। कणभा से आगे कठाणा गांव आता है। गांव की दाधीच ब्राह्मण वृद्धा इच्छा बा का कंठ 'भैया, अरे भैया !' की लंबी लहजे-भरी बोली से सूख रहा था। चार घंटे वहां हम रहे होंगे, इतनी देर में अधिक नहीं तो कम-से-कम पचास बार 'भैया'—'अरे भैया' शब्द इच्छा बा के कंठ को आर्द्र करता रहा होगा।

इच्छा बा के घर में अंधेरा था। अस्सी साल की वृद्धा के अंतर का प्रकाश ही उसके घर को प्रकाशित कर रहा था। महाराज ने इनके बारे में जो बातें कही थीं, उनको लेकर मैंने जो उनकी कल्पनामूर्ति गढ़कर तैयार की थी, उससे उनकी वास्तविक मूर्ति, सामान्य अनुभव में जैसा होता है उसके विपरीत, अधिक ही सुन्दर प्रतीत हुई। अस्सी साल की उम्र में भी सीधी तनी हुई उनकी गुलाबी देह थी। पन्द्रह मेहमानों की रसोई बनाने में उन्हें कोई कष्ट नहीं होता था। पानी भी गांव की सीमा पर से भर लाती थीं। और जब बैठी हो तो किसी राजमाता-सी प्रतापी दिखाई देती थीं।

महाराज कहने लगे, "सारे खेडा जिले पर बाबर देवा आदि डकैतों के उपद्रवों के कारण सरकार ने जो कड़ा कर लगाया था, उसके विरुद्ध छेड़े गए संग्राम में यह 'कांठा' प्रदेश मुझे सौंपा गया था। उस खंडहर पर एक कच्चा मकान था। उसे मैंने इच्छा बा से किराये पर लिया था। प्रौढ़ वय बीत गई थी और दो, बेटों की वह माता थी। पर वह मुझसे बोलती न थी और मेरे रंग-ढंग देखती रहती थी। मैं अपने हाथ से भोजन बनाता था। एक भगोनी या ऐसा ही नाम-मात्र का बर्तन था। कोदों और मूंग की दो हंडिया थीं। एक बार मैंने खिचड़ी चढ़ाई। परन्तु कोदों

कूटे हुए नहीं थे और मुझे इसके बारे में किसी प्रकार का ज्ञान नहीं था। खिचड़ी बिलकुल कच्ची रह गई। खाने बैठा, कुछ खा न सका। उठाकर सारी खिचड़ी कुत्ते को डाल दी। इच्छा बा ने यह देख लिया। इसके बाद मैं दो-चार दिन के लिए बाहर गांव चला गया था। लौटने पर देखता हूं कि मकान सारा लीपा और पोता गया है। मकान की सूरत ही सारी बदल गई थी। डर लगा कि कहीं किसी और को तो किराये पर नहीं उठा दिया गया है। अंदर जाकर देखा तो मेरी भगोनी या हंडिया का कोई पता न था। मैंने पूछताछ की। पहली बार इच्छा बा की जबान खुली। वह बोली, "भाई, अब तुम्हें वहां खाना पकाने की ज़रूरत नहीं है।"

"क्यों, ?"

"आज से यहां जीमना है।"

"आखिर क्यों ?"

"क्योंकि तुम्हें पकाना तो आता नहीं है।"

"किसने कहा ?"

"इसमें कहना क्या है ? तुमने उस दिन जो कोदों पकाये थे, उनको मैंने भी देखा था।"

१० : : गांधीजी की सभ्यता

"उस दिन से इच्छा बा प्रतिदिन सुबह होते ही मेरा चरखा ठीक तैयार करके पूनियों के साथ मेरे पास रख देती थी और कहती थी, 'भाई, तुम अपना चरखा कातो !' और फिर खाने के समय बुलाती थी, 'उठो भाई, खाना खा लो।' खिलाती खिचड़ी ही थी। ऊपर से तो कुछ दिखाई नहीं देता था, पर जैसे-जैसे मैं खिचड़ी खाता जाता था, अंदर से घी के डले-से निकलते जाते थे। खाना खा लेने के बाद फिर वह कहती, 'अब जाओ, कातने बैठ जाओ।' पानी भी वह स्वयं ही पिला

जाती थी। मुझे चरखे पर से उठने नहीं देती थी। गांधीजी कांठा में आये, तब मैंने उन्हें इच्छा बा के घर ही ठहराया था। मेरा ख्याल था कि महात्माजी बोरसद में स्नानादि से निवृत्त होकर ही आयेंगे। पर आये बिना स्नान किये। महात्माजी का स्नान कितनी सावधानी का विषय है, यह मैं जानता था, इसलिए मैं बड़े पशोपेश में पड़ गया। आखिर इच्छा बा की अंधेरी कोठरी में एक मोरी थी, उसका आश्रय लिया। गांधीजी को स्थान दिखाया तो उन्होंने कहा, 'वाह! यह तो बहुत अच्छा है।' सुकड़-सुकड़ाकर उसीमें बैठकर वह नहाये। उनकी भीगी धोती को धोने-निचोड़ने के लिए मैं गया तो उसे अपने पैरों के नीचे दबाकर वह कहने लगे, 'तुम नहीं, तुम्हें नहीं निचोड़ने दूंगा।' यह कहकर उन्होंने देवदास भाई को बुलाकर उन्हें उसे निचोड़ने के लिए कहा।"

"कारण?"

"कारण यह कि मैं ब्राह्मण हूं। महात्माजी की यह नम्रता व सभ्यता है। ब्राह्मण से ऐसा काम नहीं लिया जाता है।"

इच्छा बा के घर पहुंचकर कांठा के गरासियों से मैंने पहली बार परिचय प्राप्त किया। वे ठाकोर—ठाकरडा—कहलाते हैं। वैसे वे स्वयं तो अपने को गरासिया कहलवाते हैं। वारैया या धाराला नाम उन्हें पसन्द नहीं है। सरकारी दफ्तरों में वे 'पगी' के नाम से पहचाने जाते हैं; परन्तु वे यह मानते हैं कि उनके अज्ञानी पूर्वजों ने यह नाम वहां घुस जाने दिया है। महाराज के तो वे मित्र-जैसे हैं। उनकी रहन-सहन सुघड़ है। बात-चीत धीमी और सभ्य। शरीर से मजबूत। मही का तीन गाऊ (कोस) का पाट पारकर जाना, मही के छाती-भर जल के ज्वार में कूद पड़ना, उसके भयानक कोटरों में घूमना यह तो उनके बायें हाथ का खेल है। आश्चर्य तो इस बात का है कि ये गरासिया ठाकोर देह-शृंगार का शौक क्यों नहीं रखते हैं! कहां काठियावाड़ी की ऐंठदार पगड़ियां, सिर पर कंघी की हुई जुल्फें, कमर पर दुपट्टे का उमेठा हुआ कमरबंद, चमकदार कड़ीदार लाठियां और कहां ये सिर पर जैसे-तैसे लपेटे हुए साफे! शौकीनी का ढंग न हो, पर वेशभूषा में रसिकता भी नहीं है इनमें।

११ :: मानवता की करुणा

मैं अभी यही विचार कर ही रहा था कि इन लोगों की अस्त-व्यस्त वेशभूषा में ढकी-पड़ी एक करुणापूर्ण मानवता का परिचय करानेवाला किस्सा महाराज ने सुनाना शुरू कर दिया।

जब मैं यहां रहता था, तो एक दिन बहुत रात बीते, यह पास ही दिखाई देनेवाले उस फौजदार के मकान के दरवाजे पर एक आदमी ने आकर आवाज दी, "फौजदार साहब !"

फौजदार ने अटारी पर से ही खिड़की में से झांक कर पूछा, "कौन है ?"

आनेवाले ने कहा, "दरवाजा खोलिये।"

"क्यों ?"

उत्तर मिला, "मैं खून करके आया हूं। आप मुझे यहां गिरफ्तार करना चाहेंगे या मैं बोरसद जाकर अपने को पेश करूं ?"

फौजदार आश्चर्य-चकित होकर नीचे उतरकर आये। आदमी को देखा। वह बिल्कुल शान्त और पूरे होश में खड़ा था। फौजदार ने पूछा :

"तुम्हारा नाम ?" उसने कहा, "महीजी।"

"कौन हो ?"

"गरासिया।"

"कहां और कब खून किया है ?"

"अभी हाल ही में। खून करके चला आ रहा हूं। अपने खेत पर ही खून किया है। वहीं पड़े हैं उसके टुकड़े।"

फौजदार कहने लगे, "अरे मूर्ख ! अभी से तू इस खून की जिम्मेदारी अपने ऊपर क्यों ले रहा है ? तुझे फांसी हो जायगी।"

उत्तर में महीजी ने कहा, "मैं जानता हूं। मैंने खून किया, उस समय भी मुझे इसका ज्ञान था। मुझे फांसी होगी तो वह मैं सह सकूंगा, लेकिन जो मैंने देखा है, उसे मैं सहन नहीं कर सका।"

"क्या देखा ?"

उसने कहा, "मैंने देखा कि मेरी ही खाट पर और मेरे ही बिस्तर

पर दो जने एक साथ सोये हुए हैं—मेरी पत्नी और जिसके मैंने टुकड़े किये हुए हैं, वह ।"

१२ : : कुरूप और कुआरजा

"सागर, ओ सागर !"

"क्या है, मही ?"

"मुझसे शादी नहीं करेगा ?"

"नहीं करूंगा ।"

"क्यों ?"

"तू काली है इसलिए ।"

"तो देख लेना !"

यह कहकर मही लौट चली और फिर उसने पत्थर लाने शुरू किये । बहा-बहाकर वह सागर को पत्थरों से भरने लगी । सागर तोवा करने लगा । कहीं यह कलूटी मुझे सारा-का-सारा पत्थरों से भर न दे ! कहने लगा :

"अच्छा, भाई, मैं तुझसे शादी करूंगा । दोनों की शादी हुई । मही-सागर की शादी की हवन-वेदी के नाम पर वासणा गांव के पास एक चबूतरा दिखाया जाता है ।

चांपोल तथा बदलपुर नामक दो गांवों के पास इस भयावह मही को मैंने देखा । देखते ही मुझे विश्वास हुआ कि यह चंडी सचमुच सागर के गले पड़ गई, और उसने दबाव में आकर ही उससे शादी की है । परन्तु मही-सागर का यह विवाह एक कहर ही साबित हुआ । मैं जब मही की वत्सला जननी के रूप में कल्पना करने में मगन था, मार्ग में महाराज बार-बार यही कह रहे थे कि "यह मही न पीने के काम की, न खेती के उपयोग की और न स्नान के ही काम की है । केवल सौगंध लेने के लिए

ही उसका उपयोग होता है।" उस समय मुझे उसके सच्चे रूप की जानकारी नहीं थी। परन्तु तारीख २-३-४५ की संध्या के समय बदलपुर के ऊंचे टीले से लगाकर पौन कोस ऊंची-नीची धरती पार करके हमने जब मही के पाट पर पैर रखे, तब हमें मही, विकराल, षड्यंत्रकारी, कुरूप और कुभारजा ही प्रतीत हुई। पुरुष होने के कारण मुझे सागर पर दया ही आने लगी।

१३ : : रसाल धरती का विनाश

बदलपुर से हमारा प्रवास पांच-सात कोस तक मही के किनारे-किनारे ही चल रहा था। मही-सागर के तटवासी ग्राम तथा मही के बीच मील-डेढ़ मील धरती गहरी खुदी हुई थी। धरती की सतह से बीस-पच्चीस फुट नीचे से होकर बैलगाड़ी का मार्ग जाता था। दस-बीस वर्ष पहले मही के तट पर अच्छे-खासे गांव बसे होंगे। उन्हें मही की ओर बड़े वेग से बहनेवाले बरसाती जल-प्रवाहों ने छिन्न-भिन्न कर दिया और आज ये बिखरे हुए ग्राम अलग-अलग होकर ऊंचे टीलों पर इस प्रकार खड़े हैं, मानो उनमें पहले कभी किसी प्रकार का कोई सम्बन्ध ही नहीं था। जैसे उन्होंने एक-दूसरे को कभी देखा तक न हो। भाला का टीला, हाला का टीला—इस प्रकार अलग-अलग निवासियों के नाम से ये टीले खड़े थे और बीच में बड़े गहरे और चौड़े खड्ड या खाइयां थीं।

यह २०-२५ फुट गहरा पृथ्वीतल निरी मिट्टी का ही बना हुआ है। सौराष्ट्र में तो तीन हाथ खोदने पर ही बहुत सख्त काला पत्थर मिलने लगता है। उसके विपरीत यहां एकदम् महीन चिकनी और अति रसाल मही-कांठे की जमीन है। ऐसी रसीली पृथ्वी की सैकड़ों एकड़ जमीन को इस प्रकार खोदकर गड्ढे और खाइयां बनाना कितना बड़ा विनाश है! जहां एक बीघे की कीमत पांच हजार बोली जाती है, उसी प्रदेश

की धरती का यह विनाश कितना हानिप्रद है ! किसी उपाय से क्या यह विनाश रोका नहीं जा सकता ? मुझसे यह कहा गया कि जमीन की इस प्रकोप से रक्षा करना बिलकुल आसान है और संभव भी। मही में बहकर जानेवाले जल-प्रवाह को, पृथ्वी की सतह को खोदना न पड़े, इसलिए उसका मार्ग बना देना चाहिए और ऐसा मार्ग तैयार किया जा सकता है।

१४ : : 'मर्म समझनेवाले मनुष्य हैं कहाँ ?'

मही और भी अधिक भयंकर लगी, क्योंकि मैंने उसके किनारे के हरे-भरे होने की कल्पना की थी। धरती का चरण स्पर्श करने को झुकी हुई वनराजि का मैंने मानस-चित्र अंकित किया था। पर इस 'कांठे' की जमीन की स्थिति इससे बिल्कुल अलग है। महीकांठा ऊजड़-वीरान है। गहरे कोटरों से बाहर निकलने के मार्ग डरावने हैं। महीकांठे में पक्षी नहीं बोलते, न ही कूजते। सामने का किनारा (भड़ोंच जिले का) मही के तीन कोस के गमगीन पाट के उस पार निस्तेज छाया की तरह दिखाई दे रहा है। मर्म समझनेवाले मानव मही को पार नहीं कर रहे थे। सोरठी लोककथा की वह रावल नदी, जिससे प्रेम-मग्न गडरिया युवक राणा एक बार अपनी प्रियतमा के बारे में पूछ रहा था :

"हे रावल नदी, जिसका पेट पतला है, जो पीली ओढ़नी ओढ़े हुए है, जिसके उदर पर तीन कमनीय रेखाएं शोभा दे रही हैं, जो हरिनी-सी सुकुमार है, वह मेरी प्रियतमा, मेरी प्रिया कुंवरी तुम्हारे किस घाट पर उतरी है ?"

कोई रसिक इस प्रकार मही से प्रश्न करे, ऐसा यहां का वातावरण नहीं है।

रोज एक बार चढ़नेवाले ज्वार में सागर-नीर के आने का समय आज रात को ११-१२ बजे का है। अभी तो पानी जांघ तक और कहीं-कहीं घुटने तक है। दूर-दूर तक मैं लोगों को कतार बांधे मही का जल

पार करके सामने के किनारे पर जाते हुए देख रहा हूं।

गांव-गांव के बीच इस पार के सिवा और कहीं दूसरी जगह मही पार नहीं की जा सकती है। घाट पर नावें रहती हैं और जब ज्वार आता है, पार जाने के लिए उनका उपयोग होता है।

१५ : : मही के शयन-मन्दिर में

मही के शयन-मंदिर में सागर रोज प्रवेश करता है। सागर के इस ज्वार को 'घोड़ा' कहते हैं। घोड़ा का रूपक जिसने खोज निकाला है, वह धन्य है। नदी में आनेवाले सागर का ज्वार 'घोड़े' के रूप में ही दिखाई देता है। केशवाली श्वेत फेनिल तरंग-शृंग, विलास-मस्ती भरा उच्छल नीर-संचार और घोर-गंभीर नाद से उसका हिनहिनाना ! जब 'घोड़ा' आने का समय होता है तब घाट-घाट पर से मल्लाह अपनी-अपनी नावें घोड़े के सामने एक मील ऊपर ले जाते हैं और जहां नावों का तथा घोड़े का सम्पर्क हुआ, क्षण-भर के लिए तो घोड़ा नावों को अपनी बगल में छुपा लेता है और फिर उसे खेलता-खिलाता, हिनहिनाता वापस विलीन हो जाता है—नदी के विस्तृत अंक में।

१६ : : घी-गुड़ की बनी देह

जहांतक कल्पना का प्रश्न है, यह दृश्य बहुत सुन्दर है। परन्तु मही पार करने का एक किस्सा महाराज ने जो बताया, उससे मेरा मन उदास हो गया। वह बड़ोदा से आ रहे थे। उनके साथ एक भंगी और उसकी बेटी थे। लड़की के हाथ में बालक था और उसके सिर पर बांस का एक

बोझ भी था। मही के घाट पर आये ही थे कि एक आदमी ने आवाज दी, "जल्दी पार उतर जाओ, नहीं तो घोड़ा आ रहा है।" महाराज तो थे बहुत अच्छे तैराक और शरीर से मजबूत। पानी में चलने लगे। उनके पीछे भंगी भी पानी में उतरा और बांस के बोझ को खींचता हुआ चला। उसका ख्याल था कि बेटी उसके पीछे-पीछे बालक को लेकर चली आ रही है। दोनों दूसरे किनारे पर पहुंचे तो उन्होंने पीछे फिरकर देखा कि लड़की तो पानी के अंदर स्तंभित होकर खड़ी है! गोद में बालक है। उन्होंने आवाज दी, "बाई, जल्दी चली आ।" पर बाई के मुंह से शब्द नहीं निकलता था। वह जड़वत् खड़ी थी। फिर आवाज दी, "घोड़ा आ रहा है, ज्वार आ रहा है।" जो आदमी आवाज देता हुआ आया, उससे भंगी ने कहा, "भाई, तुम जाकर मेरी बेटी को इस पार ले आओ।" मल्लाह ने कहा, "क्या दोगे?" भंगी ने कहा, "मेरे पास दो आने हैं, वह ले लो।" "इतने में भला कोई जोखिम ले सकता है?" और वह चला गया। महाराज उस भंगी को और फिर दूर पानी में स्तंभित खड़ी बालकवाली उसकी पुत्री को देखते रहे। दोनों में से किसीमें भी मानो चेतना ही नहीं थी। सिर पर मानो अंतिम विदा का भय लटक रहा था। महाराज तुरंत पीछे लौटकर गये। बाई के पास पहुंचे। बाई से कहा, "चल, पकड़ मेरा हाथ और आगे बढ़।" वह बोलती नहीं थी। वह मानो जीवन-मृत्यु के भेद को भूलकर खड़ी है! महाराज ने जाकर बालक को अपनी गोद में ले लिया। बाई का हाथ पकड़ा और ज्वार के चढ़ते हुए पानी में से उसे बाहर ले जाने लगे। बाई मार्ग में इतना ही बोल सकी, "बापूजी! मेरा जो होना हो, हो, पर मेरे बच्चे को कुछ न हो।" बड़ी कठिनाई से महाराज ने बाई को सामने के किनारे पर पहुंचाया। उस लड़की का बाप बोला:

"बापूजी! आपकी तो घी-गुड़ की हड्डियां हैं, घी-गुड़ की! तभी तो आप इसे ले आ सके। हम लोग भला क्या कर सकते हैं?"

उस दिन भंगी की उस बात को सुनकर महाराज जैसे मुस्कराये थे, उसी प्रकार मंद-मंद मुस्कराते हुए आज भी उन्होंने कहा, "घी-गुड़ की हड्डियां!" पर दरअसल तो उन दिनों एक जून केवल खिचड़ी के सिवा,

गरीब घरों के निकृष्ट कोटि के दो मुट्ठी उबाले हुए अन्न के सिवा और किसी तरह का अन्न उन्होंने नहीं देखा था।

१७ : : क्षुद्र के साथ महान का विनाश

शोकग्रस्त और निर्जन मही-तट पर जो एक मल्लाह मिला, वह लगातार बातें करता हुआ दो-एक महीने पहले मही-सागर में ज्वार के साथ आये हुए एक बड़े मगरमच्छ की बात भी कह गया। ५०-६० हाथ लम्बा, मुंह फाड़ने पर खड़े-खड़े हम उसमें समा जायं, इतने बड़े पेटवाला वह मगरमच्छ यहां चांपोल तक खिंच आया था। मुंह से पानी के फव्वारे छोड़ रहा था। बाद में जब भाटा आया, जल छिछला रह गया, तब वह मच्छ बहुत चीखा-चिल्लाया, तड़फड़ाने लगा। अन्त में वहीं मर गया।

यह बात सुनकर मुझे 'सोन हलामण' की लोककथा याद आ गई :

देश-निकाला दिये जाने के कारण देश से बाहर जानेवाला सोन-वियोगी हलामण सिंध की ओर जाते हुए एक सोरठी नदी (ढेबर या वस्तु) के संगम-मुख के पास एक मच्छ को देखकर कहता है : "भाई मच्छ, तू तो महाजल में रहता है, यहां नदी के छिछले जल में बहकर कैसे आ गया ? ज्वार के तरंग के साथ खिंच आया या सागर ने तुझे स्थान देने से इन्कार कर दिया ? क्या तू भी मेरी ही तरह देश-निकाला पाया हुआ है ?"

मच्छ उसे जवाब देता है :

"हे भाई, ज्वार के समय मैं भूल से छोटी मछलियों के साथ यहां तक चला आया। यह ज्वार फिर उतर जायगा, यह मैं नहीं जानता था। उतरते भाटे में वह छोटा साथी तो लौट गया, पर मैं महाकाय जीव लौट न सका। इस प्रकार मैं महान, एक क्षुद्र मछली के संग रहने के कारण हलका साबित हुआ।"

महो-सागर की ये भयंकर कगारें भी एक दिन सुन्दर थीं। निगल जानेवाली यह निर्जनता भी एक रात्रि को लज्जा से नम्र बनी थी। उसके जनशून्य डरावने घाट, बदलपुर का घाट, दहेवाण का घाट, दूर और नजदीक के सब घाट आनन्द देनेवाली शोभा को धारण कर रहे थे। ठीक पन्द्रह वर्ष पूर्व एक दिन सन् १९३० के अप्रैल महीने की एक तारीख को, संध्या के समय कगारों, कोटरों तथा तटों पर जहां देखो वहां मनुष्यों की भीड़ का कोई पार नहीं था। महात्मा गांधी ने अपनी दांडी-यात्रा के दिनों में जिस दिन मही पार की, तब की यह बात है। महाराज इस दृश्य की तुलना रामचन्द्रजी के वनवास के समय गंगा-पार जाने के प्रसंग से करते हैं।

१८ : : नाविक रंगनाथजी

महात्माजी को मही पार करने के लिए नाव चाहिए। नाव कौन दे ? दहेवाण के ठाकुर का खूब दबदबा था। गरीब मल्लाह नाव दें तो सरकार उनकी जान ले लेती। सरकार के विरुद्ध देशव्यापी विद्रोह जगाते हुए नमक-कानून तोड़ने को दांडी जानेवाले महान विद्रोही को मही पार उतारने का कार्य था। यह कोई साधारण कार्य नहीं था। पार उतरते हुए को धोका हो जाय तो ? नाव में ही कोई दगा कर दे तो ? तो दुनिया को क्या मुंह दिखाया जायगा ?

इस विकट प्रश्न का हल निकालनेवाला एक जवांमर्द बदलपुर में मिला। वह थे गरासिया रंगनाथजी। उन्होंने अपने सर्वस्व की बाजी लगा दी। चार सौ रुपये खर्च करके वह नई नाव ले आये और उसे कनकापरा के घाट पर लगाया। नाव खेने के लिए खुद कर्णधार बने। बापू को बोरसद से कनकापुरा आते-आते रात के दस बज गए थे। अंधेरी रात थी। और बापू को उसी रात और उसी समय उस पार

जाना जरूरी था।

कनकापरा में दण्डेश्वर महादेव के सामने का एक ऊंचा चबूतरा हमने देखा। उस पर बैठकर उस अंधेरी रात में गांधीजी ने लोगों को जो प्रवचन किया, उसका एक वाक्य महाराज ने याद किया, "मैं तो यात्रा को चला हूं। यात्रा पर जानेवाला व्रत करता जाता है, तप करता जाता है और नम्र बनता जाता है।"

और ऐसे व्रती होकर महात्माजी जिस स्थान पर रंगनाथजी गरासिया की नाव पर चढ़े, उस कनकापरा से घाट को दिखाकर महाराज ने बताया कि नाव पर बहुत सारे लोग बिना विचार किये ही चढ़ गए। समझदार लोग भी समझाने पर उतरने को तैयार नहीं थे और रंगनाथजी का हृदय कांप रहा था। आखिर धीरे-धीरे समझदारों को हाथ पकड़-पकड़कर नीचे उतारना पड़ा। रंगनाथजी ने राम का नाम लिया और नाव चलाई, पर भाटा शुरू हो गया था। समुद्र-जल लौट गया था। मुख्य प्रवाह तो पार कर गये। अब दो कोस का नदी का पाट कीचड़ में चलना था। गांधीजी इस कीचड़ में चल रहे थे। मही की ऊंची-ऊंची कगारों पर से जलती हुई सैकड़ों मशालों के प्रकाश में सारा जन-पद यह दृश्य देख रहा था। गांधीजी की छोटी-सी काया रात के अंधकार में मशालों के क्षीण प्रकाश में दिखाई नहीं देती थी। परन्तु कीचड़ में चलते हुए गांधीजी की कल्पना की जा सकती थी। किस जोश से, किस आन्तरिक शक्ति द्वारा यह मानव-पिंजर मही का दो कोस का पाट पार कर गया होगा, यह याद करके रोमांच हो आता है।

१६ : : नौजवान का जोश उतर गया

गांधीजी तो पार गये; पर दो घण्टे बाद ही पं० जवाहरलाल नेहरू की मोटर आकर मही के किनारे पर रुकी। रात के बारह बजे होंगे।

बापू से मिलना बहुत ज़रूरी था। यौवन के उत्साह में उनका खून उछल रहा था। पार उतरने के लिए मही के कीचड़ की बात बताने पर बोल उठे, "अरे, हम तो नौजवान हैं।" और इस नौजवान को पार जाकर बापू से मिलकर और फिर इस तट पर लौट आना था। तबतक मोटर रोके रखने का आदेश देकर वह चल पड़े। परन्तु पार जाने के बाद उन्होंने कहला भेजा—"मोटर लौटा ले जायं। लौट नहीं सकूंगा।" मदांध मही ने इस नौजवान का जोश ठण्डा कर दिया था।

मैं रंगनाथजी को भी देखना चाहता था, पर वृद्ध रंगनाथजी हमारे ठहरने के स्थान पर आकर चले गए थे। हमारी उनसे मुलाकात न हो सकी। इनके पुत्र बहादुरसंग से भेंट हुई। मैंने पूछा, "दहेवाण के ठाकुर स्व० नारसंगजी ने क्या उनके साथ बाद में कोई झगड़ा किया था? सरकार ने क्या रंगनाथजी को सताया था? जानकारी मिली कि नहीं, कोई बात नहीं हुई थी।

२० : : नाक कटेगी

बदलपुर में हमारा मुकाम दधीच ब्राह्मण श्री फूलाशंकर के घर था। इस पंथक में दधीचों की ही बस्ती है। दधीच ब्राह्मण किसान हैं। किसान के स्वभाव में जो अल्प भाषण, बाह्य विनय का अभाव, आन्तरिक सौजन्य तथा आतिथ्य की निराडम्बरी भावना होती है, वही दधीचों में भी है। परन्तु दधीचों में जो ठण्डी ताकत है, जो 'गूढं हि दाहात्मकमस्ति तेजः' होता है और इस निगूढ़ तेज से, किसी अन्य ऐसे ही तेज के साथ संघर्ष में आने पर जो दाह—दावानल प्रकट होता है, उसकी, दहेवाण के दधीचों के सम्बन्ध की कहानी मैं पहले सुन चुका था। दहेवाण जाते हुए मार्ग में मैं उसी कथा को अपनी स्मृति में ताजा कर रहा था।

बाबर देवा तथा दूसरे तीन डकैतों को मिलाकर डकैतों के चार

गिरोह जब खेड़ा जिले में चारों ओर लूट-पाट कर रहे थे, तब पांचवीं ओर से सरकार ने इस प्रदेश के मुसीबतज़दा लोगों पर "हैडिया वेरा" नामक टैक्स लगा दिया था। सरदार वल्लभभाई ने इस कर के विरुद्ध कर न देने का आन्दोलन शुरू किया। स्थान-स्थान पर सत्याग्रहियों की छावनियाँ पड़ी हुई थीं। यह महीकांठा महाराज के जिम्मे था। स्वयं-सेवक कोई थे नहीं, पत्रिका निकालने के लिए यन्त्र नहीं थे। स्वयं पत्रिका लिखकर गांव-गांव में जाते और उसे वह वहां पढ़कर सुनाते थे। प्रत्येक गांव में जाकर उसमें प्रवेश करते ही महाराज लोगों से कहते थे, "मैं तुमको यह कहने आया हूँ कि 'हैडिया वेरा' नहीं देना चाहिए। यदि दोगे तो यह सिद्ध होगा कि हमने चोर और डाकुओं को आश्रय दिया है। इस प्रकार हमारी नाक काटी जाय, यह हम कैसे सह सकेंगे ?"

सच है यह कैसे सहा जायगा ? चाहे जो हो और सब कुछ चला क्यों न जाय, लोगों में से यह प्रतिध्वनि उठने लगती—"हैडिया वेरा, नहीं देना, नहीं देना।" यह गुरु-मन्त्र तेज की लीक बनाता हुआ गांव-गांव में फैल गया।

२१ : : जवांमर्द जीवराम

सरकार के कलक्टर 'हैडिया वेरा' उगाहने के लिए, जो न दे उनके घर-द्वार, ढोर-डंगर जब्त करने के लिए, निकल पड़े। उन्होंने इस 'कांठे' के कुछ ठाकुरों पर, जो बिना हुकूमत के बड़े तालुकेदार हैं, यह दबाव डाला कि वे सरकार को यह कर उगाह कर दें। दहेवाण के ठाकुर स्व० नारसंगजी क्योंकि विवश थे, इसलिए उन्हें सरकार का यह आदेश स्वीकार करना पड़ा। वह एक भयंकर युवक थे। उन्होंने बीड़ा उठाया कि मैं यह कर लोगों से वसूल करूंगा।

दहेवाण दधीच ठाकुरों का गांव है। ब्राह्मण सब गरीब हैं, पर उनमें तेज है, खुमार है। ब्राह्मण हल चलाकर खेत से लौट रहा हो तो भी रास्ते में मिलने पर ठाकुर उनके पैर छूते। इन ब्राह्मणों ने ठाकुरों से कह दिया कि हम यह कर नहीं देंगे।

ठाकुर ने कहा, "मेरी खातिर दे दो!"

"नहीं, आपके खातिर भी हम यह कर तो नहीं देंगे।

"तो मैं जबरदस्ती से वसूल करूंगा।"

इसका उत्तर देने के लिए दधीच पुत्र जीवराम खड़े हुए। उन्होंने कहा, "क्या कहते हो ठाकुर! जबरदस्ती से कर वसूल करोगे! तो आओ, आजमा लो अपनी ताकत। तो हम तैयार हैं, चाहे जिस तरह मुकावला करना हो कर लो। हम भी तैयार हैं।"

पर इस प्रकार सीधी लड़ाई लड़ने के लिए कोई ठाकुर तैयार नहीं हुआ। पर उन्होंने ब्राह्मणों का काम करने से लुहारों व सुनारों को मना कर दिया। इसलिए जीवराम ब्राह्मण ने स्वयं लुहारी का काम करना शुरू किया। कारखाना खोल लिया और खेती के सारे औज़ार तैयार करने लगे, पर दहेवाणवालों ने 'हैंडिया वेरा' दिया ही नहीं।

इन दधीचों ने जिस स्थान पर ठाकुरों को जवाव दिया, वह ब्राह्मण-खिड़की महाराज ने मुझे दहेवाण में दिखाई। पर, जीवराम भाई से मुलाकात न हो सकी।

२२ : : बन्दूक का सामना करनेवाला ब्राह्मण

ठाकुर नारसंगजी का देहान्त हो चुका था, नहीं तो मैं उनसे भी मिलता। 'हैंडिया वेरा' के सम्बन्ध में एक बार महाराज दहेवाण ठाकुर के दरवार में जा पहुंचे।

"पधारो वापूजी," नारसंगजी ने आदरपूर्वक कहा।

"मैं आप लोगों को साफ़-साफ़ बातें सुनाने आया हूं।" यह कहकर महाराज ने स्पष्ट शब्दों में उनके उल्टे-सीधे कामों की—षड्यंत्रों की बातें सुनानी शुरू कीं। ठाकुर की बाहर की मधुरता न जाने कहां गायब हो गई और ज्यों-ज्यों ब्राह्मण की स्पष्ट बातें सुनते गए त्यों-त्यों वह गरम होने लगे और बात 'तू-तू, मैं-मैं' तक पहुंच गई। ठाकुर के पास भरी हुई बन्दूक पड़ी थी, उस पर अचानक उनका हाथ चला गया। यह देख महाराज ने क्रोध और दुखी दिल से कहा :

"ठाकुर, तुम क्षत्रिय हो और मैं ब्राह्मण हूं। तुम्हें ब्राह्मण के बिना तुम्हारे धर्म का स्मरण कौन करायगा ? और क्षत्रिय यदि अपने धर्म का त्याग करेगा तो ब्राह्मण यह कैसे देख सकेगा ? इससे तो यही अच्छा है कि तुम्हारी बन्दूक मुझे खत्म कर डाले।"

यह सुनकर ठाकुर एकदम ठंडे हो गए। और उन्होंने माफी मांगते हुए कहा, 'महाराज, आप यदि ब्राह्मण न होते, और कोई होते तो आपके ये शब्द मैं कभी न सुनता और उसका उत्तर बन्दूक की गोली से ही देता। पर मैं आपके सामने लाचार हूं। आप मुझे सब-कुछ कहने योग्य हैं। मैं आपसे क्षमा मांगता हूं।"

२३ : : गोलियों के निशान

शाम को दहेवाण से गोळवा गये। वहां भी दधीच ब्राह्मण बापूलाल भाई के घर मुकाम किया। उस घर की असली मालकिन नाथी बा का देहान्त हो चुका था। १९३० के अप्रैल में यह वृद्धा ९८ साल की थी, उस समय उसने कनकापुर जाकर दांडी के प्रवासी गांधीजी को आशीर्वाद दिया था।

इस दधीच के दरवाजे पर मुझे बन्दूक की गोलियों के निशान दिखाये गए। मकान के सामने एक मंदिर है। उसकी खिड़की पर भी तीन गोलियों

के निशान अभी मौजूद हैं। ये गोलियां दहेवाण के ठाकुर स्व० नारसंगजी की बन्दूक से निकली थीं। ये निशान शोषक के जोश-खरोश तथा वैर-वृत्ति की अपेक्षा शोषितों की ठंडी ताकत का ही अधिक परिचय देनेवाले हैं। शोषित अर्थात् गोळवा के किसान। गोळवा, दहेवाण, कनकापुरा—कांठा के सारे गांव पुराने जमाने से तो इन लोगों के ही थे। एक दिन इन महीड़ाओं की तथा कोली ठाकुरों की तलवारें न जाने कहां से आकर एकदम चमकने लगीं और सारे प्रदेश पर कब्जा जमा बैठीं। तभी से ये सब गांव इन तलवार बांधनेवालों के हो गए और इन तलवारों को सिर्फ महसूल वसूल करने का अधिकार प्राप्त हो गया।

परन्तु इन तलवारों पर तो अब जंग चढ़ गई है। तलवार उठानेवाले हाथ परदेसी राज्य के चरणों की धूल उठाने का काम कर रहे हैं। उन्हींमें से एक इस पीढ़ी के ठाकुर नारसंगजी हैं।

नारसंगजी ने गोळवा गांव का महसूल बढ़ाने, खेतों पर कब्जा करने और पेड़ों पर भी अपना अधिकार जमाने का यह अच्छा मौका देखा। परन्तु दधीचों तथा पाटणवाडियों ने उनके विरुद्ध मोर्चा जमाया। उनके संघर्ष में किसानों का मार्गदर्शन कराने के लिए स्वयंसेवकों ने गोळवा गांव में अपनी छावनी डाली। छावनी मंदिर में थी और नाथी बा छावनी के स्वयंसेवकों को ही नहीं, बल्कि जो भी कोई वहां आता, उसे निर्भय होकर भोजन कराती थीं।

गुस्से में पागल हुए ठाकुर के भाई भरी बन्दूक लेकर आये और स्वयंसेवकों के इन दोनों आश्रय-स्थानों पर घड़ाधड़ गोलियां छोड़ने लगे। आदमी तो सब बच गए और बन्दूकवाला निस्तेज होकर लौट गया। परन्तु दहेवाण से गोळवे जाते हुए एक स्वयंसेवक को नारसंगजी ने खूब पिटवाया। इसका समाचार महाराज को बारडोली में मिला। वहां से महाराज रवाना हुए और सीधे दहेवाण में दरबार के बंगले पर जा पहुंचे। ठाकुर ने कहा, "पधारो, महाराज!"

महाराज ने कहा, "स्वयंसेवक को क्यों मारा? मुझे मारो और अपना कलेजा ठंडा करो। मैं इसीलिए यहां आया हूं।"

इतने में फौजदार आ पहुंचे और बात वहीं समाप्त हो गई। ठाकुर

चुप हो गए।

गोळवा की गोलीबारी के प्रश्न पर भी लीपापोती हो गई और अन्त में उस लड़ाई में भी समझौता हो गया।

कोटरों के वर्षा-जल ने गोळवा को तोड़-फोड़कर अलग-अलग टीलों में बांट दिया है, फिर भी वह सुन्दर दिखाई दिया। चार दिनों के बाद स्वच्छ आंगन और खिड़कीवाला घर देखने को मिला।

'हैडिया वेरा' के मामले में दहेवाण की तरह गाजणा को भी ऐतिहासिक प्रसिद्धि मिली है। महाराज ने गाजणा की एक रात का अपना अनुभव सुनाया था, इसलिए गाजणा देखने की इच्छा स्वाभाविक थी। उसका किस्सा आगे पढ़िये।

२४ : : धार्मिक ठाकुर

गाजणा के तत्कालीन ठाकुर सरकारी सम्बन्ध के कारण 'हैडिया वेरा' विरोधी आन्दोलन के विरुद्ध थे। पर उनके अपने दरबारगढ़ में भगवान का मंदिर था और वह स्वामीनारायण पंथ के भी माननेवाले थे, इस कारण अस्पृश्यता को न माननेवालों के प्रति उनके मन में स्वाभाविक गुस्सा रहता था। और तभी 'हैडिया वेरा' न देने का आह्वान करते हुए रविशंकर महाराज ने गाजणा में प्रवेश किया। दरबार ने लोगों पर अपनी खासी धाक जमा रखी थी और लोगों से कह रखा था कि 'खबरदार, जो इन गांधीवालों से कोई मिला तो!' जब महाराज वहां पहुंचे तो उनसे मिलने की किसी को भी हिम्मत नहीं हो रही थी। कांठा के गांवों से उनका यह प्रथम परिचय था, इसलिए उन्हें कोई पहचानता भी न था। पर वह तो सीधे दरबारगढ़ में ही जा पहुंचे।

बैठक में जाकर महाराज ने ठाकुर को नमस्कार किया, पर ठाकुर ने उनका किसी भी प्रकार स्वागत या आदर नहीं किया। महाराज

जमीन पर ही बैठ गए। थोड़ी देर के बाद एक मुसलमान अधिकारी वहां आया। ठाकुर ने आसन देकर उसका आदर किया। उसके बाद महाराज से पूछा, "यहां क्यों आये हो ?"

महाराज ने जवाब दिया, "सरकार को 'हैडिया वेरा' नहीं देना है यह कहने के लिए आया हूं। आपसे भी यही कहने आया हूं कि आप भी लोगों को 'हैडिया वेरा' न देने की सलाह दें।"

यह सुनकर ठाकुर ने क्रोध में आकर महाराज से कहा, "अच्छा, अब आप यहां से चले जाइए, और फिर कभी इस गांव में न आना।"

"क्यों न आऊं ?"

"क्यों की क्या बात है ? ब्राह्मण कहते हो और ढेढ़-भंगी को छूते हो, आचार-विचार का कुछ भी खयाल नहीं रखते, इसलिए।" यह सुन महाराज ने कहा :

"ठाकुर साहब, यह सब आप किससे कह रहे हैं ? इसका विचार किया है ? यह सब तो हम ब्राह्मणों का ही सिखाया-पढ़ाया आप तोते की तरह रटे जा रहे हैं। उपदेश देने का अधिकार तो हम ब्राह्मणों का है। आप मुझे उपदेश कैसे देने लगे ?"

"हम क्षत्रिय हैं, इसलिए !"

यह सुन महाराज ने खिड़की की ओर उंगली उठाकर कहा, "आपके बंगले के सामने ही उस लुहाणे की दूकान है। जिस दिन बाबर देवा ने उसे लूटा था, उस दिन आपका क्षत्रियत्व कहां चला गया था, ठाकुर साहब ?"

ठाकुर ने जरा ठंडे होकर रहा, "अच्छा, अब जाइये !"

यह सुनकर महाराज बाहर निकल आए। गांव की सीमा पर एक धर्मशाला थी। उसी निर्जन स्थान में महाराज अकेले जाकर बैठ गए। रात हो गई। ऐसे वक्त वहां कोई मनुष्य आयगा, यह आशा करना बेकार था।

२५ : : 'मैं क्षत्रिय हूं'

पर थोड़ी देर बाद देखा कि एक आदमी आ रहा है। नजदीक आकर उसने महाराज से पूछा, "कहां से आ रहे हो ? यहां अकेले क्यों बैठे हो ?"

महाराज ने कहा, "तुम मेरे पास क्यों आये हो ? यहां से चले जाओ, नहीं तो ठाकुर तुम्हारा नाम सरकार में दे देगा।"

आदमी बोला, "मैं क्षत्रिय हूं। ठाकुर भले ही जो कुछ करना चाहें करें। उठिये, चलिये मेरे साथ।"

"कहाँ ?"

"मेरे घर।"

"पर ठाकुर तुम्हें···"

"सुबह उठकर भले ही ठाकुर मुझे फांसी चढ़ा दें। अभी तो मैं अपने गांव की सीमा पर एक ब्राह्मण को भूखा-प्यासा नहीं रहने दूंगा।"

इस मनुष्य के आग्रह में सचाई पाकर महाराज उसके साथ चले गए। घर ले जाकर उस गरासिया भाई ने महाराज से कहा, "चलिये महाराज, पहले रसोई बनाइये।"

"मैं तो एक बार ही भोजन करता हूं।"

"यह नहीं होगा।"

उसके बहुत आग्रह करते रहने पर महाराज ने बाजरे का कसार[1] खाना स्वीकार किया। महाराज को कसार तथा आचार खिलाकर ही उस भाई को शान्ति हुई। फिर महाराज ने कहा, "मैं गांव के लोगों से मिलना चाहता हूं। इस सम्बन्ध में क्या कुछ हो सकेगा ?"

"क्यों नहीं हो सकेगा ?"

"लेकिन कहां ?"

"स्वामीनारायण के मंदिर में।"

"पर वह तो दरबारगढ़ में है, लोग डरेंगे।"

"लेकिन दूसरी कोई जगह नहीं है। ठाकुर साहब भी सब बातें क्यों

---

१. बाजरे की खिचड़ी।

न सुनें ?"

महाराज के देखते-देखते ही मन्दिर का चौक लोगों से भर गया। महाराज ने 'हैडिया वेरा' पर भाषण किया और लोगों को समझाया कि यह कर वे न दें। सुबह होते ही महाराज तो चले गए, परन्तु बाद में उस गरासिया को ठाकुर ने बुला भेजा और पूछा कि महाराज का भाषण क्यों करवाया ?

गरासिया ने जवाब दिया, "जो सुनना चाहते थे, वे ही वहां आये थे। जो सुनना नहीं चाहते थे उन्हें जबरदस्ती बुलाने कोई नहीं गया। और सुना किसने नहीं है ? कोई खुले में बैठकर सुन रहा था तो कोई किवाड़ों की ओट में बैठकर मुंह छिपाकर सुन रहा होगा।"

उस समय तो ठाकुर चुप कर गए, पर बाद में इस गरासिया पर कोई दूसरा इल्जाम लगाकर उसे सताया गया था, ऐसा पता चला।

इतिहास की इस ताज़ी स्मृति के साथ हम गाजणा पहुंचे। ठाकुर का तो वर्षों पहले देहान्त हो चुका था। उनके पुत्र नये ठाकुर श्री महेरामण-सिंह जी महीडा हैं। उन्हें हमारे पहुंचने के एक दिन पहले ही 'ऑनरेरी मेजिट्रेस्ट' बनाया गया था। महाराज हमें उनसे मुलाकात कराने के लिए ले गए। उन्होंने महाराज का बहुत आदर-सम्मान किया। वह हमें दरबारगढ़ के मन्दिर में भी ले गए। वहां महाराज ने जब स्व० ठाकुर की तसवीर देखी तो अपने साथ घटी कुछ घटनाओं के संस्मरण सुनाये।

श्री महेरामण सिंहजी ने सिर्फ इतना ही कहा, "मैं उस समय आब-कारी विभाग में सरकारी नौकरी कर रहा था।" उनके ये शब्द उनके सौजन्य के परिचायक थे। वह गरासिया भाई, जो महाराज को धर्मशाला से अपने घर ले गए थे, ठाकुर के भानजे थे। यह जानकारी हमें इस प्रवास में मिली, पर उनसे भेट न हो सकी।

हमने जब गाजणा छोड़ा तो 'हैडिया वेरा' की लड़ाई की विजय का इतिहास अर्थात लोगों ने जो शक्ति दिखाई, उसका इतिहास मैं अपनी स्मृति में फिर से दोहरा रहा था। कितनी ही मनोरंजनक बातें याद आने लगीं।

२६ : : स्वयं-सेवकों की क्या आवश्यकता ?

महाराज का स्थायी मुकाम कठाणा में इच्छा बा का घर था। महाराज के एक साथी थे 'गंजे महाराज'। उनका असली नाम तो था गणपतिशंकर, पर लोगों ने उन्हें प्यार का नाम दिया था 'गंजे महाराज'। वह बोलते नहीं थे। खाने के समय वह किसी के घर के द्वार पर जाकर खड़े हो जाते थे; पर मांगते नहीं थे। जो कुछ उनके हाथ में रख दिया जाता, उसीको खाकर वह अपना गुजारा करते थे।

एक रात महाराज को सोते से उन्होंने जगाया।

"क्या बात है ?"

"बोरसद से आदमी आया है।"

"क्या समाचार है ?"

"बुरे समाचार हैं। कलक्टर ने पालेज में मुकाम किया है।"

"किसलिए ?"

"हैडिया वेरा के सम्बन्ध में जब्ती करने के लिए। चांपोल अथवा बदलपुर में जब्ती करेंगे।"

'गंजे महाराज' को महाराज ने रात के ग्यारह बजे सूचना दी, 'लोगों को इकट्ठा करो।"

गंजे महाराज उस रात घर-घर तथा खेत-खेत पर घूम आये। लोग सब हाजिर हो गए। उन्होंने पूछा, "इस समय क्यों बुलाया गया है ?"

महाराज ने कहा, "मेरी आबरू का प्रश्न है। पालेज में कलक्टर पड़ा हुआ है। उसे दहेवाण ठाकुर बुला लाये हैं।"

"कहिये, हमें क्या करना होगा ?"

"कठिनाई इस बात की है कि मेरे जिम्मे बाईस गांव हैं, और स्वयंसेवक मेरे पास एक भी नहीं।"

"क्या नहीं है ?" 'स्वयंसेवक' शब्द को लोग समझ नहीं सके।

"काम करनेवाला कोई नहीं है।"

"लेकिन आपको करना क्या है, यह तो कहो।"

"मैं सारे बाईस गांवों में यह सन्देशा पहुंचाना चाहता हूं कि कोई

भी अपने यहां जब्ती न करावे।"

"लेकिन इसमें स्वयंसेवक की क्या आवश्यकता है ? हम सब अपने घरों पर ताला लगाकर सुबह से ही लोगों को सूचना देने चले जायंगे।

"लेकिन भैंसों का क्या होगा ?"

"भैंसों को बिना रस्सी के ही छोड़ देंगे। फिर वे किसी के हाथ आने से रहीं।"

"और महाराज", कुछ लोगों ने बड़े ठंडे शब्दों में कहा, "बडे-बड़े गांव लटकर लाये और उसका पता नहीं लगने दिया तो फिर घर की एक चक्की छिपाना कौन बड़ी बात है !"

फिर तो गांव के सारे लोग ललकारकर कहने लगे, "देखो भाई, यह महाराज की इज्जत का प्रश्न है। अपने गांव में हम महाराज की आबरू नहीं जाने देंगे।"

२७ : : चक्की तो सरकार को भेंट की

लोगों ने जो कहा था, करके दिखा दिया। लोगों के मन पर एक ही बात का असर था कि यदि हमने 'हेडिया वेरा' दे दिया तो यह बात सच साबित होगी कि हमने लुटेरों को आश्रय दिया था और यह कलंक हमारे सिर पर सदा लगा रहेगा। उन्होंने कहीं भी जब्ती होने नहीं दी। सरकारी अधिकारी हाथ मलते हुए घर लौट गए।

डेढ़ महीने की यह लड़ाई बड़ी आनबान के साथ लड़ी गई। परिणाम यह हुआ कि सरकार को 'हैडिया वेरा' की आज्ञा वापस ही लेनी पड़ी। जो कुछ माल जब्त हुआ भी वह उसके मालिक को वापस देना पड़ा।

"अरे ओ !" सरकारी आदमी ने एक पाटीदार से कहा, "अपनी यह जब्त हुई चक्की तो वापस ले जाओ !"

"मैंने तो वह सरकार को पीसने के लिए दे दी है।"

"नहीं, हमें तो उसे लौटाने का हुक्म हुआ है।"

"तो मेरे घर लाकर रख जाओ।"

जब चक्की उसके घर लाई गई तब उसने कहा :

"या तो इसे वापस ले जाओ, या उसे यहां रखना ही हो तो यह ऐसे ही नहीं रखी जायगी !"

"तो कैसे रखी जायगी ?"

"जहां वह थी, वहीं उसे रखना होगा, और उसकी बैठक आदि के साथ जिस हालत में उसे यहां से उठाया था, उसी हालत में यहां रखना होगा।"

आखिर वह चक्की जिस स्थिति में वह थी, उसी स्थिति में उसे रखवाया गया।

२८ : : जाने नहीं देंगे

'हैडिया वेरा' की लड़ाई समाप्त हुई और महाराज ने अपनी थैली उठाई और कालू गांव के लोगों से कहा :

"अच्छा भाई, रामराम !"

"क्यों महाराज ?"

"जा रहा हूं।"

"कहां जायंगे ?"

"अपने वतन में।"

"हम नहीं जाने देंगे।" लोगों के दिल प्रेम-भाव से उमड़ रहे थे।

"मैं यहां नहीं रह सकता।"

"क्यों ?" महाराज का संग छोड़ना उनके लिए कठिन था।

"मैं यहां नहीं रह सकता क्योंकि मेरा तथा तुम्हारा संबंध बंध चुका है। हमारे दिल मिले हैं। सो मैं तुम्हारे दुःखों को देख नहीं सकूंगा।"

"कैसे दु:ख ? कौन से दु:ख ?" चारों ओर से लोग पूछने लगे।

"दु:ख यह कि तुम चोरी करोगे, शराब पियोगे, दंगा करोगे और पुलिस तुम्हें पकड़कर मारपीट करेगी, यह मुझसे नहीं देखा जायगा।"

"ओह, यह बात है। तो महाराज, हम चोरी नहीं करेंगे, शराब भी नहीं पीएंगे। लेकिन आपको तो यहां से हम जाने नहीं देंगे। अब जाने की बात आप न करें।"

सब लोग झुंड-के-झुंड इकट्ठे हो गए और एक ही आवाज़ सुनाई देने लगी।

"नहीं जाने देंगे, आप चाहेंगे तो हम चोरी-शराब सब छोड़ देंगे, पर जाने नहीं देंगे।"

चोरी न करने तथा शराब न पीने का सामूहिक निर्णय करने के लिए एक दिन निश्चित किया गया। लोग इकट्ठे हुए और उन्होंने निश्चय किया कि कोई भी चोरी न करे और यदि कोई करे तो उसकी शिकायत सरकार में न की जाय। महाराज और गांव के लोग मिलकर चोरी के माल तथा चोर दोनों को अंदर-ही-अंदर खोज निकालें और जिसकी चोरी हुई हो उसके नुकसान को पूरा करने की कोशिश करें।

यह निश्चय तो हो गया। परंतु एक समस्या आ गई। स्थानीय कलाल की दूकान में जो शराब पड़ी है, उसका क्या किया जाय ? कलाल कहने लगे, हम शराब बेचना तो छोड़ दें, पर ठेके की मियाद अभी पूरी नहीं हुई है, और जो शराब पड़ी है, उसका क्या किया जाय ?

"वह सब हम खरीद लेंगे।" लोगों ने मार्ग सुझाया।

"और फिर उसका करेंगे क्या ?" महाराज ने पूछा।

"फिर क्या ? हम सब मिलकर सारी शराब पी जायंगे।"

उन लोगों के भोलेपन पर महाराज हँसे। उन्होंने समझाकर कहा, "जिस काम को न करने की हम प्रतिज्ञा कर रहे हैं, उसे फिर कैसे हम कर सकते हैं ? पर एक काम हो सकता है। तुम लोग कहो तो यह सारी शराब गांव के बाहर ले जाकर हम उसे जला डालें।"

महाराज का यह सुझाव लोगों को विचित्र-सा लगा। शराब को जला डालने से तो अच्छा उसे पी जाना है ! महाराज की बात को वे

समझे हों या न समझे हों, पर इस पवित्र पुरुष का कहना सबने स्वीकार कर लिया।

"अच्छा, तो ऐसा ही करें।"

कलाल की सारी शराब खरीद ली गई और उसे जला देने की व्यवस्था की गई। यह सुनकर फौजदार आया और उसने महाराज से कहा, "सारी-की-सारी शराब एक साथ खरीदना गुनाह है और उसे जलाना भी गुनाह है।"

"तो गांव के हम सब लोग इस गुनाह में शामिल होंगे।" लोगों ने उत्साह से कहा।

महाराज ने कहा, "नहीं, यह गुनाह मैं अकेला ही करूंगा।"

और इस शराब के संग्रह को गांव की सीमा पर ले जाकर जमीन पर फैला दिया और महाराज ने दियासलाई जलाकर उसमें आग लगाई। हाथ-हाथ भर ऊंचे शोले उठने लगे और सब लोग उसे खड़े देखते रहे। सचमुच क्या यह दानव हमेशा के लिए जल जायगा? उनके अंतर में यह मंथन चल रहा था।

२९ : : कामिलिया तेल

इसी प्रकार कठाणा, खटलाश और सारोला की शराब जलाई गई। एक रोज लोगों की भीड़ में बैठे हुए महाराज के पास एक आदमी लोगों की ओर से आया। उसके हाथ में एक शीशी थी, जिसमें लाल रंग की पतली-सी कोई चीज भरी हुई थी। उसने महाराज से कहा, "महाराज यह लीजिए।"

"क्या है यह?"

"यह आप अपने सिर में लगाइये।"

"कैसी बात करते हो भाई! मेरे सिर में बाल कहाँ हैं जो यह

लगाऊं ?"

"नहीं महाराज, सर में जरा-सा लगा तो लो !" सब लोग जोर देकर कहने लगे। "यह शीशी हमने शहर में खास आदमी भेजकर और बारह आना खर्च करके मंगवाई है। खास तौर से आप ही के लिए मंगवाई है। आप जानते हैं, क्या है यह ? यह है कामिलिया तेल ! बड़ी सुंदर खुशबू आती है इसमें।"

कामिलिया तेल की शीशी पर कमर तक फैले हुए केशवाली सुन्दरी का चित्र था और तेल में तेज खुशबू आ रही थी। यह थी कामिलिया हेअर-आयल की शीशी। उत्सव के समय और लोग तो इत्र का उपयोग करते हैं, पर ये गांव के भोले लोग उसकी तीव्र गंध के कारण कामिलिया हेअर आयल को ही इत्र समझ रहे थे। उन्होंने अपने इस उपकारक को अपनी दृष्टि से इस कामिलिया तेल का अधिकारी समझा, और इन शब्दों में आग्रह किया, "यह शीशी तो शहर से खास आपके ही लिए मंगाई गई है। इसे सिर में डालिये तो !"

महाराज से उसे लगाने का आग्रह करते रहे। अपने उपकारक के प्रति यह सबसे बड़ा पुरस्कार था, जो वह देना चाहते थे !

मुसकराकर महाराज ने शीशी ले ली और उसे एक ओर रखवा दिया। महाराज को 'कामिनिया तेल' और उसके ऊपर के चित्र में लंब-केशी कामिनी का सर्वप्रथम परिचय उसी दिन हुआ ! उस परिचय को आज भी महाराज भूले नहीं हैं। आज भी 'कामिलिया तेल' का किस्सा सुनाते-सुनाते वह खिलखिलाकर हँस पड़ते हैं और गांव के लोगों के बोलने के लहजे में ही कहते हैं, "कामिलिया तेल है, डालो सिर में महाराज !"

३० : : जंजीरा पीओ

जैसा 'कामिलिया तेल' का प्रसंग है, वैसा ही दूसरा प्रसंग उन्हें

'जंजीरा' पिलाने का भी है। महाराज को उसका भी बार-बार स्मरण हो आता है।

भादरण से तीन कोस दूर जोशीपुरा गांव के घर सन् १९२७ की भयंकर बाढ़ में बह गए थे। यह इनामी ग्राम था। इसकी ज़मीन बेची नहीं जा सकती थी। ठाकरडाओं के जो झोंपड़े बह गये थे, उनके स्थान पर नये झोंपड़े बनाने की अनुमति पाटीदार लोग देने को तैयार नहीं थे।

"नये घर बनाना हो तो हर घर पर ढाई रुपया मासिक किराया देना होगा।" यह कहकर पाटीदारों ने उनके सामने एक समस्या खड़ी कर दी। ठाकरडाओं को स्वजन माननेवाले महाराज ने कहा, "नहीं, हम किराया नहीं देंगे। दो बीघा ज़मीन खरीद कर उस पर फिर से सब घर खड़े करेंगे।"

"दो बीघे जमीन के नौ हज़ार रुपये होंगे।" पाटीदारों ने कहा।

"देखा जायगा।" यह कहकर महाराज बड़ोदा जा पहुंचे और पुराने गांव से बाहर दो बीघा जमीन सरकार से मुफ्त में प्राप्त कर लौट आये। उस जमीन पर ठाकरडाओं के कच्चे झोंपड़े बनाये जाने ही वाले थे कि सत्याग्रह की लड़ाई में महाराज को जेल में जाना पड़ा। उनके पीछे ठाकरडाओं को दबाकर पाटीदारों ने उनसे यह अरजी लिखवा ली कि हमें यह जमीन नहीं चाहिए। महाराज जब जेल से छूटकर आये तो उन्होंने फिर दूसरी जमीन दिलवाई। उस पर मकान तैयार किये गए। उसके बाद एक दिन एक ठाकरडा मुखिया ने अपनी पिछौड़ी में छिपाई हुई एक बोतल धीरे-धीरे बाहर निकाली और महाराज से कहा, "लो, महाराज! यह पीओ तुम तो!"

"यह क्या है?" ऐसी चीजों से बिल्कुल अनजान महाराज ने बोतल को देखभाल कर आश्चर्य से पूछा।

"यह जंजीरा है जंजीरा, आप पीकर देखो तो!" मुखिया ने कहा और दूसरे सब लोगों ने उसमें अपना स्वर मिलाया, "हां हां, पीओ महाराज, बड़ी अच्छी चीज़ है यह!"

"क्यों पीऊं भाई?"

"इसके पीने से बुखार नहीं आता, और शरीर ठंडा रहता है।"

"पर मुझे तो बुखार कभी आता नहीं और मेरा शरीर भी ठंडा ही रहता है।"

"अरे, पीकर देखो भी तो ! आपके ही लिए तो खास मंगवाया है।"

"जंजीरा, जंजीरा !" यह होती क्या चीज है ? सोडा-लेमन आदि शहराती पीने-जैसी यह भी कोई पान करने की चीज होगी। पर महाराज कुछ समझ नहीं सके।

"इसे फेंक दो !" महाराज ने कहा।

"अरे ! इसके तो पैसे लगे हैं।"

"तो जमीन पर बहा दो।"

"क्यों ? पीने की चीज को जमीन पर क्यों बहावें ?" मुखिया ने कहा।

"यह मैं क्यों पीऊँ ? और तुम लोग भी इन शहरी चीजों में फंसे हो ? इसमें धरा क्या है ? पूरी रोटी तो मिलती नहीं है और जंजीरा पीना सीखे हो। फेंक दो इसे !"

"फेंका क्यों जाय ? आप नहीं पीते तो, यह लड़का पी जायगा।"

खिसियाकर ठाकरडाओं ने वह जंजीरा एक लड़के को पिला दी।

दूसरे दिन महाराज के सामने कुछ लोग बैठे हुए थे। उसी समय वहां से एक ढेढ़ की लड़की निकली। उसके हाथ में कल-जैसी ही एक बोतल थी।

"देखिये महाराज !" ठाकरडा लोग बोल उठे, "जंजीरा तो ये ढेढ़ लोग भी पीते हैं। देखो, यह ढेढ़ की लड़की पीयेगी।"

यह देखकर बार-बार महाराज के दिल में यह प्रश्न उठता रहा, "यह जहर यहां गांव में किसने दाखिल किया ?"

३१ : : पाड़े का खून पीनेवाली चारणी

महो-सागर को दूर छोड़कर हम आगे बढ़ गए। वालवोड गांव आया। वालवोड महाराज के प्रिय पाटणवाडियों का मुख्य स्थान और साथ ही चारणों का भी मुख्य धाम। महेडु तथा देथा शाखा के देवीपुत्रों (चारणों) की यहां अच्छी बस्ती है। महाराज का इन चारणों के साथ जो संपर्क आया, वह एक लाक्षणिक प्रसंग है।

वर्षों पूर्व जब वह वहां गये थे तब मुखिया ने उनसे कहा था, "यहां एक चारणी सूरज बा है। वह जोगमाया का रूप है और पाड़े का लहू पीती है। जब कभी यह प्रसंग आयेगा मैं आपको बुला भेजूंगा।"

महाराज ने 'अच्छा' कहकर जवाब तो दिया, पर इस बात में कोई दिलचस्पी नहीं दिखाई। लेकिन एक वार बोरसद में परिषद् हो रही थी। महाराज उसका अध्यक्ष-स्थान ग्रहण करनेवाले थे। उसी समय वालवोड के मुखिया का बुलावा आया, "बहुत जरूरी काम है, तुरन्त आइये!"

रुधिर पीनेवाली चारणी की बात तो उन्हें याद भी न थी। इसलिए कोई दूसरा बहुत जरूरी काम होगा, यह समझकर महाराज वालवोड पहुंचे।

मुखिया ने कहा, "महाराज, कल सूरज बा जोगमाया पाड़े का खून पीनेवाली है, इसलिए आपको बुलवाया है।"

यह सुनकर महाराज बहुत दुःखी हुए। लेकिन बाद में यह सोचकर कि इस त्रासदायी घटना को रोकना भी उनका कर्तव्य है, वह वहां रुक गए। बाद में जो घटना घटी उसका वर्णन महाराज के शब्दों में ही सुनिए :

चारण लोग जिस मंदिर में पाड़े का वध करनेवाले थे, उस मंदिर के पुजारी से जाकर पूछा तो उसने कहा, "मुझे तो इसकी कोई जानकारी नहीं है। मैं यह कभी नहीं होने दूंगा।" फिर मैं मुखिया के पास गया और उससे कहा, "यह भयंकर काम मैं नहीं होने दूंगा।" वह कहने लगा, "अरे क्या बात है? मैं कभी नहीं होने दूंगा। उसकी क्या ताकत है कि वह सरकार के कानून के खिलाफ़ यह कर सके।"

उसी अवसर पर स्वयं सूरज बा वहां आकर खड़ी हो गई। सचमुच वह जवान और तेजस्वी चारणी थी। उसने तो आते ही गर्जना की, "क्यों मुखिया, अभी तक ढोली क्यों नहीं आया है ? कितनी देर है ?" गरीब बेचारा मुखिया ! मुझे दिया वचन भूल गया और बोला, "हां, माताजी, अभीं तुरन्त ही ढोली को बुलवाता हूं।" मेरे सामने उसने जो डींग हांकी थी वह चारणी की एक गर्जना से ही कहां-की-कहां लुप्त हो गई। मैं वापस अपने स्थान को चला गया।

ढोली आया और ढोल बजने लगा। मुझे समाचार मिला कि जुलूस निकला है। पर मैं वहां जा पहुंचा। देखता हूं कि आगे-आगे एक छोटा पाड़ा, उसके गले में फूलमाला, उसके पीछे छोटी लड़कियों का दल, उसके बाद में बड़ी लड़कियों का दल और अन्त में स्त्रियां हैं। वे सब कैसे सुंदर राग में गीत गा रही थीं, वे स्वर तो बार-बार सुनने की इच्छा होती है उनके पीछे छोटे-बड़े चारण। सब नई पोशाक में थे। उनके रंग-बिरंगे साफे लहरा रहे थे। उनके हाथों में नंगी तलवारें थीं। ऐसों-वैसों को तो कंपकंपी ही आ जाय, ऐसा भयावना यह दृश्य था।

इतने में एकाएक मंदिर का पुरोहित नारायणजी दौड़ता हुआ आया। उसने जुलूस के सामने खड़े होकर उस पर कितने ही शापों की वर्षा की। पर उसे सुना-अनसुना करके पाड़ा लेकर जुलूस तो आगे बढ़ गया। मैं कुछ समझ नहीं पा रहा था कि मुझे क्या हो गया है ! मैं उसके पीछे चलता रहा और जुलूस के साथ मंदिर में पहुंचा। बाहर बिछात बिछी हुई थी, उस पर चारण लोग बैठे थे। मैंने जाकर उनसे पूछा कि इस पाड़े का वध क्या रोका नहीं जा सकता ? मुझे उत्तर मिला, "रुक सकता है, बापू ! क्यों नहीं रुक सकेगा ? माता है। उसकी मरजी न हो तो 'ना' कह सकती है। जाइए, मंदिर में जाकर उससे पूछो।"

मंदिर में से गाने के स्वर सुनाई दे रहे थे। मैं मंदिर में दाखिल हुआ कि आंखें घुमाती हुई चारणी सूरज बा ने गरजकर मुझसे पूछा, "यहां क्यों आया है ?"

मैंने कहा, "पाड़े को न मारो, यह कहने के लिए आया हूं।"

माता आंखें फिराती हुई और तिरस्कारपूर्ण गर्जना करती हुई बोली,

"जा, चला जा, नहीं तो तुझे ही खा जाऊंगी।"

मैंने कहा, "मुझे खाना हो तो खुशी से खा लो, क्योंकि मैं यहां अपनी मरजी से आया हूं। पर पाड़े को क्यों मारती हो? वह तो यहां अपनी मरजी से नहीं आया है।"

मेरी बात सुनकर जवान चारणी अग्नि-ज्वाला-सी भभक उठी और उसने कहा, "लड़कियो, भख (भक्षण कर लो) लो इसे। इतना सुनते ही चारणी कन्याएं मुझ से चिपट पड़ीं। मेरे कपड़े फाड़ डाले। मेरे हाथ पर काट खाया। उनमें से खून बहने लगा। मैं नहीं जानता, उस समय मेरी क्या दशा होती। परन्तु जिस समय मैं जुलूस के पीछे-पीछे जा रहा था, उस समय मेरे पाटणवाडियों ने मुझे देखा था, और कोई अनहोनी बात न हो जाय, इस शंका से वे मेरे पीछे दौड़ आये थे। सौभाग्य से वे लोग आ पहुंचे और मुझे लहू-लुहान देखकर दंगा कर बैठें, उससे पहले ही बाहर बैठे हुए चारण मंदिर में दौड़े आये और मुझे उठाकर मंदिर के बाहर ले गए। मैं फिर मंदिर में जाने का प्रयत्न करने लगा तो चारणों ने कहा, "अब जाकर क्या करोगे? पाड़े का वध तो कर दिया गया।"

मुझे जानकारी मिली कि चारणी सूरज बा वहां काटे गए पाड़े का आधा मन लहू पी गई होगी।

इस घटना के बाद गांव ने चारणों का बहिष्कार कर दिया। मैं बोरसद लौट आया। एक दिन मैंने यह किस्सा गांधीजी को कह सुनाया। उन्होंने मुझसे कहा, "तुमने बुरा किया, हिंसा की। तुमने जाकर इन लोगों को कभी समझाया नहीं था, उनकी मान्यता बदलवाने का कोई प्रयत्न नहीं किया था और तुमने जाकर सीधी हिंसा का प्रयोग उनपर किया। तुम्हें जाकर उन पर से बहिष्कार तो उठवा ही लेना होगा।"

जब मेरा वालवोड जाना हुआ तो मैंने गांव के लोगों को बहिष्कार उठा लेने के लिए समझाया। उस समय दो-चार बनिये ही थे। उन्होंने कहा, "नहीं, हम चारणों से दंड तो लेंगे ही।"

मैंने कहा, "अपना मुंह तो देखो! ये चारण तो मौत से खेलनेवाले लोग हैं। इनसे तुम क्या दंड ले सकोगे? तुम क्या कुछ कर सकते हो? इज्जत के साथ बहिष्कार उठा लो।"

इस प्रकार इस प्रवास की तथा प्रवास के पूर्व की जिन-जिन घटनाओं का महाराज ने वर्णन किया, उसमें महाराज का एक ही दृष्टिकोण था— लोगों की प्रकृति, स्वभाव, तथा उनके मानस का ताना-बाना मुझे दिखाना-समझाना। यह सच है, यह झूठ, यह अच्छा है, यह बुरा, ऐसे भेद किये बिना ही ये लोग किन-किन तत्त्वों से गढ़े गए हैं, यही समझाने का उन्होंने प्रयत्न किया। उसके एक प्रसंग का उल्लेख करके अपने इस प्रथम संपर्क की निधि को समाप्त करता हूं।

३२ : : 'पुल तोड़ डालो !'

सन् १९२७ में गुजरात पर बाढ़ के संकट के समय की बात है। पेटलाद तालुका के सुन्दरणा-गांव में महाराज पाटणवाडियों की हाजिरी बंद कराने के लिए गये थे। एक पाटणवाडिया के घर पर मुकाम किया। मूसलाधार पानी पड़ने लगा। घर की छत गिर पड़ी, फिर दीवार गिरी, पर घर के सब लोग महाराज के पास बैठे रहे।

"अरे, भाई उठो, टेके वगैरा लगाकर छत ठीक करो और सामान की जगह-बदली करनी हो तो उस काम में जा लगो।" महाराज ने कहा।

परन्तु महाराज का पिछले दिन उपवास था, उसकी पारणा कराने की उन्हें अधिक चिन्ता थी। सुबह खिचड़ी बनवाई और घर में जो आम थे, वे दिये। पारणा कराके महाराज को दूसरे स्थान पर भेज दिया। पर गांव में तो पानी बढ़ता ही जा रहा था।

अन्त में पानी इतना बढ़ा कि यह भय लगने लगा कि कहीं वह गांव को डुबो न दे। पर इतना पानी बढ़ क्यों रहा है? इसका क्या कोई उपाय नहीं है? पाटणवाडियों ने आकर कहा, "इसका उपाय है। रेल्वे की सड़क पर जो पुल बंधा हुआ है, उसे अगर तोड़ डाला जाय तो पानी को बाहर जाने का रास्ता मिल जायगा।" क्यों महाराज! धर्मज

के स्टेशनमास्टर से पूछकर क्या यह नाला तोड़ डालें ?" लोगों ने महाराज से पूछा।

"नहीं रे, वह थोड़े ही, 'हां' कहेगा। जाओ, तुम अपने-आप जाकर पुल तोड़ डालो।"

लोगों ने पुल तोड़ दिया। पानी धर्मज की ओर बढ़ा और उसमें बनी परबडी पर जाकर रुक गया। इस प्रकार सुन्दरणा सही-सलामत बच गया। पर महाराज को स्वयं अपने रहने के गांव—बटादरा की चिन्ता होने लगी। इसलिए वह वटादरा जाने के लिए निकल पड़े। मूसलाधार पानी बरस रहा है, मार्ग में चार-पांच संकड़े नाले थे, वे लांघे नहीं जा सकते थे, सो महाराज चार-पांच कोस का चक्कर काटकर और खेतों में होकर वटादरा पहुंचे।

वहां जाकर देखते हैं कि पाटणवाडियों के सौ घरों के मुहल्ले में केवल चार-पांच घर ही शेष खड़े हैं। यह देखकर उनकी आंखों में आंसू आ गए।

इन खंडहरों के बीच लोग स्त्री-बच्चों के साथ खड़े हैं और पानी बढ़ता चला जा रहा है। कहीं बचाव की सूरत नज़र नहीं आती। महाराज ने लोगों से कहा, "तुम लोग खेतों पर चले जाओ।"

"पर हमारे सामान का क्या होगा ?"

"उसकी संभाल मैं रखूंगा।"

खेत में जाने के लिए बीच में एक संकरी नाली पड़ती है। वह ऊपर तक भरी हुई थी और प्रलय की दुदुंभि बजाती प्रबल वेग से बही जा रही थी। उसको पार कैसे किया जाय ? महाराज ने एक रस्सा मंगवाया। वह स्वयं एक किनारे पर उसका एक सिरा बांधकर तैरते हुए दूसरे किनारे पर पहुंचे और दूसरा छोर उस किनारे पर बांधा। स्वयं बीच में खड़े रहे। तबतक रस्से के ऊपर से भी पानी बहने लगा था। एक-एक करके हरेक को उन्होंने रस्से के सहारे पार उतारा। सब सही-सलामत पार उतर गए। उसके बाद वह खुद गांव की चौकसी करने के लिए सारी रात वहां खड़े रहे। महाराज न होते तो इन लोगों की रक्षा भगवान के हाथ की बात होती।

दूसरे दिन महाराज गांव के सेठ चुन्नीलाल के पक्के मकान में जा पहुंचे। पानी का जोर कम हो गया था। चार दिन के बाद वरुणदेव ने अपना कोप शान्त किया। पांचवें दिन सेठ का एक आदमी, जिसे अफीम का व्यसन था, अफीम लेने खंभात के कांथरोटी गांव गया था। उसने लौटकर वहां की जो बात सुनाई वह इस प्रकार थी :

कांथरोटी वगैरा आसपास के गांव के लोग कहते हैं कि हमारी तो महाराज ने रक्षा की है, नहीं तो हमारा नाश निश्चित था। महाराज ने किस तरह रक्षा की ? यह पूछने पर उन्होंने बताया कि पानी के बहुत बड़े नाले पर से महाराज चलते हुए आये। यह हमने अपनी आंखों से देखा है। वह पानी पर कदम बढ़ाते चले आ रहे हैं, सिर्फ़ टोपी ही उनकी भीगी, कपड़े बिलकुल कोरे थे। आकर हमसे कहने लगे, "डरो नहीं, कुछ नहीं होगा। टीले पर चढ़ जाओ। इस प्रकार हिम्मत बंधाकर वह पैदल ही चले गए। वे सब यहां महाराज के पैर छूने के लिए आनेवाले हैं।

सेठ पूछने लगे, "हे महाराज, क्या यह सच है ?"

"क्या सच, गप्प है, बिलकुल गप्प। पांच दिन से तो मैं यहीं पर हूं, यह तो तुम जानते हो।"

"परन्तु वे लोग यही कहते हैं न ?"

"कहने दो !"

पर महाराज ने कोई स्पष्ट बात नहीं बताई। परन्तु यहां वटादरा में ही बैठे हुए को इतनी दूर कांथरोटीवाले लोगों ने किस प्रकार उनकी खास पोशाक में नाला पार करते हुए और आश्वासन के शब्द बोलते हुए देखा और सुना। महाराज यह सब सुनकर विचार में पड़ गए। पर उसी दिन शाम को एक छोटी-सी घटना घटी। सेठ का बाड़ा था। उसमें घोड़ी बंधी हुई थी। घोड़ी हिनहिना रही थी और पैर पछाड़ रही थी। उसके सामने घास नहीं होगी, यह समझकर महाराज ने उसे घास डालने के लिए बाड़े का दरवाज़ा खोला। बाड़े में सामने ही दो बैल बंधे हुए थे। महाराज अंदर गये और घोड़ी को घास डालकर बाड़ा बंद करके वापस आ गये। सेठ वहां बैठे-बैठे यह सब चुपचाप देख रहे थे। थोड़ी

देर के बाद ही सेठ ने कहा, "महाराज, आप झूठ भी बोलते हैं ?"

"कैसा झूठ ?"

"आपने कांधरोटीवालों को अपना चमत्कार जरूर दिखाया है !"

"कैसा चमत्कार ?"

"कैसे क्या ? मेरे वे बैल किसी को भी बाड़े में घुसने नहीं देते हैं। देखते ही सींग मारते हैं। उन्होंने आपको न तो मारा और न आपकी ओर अपना सिर तक हिलाया। यह क्या बात है ?"

महाराज हँस पड़े। इस मनुष्य ने जिसे चमत्कारी शक्ति समझा है, वह तो वस्तुतः स्वाभाविक बात थी। पशु का स्वभाव है कि जो उसे मरकना समझता है और जो उससे डरकर चलता है, वह उसे मारने को दौड़ता है। परन्तु मुझे तो इसका ज़रा भी खयाल न था कि ये बैल मरकने हैं; इसलिए मैं अपनी स्वाभाविक चाल से अंदर जाकर बाहर आ गया। इस कारण बैलों ने मुझे छेड़ा नहीं। पर इस भले आदमी ने इसे मेरा एक चमत्कार मान लिया !

परन्तु दूसरे ही दिन कांधरोटी के लोग इकट्ठे होकर आ पहुंचे और महाराज के पैरों में गिर पड़े। कहने लगे, "महाराज, आप न आये होते तो हम सब नष्ट हो गए होते।"

महाराज ने दृढ़ता से कहा, "भाइयो, मैं वहां गया ही नहीं। मैं कोई चमत्कार जानता नहीं। मैं पानी पर चल भी नहीं सकता। तुम सबको कोई भ्रम हुआ है।"

पर वे तो यह कुछ भी मानने को तैयार नहीं थे। वे महाराज के चरण छूकर लौट गए और महाराज के व्याकुल मन को आखिर इसका यही एक उत्तर मिला, "अत्यंत तीव्र प्रेम, अत्यंत उग्र प्रेम ही अपने आदमी को ऐसा मानसिक दर्शन कराता होगा।"

"अत्यंत तीव्र प्रेम !"

और इस सारी पुस्तक का सार भी इसी में समाया हुआ है—"अत्यंत तीव्र प्रेम !"

दूसरे दिन महाराज गांव के सेठ चुन्नीलाल के पक्के मकान में जा पहुंचे। पानी का प्रकोप कम हो गया था। चार दिन के वाद वरुणदेव ने अपना कोप शान्त किया। पांचवें दिन सेठ का एक आदमी, जिसे अफीम का व्यसन था, अफीम लेने खंभात के कांधरोटी गांव गया था। उसने लौटकर वहां की जो वात सुनाई वह इस प्रकार थी :

कांधरोटी वगैरा आसपास के गांव के लोग कहते हैं कि हमारी तो महाराज ने रक्षा की है, नहीं तो हमारा नाश निश्चित था। महाराज ने किस तरह रक्षा की ? यह पूछने पर उन्होंने वताया कि पानी के बहुत बड़े नाले पर से महाराज चलते हुए आये। यह हमने अपनी आंखों से देखा है। वह पानी पर कदम बढ़ाते चले आ रहे हैं, सिर्फ़ टोपी ही उनकी भीगी, कपड़े बिलकुल कोरे थे। आकर हमसे कहने लगे, "डरो नहीं, कुछ नहीं होगा। टीले पर चढ़ जाओ। इस प्रकार हिम्मत बंधाकर वह पैदल ही चले गए। वे सब यहां महाराज के पैर छूने के लिए आने-वाले हैं।

सेठ पूछने लगे, "हे महाराज, क्या यह सच है ?"

"क्या सच, गप्प है, बिलकुल गप्प। पांच दिन से तो मैं यहीं पर हूं, यह तो तुम जानते हो।"

"परन्तु वे लोग यही कहते हैं न ?"

"कहने दो !"

पर महाराज ने कोई स्पष्ट बात नहीं वताई। परन्तु यहां वटादरा में ही बैठे हुए को इतनी दूर कांधरोटीवाले लोगों ने किस प्रकार उनकी खास पोशाक में नाला पार करते हुए और आश्वासन के शब्द बोलते हुए देखा और सुना। महाराज यह सब सुनकर विचार में पड़ गए। पर उसी दिन शाम को एक छोटी-सी घटना घटी। सेठ का बाड़ा था। उसमें घोड़ी बंधी हुई थी। घोड़ी हिनहिना रही थी और पैर पछाड़ रही थी। उसके सामने घास नहीं होगी, यह समझकर महाराज ने उसे घास डालने के लिए बाड़े का दरवाज़ा खोला। बाड़े में सामने ही दो बैल बंधे हुए थे। महाराज अंदर गये और घोड़ी को घास डालकर बाड़ा बंद करके वापस आ गये। सेठ वहां बैठे-बैठे यह सब चुपचाप देख रहे थे। थोड़ी

देर के बाद ही सेठ ने कहा, "महाराज, आप झूठ भी बोलते हैं ?"

"कैसा झूठ ?"

"आपने कांधरोटीवालों को अपना चमत्कार ज़रूर दिखाया है !"

"कैसा चमत्कार ?"

"कैसे क्या ? मेरे वे बैल किसी को भी बाड़े में घुसने नहीं देते हैं। देखते ही सींग मारते हैं। उन्होंने आपको न तो मारा और न आपकी ओर अपना सिर तक हिलाया। यह क्या बात है ?"

महाराज हँस पड़े। इस मनुष्य ने जिसे चमत्कारी शक्ति समझा है, वह तो वस्तुतः स्वाभाविक बात थी। पशु का स्वभाव है कि जो उसे मरकना समझता है और जो उससे डरकर चलता है, वह उसे मारने को दौड़ता है। परन्तु मुझे तो इसका ज़रा भी खयाल न था कि ये बैल मरकने हैं; इसलिए मैं अपनी स्वाभाविक चाल से अंदर जाकर बाहर आ गया। इस कारण बैलों ने मुझे छेड़ा नहीं। पर इस भले आदमी ने इसे मेरा एक चमत्कार मान लिया !

परन्तु दूसरे ही दिन कांधरोटी के लोग इकट्ठे होकर आ पहुंचे और महाराज के पैरों में गिर पड़े। कहने लगे, "महाराज, आप न आये होते तो हम सब नष्ट हो गए होते।"

महाराज ने दृढ़ता से कहा, "भाइयो, मैं वहां गया ही नहीं। मैं कोई चमत्कार जानता नहीं। मैं पानी पर चल भी नहीं सकता। तुम सबको कोई भ्रम हुआ है।"

पर वे तो यह कुछ भी मानने को तैयार नहीं थे। वे महाराज के चरण छूकर लौट गए और महाराज के व्याकुल मन को आखिर इसका यही एक उत्तर मिला, "अत्यंत तीव्र प्रेम, अत्यंत उग्र प्रेम ही अपने आदमी को ऐसा मानसिक दर्शन कराता होगा।"

"अत्यंत तीव्र प्रेम !"

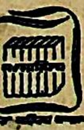
और इस सारी पुस्तक का सार भी इसी में समाया हुआ है— "अत्यंत तीव्र प्रेम !"

'मंडल' का

कथा-कहानी साहित्य

१. कहावतों की कहानियां
२. परमहंस की कथाएं
३. सप्तदशी
४. जीवन-पराग
५. कथा-सरित्सागर
६. ज्ञान की गरिमा
७. भागवत-कथा
८. बरगद की छाया
९. उदयन-कथा
१०. चाणक्य-कथा
११. मानव-धर्म की आख्यायिकाएं
१२. उपनिषदों की कथाएं





साढ़े चार रुपये